

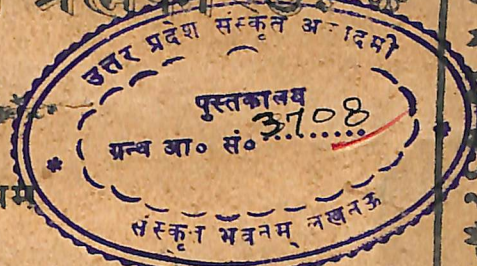
425
भर्तृहर

ॐ श्रीजयतिराम् *

श्रीभर्तृहरि विराचित-

❀ वाक्य पदीय ब्रह्मकाण्ड ❀

सोयम



लब्धधीन प्रतिष्ठ, विद्यावाचस्पति, व्या० आ० वे० शास्त्रि मैथिल-

पं० श्रीद्रव्येशभा प्रणीत प्रत्येकार्थ प्रकाशिका-

समाख्यया व्याख्ययोपेतः ।

श्री वृन्दावने पं० रामनिवास शर्मा द्वारा

श्री "ब्रजेन्द्र" मुद्रणालये सम्मुद्रय प्रकाश्यं नातः ।

सं० १९८३

अस्य सर्वाधिकारः स्वीयतीकृतः ।

प्रायो व्यावहारिक शब्दानामेवेह संज्ञवेश इति

टीकाप्रणेनुः प्रतिष्ठा ।

प्र० १०००]

[मू० ११]



॥ श्रीर्जयनितराम् ॥



* वाक्यपदीय ब्रह्मकाण्डः *

योगिराज महावैयाकरण-
श्रीभर्तृहरि विरचितः ।

व्याकरणाचार्य वेदान्तशास्त्रि पण्डितवर मैथिल--

श्रीद्रव्येशभा शास्त्रि प्रणीत--

प्रत्येकार्थ प्रकाशिका टीका-
परिगुम्फितः ।

व्याकरणाचार्य पण्डित श्री सीतारामाचारि शास्त्रिणा-
संशोधितः ।

पं० श्री श्रीवर चतुर्वेदिनालुमोदितश्च

सोयम्

श्री व्रजेशानुकम्पया श्रीवृन्दावने अशीत्यधिको-
नविंशति शतमिते १६८३ वैक्रमानन्दे-

श्रीव्रजेन्द्र नाम्नि मुद्रण यन्त्रालये

पं० रामनिवासशर्मद्वारा सम्मुद्रय

प्राकाश्यं नीतः ।

प्र० १०००] अथ पुनर्मुद्रणाधिकारः स्वायत्तीकृतः ।

[म० ११]

४२५
मर्तु/वा
४२५
मर्तु/वा

1875

1873-74-75-76-77-78

...

1871

1875

1866

1879

1. 11. 11. 11.

1. 2. 3. 4. 5. 6. 7. 8. 9. 10. 11. 12. 13. 14. 15. 16. 17. 18. 19. 20. 21. 22. 23. 24. 25. 26. 27. 28. 29. 30. 31. 32. 33. 34. 35. 36. 37. 38. 39. 40. 41. 42. 43. 44. 45. 46. 47. 48. 49. 50. 51. 52. 53. 54. 55. 56. 57. 58. 59. 60. 61. 62. 63. 64. 65. 66. 67. 68. 69. 70. 71. 72. 73. 74. 75. 76. 77. 78. 79. 80. 81. 82. 83. 84. 85. 86. 87. 88. 89. 90. 91. 92. 93. 94. 95. 96. 97. 98. 99. 100. 101. 102. 103. 104. 105. 106. 107. 108. 109. 110. 111. 112. 113. 114. 115. 116. 117. 118. 119. 120. 121. 122. 123. 124. 125. 126. 127. 128. 129. 130. 131. 132. 133. 134. 135. 136. 137. 138. 139. 140. 141. 142. 143. 144. 145. 146. 147. 148. 149. 150. 151. 152. 153. 154. 155. 156. 157. 158. 159. 160. 161. 162. 163. 164. 165. 166. 167. 168. 169. 170. 171. 172. 173. 174. 175. 176. 177. 178. 179. 180. 181. 182. 183. 184. 185. 186. 187. 188. 189. 190. 191. 192. 193. 194. 195. 196. 197. 198. 199. 200. 201. 202. 203. 204. 205. 206. 207. 208. 209. 210. 211. 212. 213. 214. 215. 216. 217. 218. 219. 220. 221. 222. 223. 224. 225. 226. 227. 228. 229. 230. 231. 232. 233. 234. 235. 236. 237. 238. 239. 240. 241. 242. 243. 244. 245. 246. 247. 248. 249. 250. 251. 252. 253. 254. 255. 256. 257. 258. 259. 260. 261. 262. 263. 264. 265. 266. 267. 268. 269. 270. 271. 272. 273. 274. 275. 276. 277. 278. 279. 280. 281. 282. 283. 284. 285. 286. 287. 288. 289. 290. 291. 292. 293. 294. 295. 296. 297. 298. 299. 300. 301. 302. 303. 304. 305. 306. 307. 308. 309. 310. 311. 312. 313. 314. 315. 316. 317. 318. 319. 320. 321. 322. 323. 324. 325. 326. 327. 328. 329. 330. 331. 332. 333. 334. 335. 336. 337. 338. 339. 340. 341. 342. 343. 344. 345. 346. 347. 348. 349. 350. 351. 352. 353. 354. 355. 356. 357. 358. 359. 360. 361. 362. 363. 364. 365. 366. 367. 368. 369. 370. 371. 372. 373. 374. 375. 376. 377. 378. 379. 380. 381. 382. 383. 384. 385. 386. 387. 388. 389. 390. 391. 392. 393. 394. 395. 396. 397. 398. 399. 400. 401. 402. 403. 404. 405. 406. 407. 408. 409. 410. 411. 412. 413. 414. 415. 416. 417. 418. 419. 420. 421. 422. 423. 424. 425. 426. 427. 428. 429. 430. 431. 432. 433. 434. 435. 436. 437. 438. 439. 440. 441. 442. 443. 444. 445. 446. 447. 448. 449. 450. 451. 452. 453. 454. 455. 456. 457. 458. 459. 460. 461. 462. 463. 464. 465. 466. 467. 468. 469. 470. 471. 472. 473. 474. 475. 476. 477. 478. 479. 480. 481. 482. 483. 484. 485. 486. 487. 488. 489. 490. 491. 492. 493. 494. 495. 496. 497. 498. 499. 500. 501. 502. 503. 504. 505. 506. 507. 508. 509. 510. 511. 512. 513. 514. 515. 516. 517. 518. 519. 520. 521. 522. 523. 524. 525. 526. 527. 528. 529. 530. 531. 532. 533. 534. 535. 536. 537. 538. 539. 540. 541. 542. 543. 544. 545. 546. 547. 548. 549. 550. 551. 552. 553. 554. 555. 556. 557. 558. 559. 560. 561. 562. 563. 564. 565. 566. 567. 568. 569. 570. 571. 572. 573. 574. 575. 576. 577. 578. 579. 580. 581. 582. 583. 584. 585. 586. 587. 588. 589. 590. 591. 592. 593. 594. 595. 596. 597. 598. 599. 600. 601. 602. 603. 604. 605. 606. 607. 608. 609. 610. 611. 612. 613. 614. 615. 616. 617. 618. 619. 620. 621. 622. 623. 624. 625. 626. 627. 628. 629. 630. 631. 632. 633. 634. 635. 636. 637. 638. 639. 640. 641. 642. 643. 644. 645. 646. 647. 648. 649. 650. 651. 652. 653. 654. 655. 656. 657. 658. 659. 660. 661. 662. 663. 664. 665. 666. 667. 668. 669. 670. 671. 672. 673. 674. 675. 676. 677. 678. 679. 680. 681. 682. 683. 684. 685. 686. 687. 688. 689. 690. 691. 692. 693. 694. 695. 696. 697. 698. 699. 700. 701. 702. 703. 704. 705. 706. 707. 708. 709. 710. 711. 712. 713. 714. 715. 716. 717. 718. 719. 720. 721. 722. 723. 724. 725. 726. 727. 728. 729. 730. 731. 732. 733. 734. 735. 736. 737. 738. 739. 740. 741. 742. 743. 744. 745. 746. 747. 748. 749. 750. 751. 752. 753. 754. 755. 756. 757. 758. 759. 760. 761. 762. 763. 764. 765. 766. 767. 768. 769. 770. 771. 772. 773. 774. 775. 776. 777. 778. 779. 780. 781. 782. 783. 784. 785. 786. 787. 788. 789. 790. 791. 792. 793. 794. 795. 796. 797. 798. 799. 800. 801. 802. 803. 804. 805. 806. 807. 808. 809. 810. 811. 812. 813. 814. 815. 816. 817. 818. 819. 820. 821. 822. 823. 824. 825. 826. 827. 828. 829. 830. 831. 832. 833. 834. 835. 836. 837. 838. 839. 840. 84

❀ भूमिका ❀

कस्को न किल जानाति "एकः शब्दः सम्यक् ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गलोके च कामधुक् भवति" इति श्रुतिविहितसाधुशब्दमाहात्म्यम् । तत्साधुशब्दज्ञापिका स्मृतिव्याकरणमेव तत्रापि महेश्वरपरमाचार्यकृतेन पाणिनीयस्यैव प्राधान्यं जरीजागर्ति तत्रापि श्रीमन् गवत्पतञ्जलिप्रणीतमहाभाष्यसम्मतमतेरेव परितो मान्यतेति यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यमित्युद्घोषयत्सु शाब्दिकेषु ना विदितं वरीवर्त्ति । तस्य च गम्भीरभावैः परिक्लिश्यमानान् लोकानालक्ष्य परमकारुणिकाचार्य योगिराज श्रीभर्तृहरिः परितः प्रथमं कारिकारूपेण वाक्य-पदीय ग्रन्थमुपनिवन्ध । अस्य च कियत्प्रामाण्यमाहात्म्यं प्राचीनत्वञ्चेति भूषणादौ प्रमाणतया एतत्कारिकोपन्यासेनैव विदितं विद्यते विद्वद्भूषणेषु परञ्चार्य पठनपाठनप्रणाली शेखरादिनिबन्धग्रन्थाधिक्येन स्थगिताभूदित्येतदवलोक्य अनवरतम् प्राचीनग्रन्थपरिरक्षणतत्परम् मनो येषां तैः काशीस्थ क्रोन्स कालेज प्रधान कार्यवाहक (प्रिन्सपिल) म० म० डाकूर श्रीगंगानाथ झा प्रभृति महोदयैः तत्रत्याचार्य षष्ठ खण्डे समावेशितः श्री कविराज गोपीनाथ एम. ए. महोदयैः संरक्षितश्च तस्याद्यभागो ब्रह्मकाण्डः) परन्तु प्राचीन लेखशैल्याः स्वाभाविककाठिन्यास्पदतया कारिकार्थप्रकाशक व्याख्यान्तराभावाच्च तदन्वेषिणां महान्तं क्लेशमवगम्य अतिपरिश्रमेण प्रत्येकार्थ प्रकाशिका टीकया सम्बलित एतस्योपादेयतानवेति स्वयमेव विविच्य सफल्यन्तु मे मनोरथान् भवन्तो विद्वांस इत्यलं पल्लवितेन एतस्यो-पयोगितामवलोक्य एतन्मुद्रणे व्याकरणाचार्य पं० श्रीसीतारामाचारी पं० श्री श्रीवरचतुर्वेदी च अत्युत्साहं साहाय्यञ्चादिषातामतः तयोरुपकारभारमा-ज्जन्म शिरसा विभूतः ।

इति विनीत-

कौपाह व्या० आ० वे० शास्त्री द्रव्येश शर्मा
नेपाल राज्यान्तर्गत वसतपुर ग्रामवासी
पो० वरगनिओ
जि० मुजफ्फर पुर

॥ श्रीशः पातु सततम् ॥

निखिल जनक दम्बा रक्षणे दत्तदृष्टि,

रसुरनिधनकारी व्यासकीर्ति सुरारिः ॥

चरणकमलयुग्मा स्वादरकान्धरेफान् ।

गिरिवर करधारी कृष्ण चन्द्रोऽवतान्नः ॥ १ ॥

वाराणसी सर्वपुत्रीषु रम्या, तदीय विद्यालय किन्स कालिजे ।

शब्दाख्य शास्त्रस्य परीक्षणस्य, आचार्य्य षष्ठांशदले द्वितीये ॥ २ ॥

निर्धारितो वाक्यपदीयभागः, श्रीब्रह्मकारण्डो ललितोऽति गम्यः ।

तस्यापि व्याख्यानमसर्वबोधकृत्, श्रीपुञ्जराजेन कृतन्तु लभ्यते ॥ ३ ॥

नेपालराज्ये वसतादिपत्तने, वासं दधानेन विपश्चितावै ।

द्रव्यशब्दाख्येन च शब्द तर्क, वेदान्तसांख्यादि विचारशालिना ॥ ४ ॥

प्राज्ञोपकारक्षमछात्रबोधिनी, व्याख्यां च सर्वार्थ प्रकाशिकाभिधां ।

आदाय रम्याश्च कृतां सुशिक्षकाः, कृतार्थयन्त्रस्य परिश्रमं मुदा ॥ ५ ॥

मयापि विविचयालोच्यचैतत्प्रणेतृशास्त्रिभ्यः कोटिशो धन्यवादाः ।

त्रितोय्यन्ते तद्वज्रपरिश्रमश्च मुक्तकण्ठेन शतशः प्रशंसनीय इति विरमति ॥ ६ ॥

विदुषां पादद्वन्द्वं सरोजचंचरीकः

पं० सीताराम शास्त्री व्या० आ०

निश्चयप्रचमेतद्देशा प्रत्येकार्थ प्रकाशिका टीका मूलग्रन्थस्यास्यानाया-
सनशेषगूढार्थ ज्ञानप्रकाशमुखेनेतरटीकामतिशयानाधिजिगमिषूनामतीवोपकरि-
व्यत्येव प्रत्युताध्यापिपयिषूनामपि लाकल्येन साहाय्यं विधास्यत्यतस्त्वरयः तु
एतद्ग्रहणे निर्मात्सरा गुणपक्षपातिनो विद्वांस इति तथ्यमावेदयति ।

पं० श्रीगणपति शर्मा न्या० आ०

विधेयौ बुधानाम्

ॐ श्री जयतितराम् ॐ

प्रत्येकार्थप्रकाशिकाव्याख्यासहितः

वाक्य पदीये ब्रह्मकाण्डः



॥ मङ्गलाचरणम् ॥

तण्डुलेनैव संतुष्या ददादिष्टं मुदाहियः
ब्रजेशं राधिकेशं तं नत्या तोषायितुं यते ॥ १ ॥
परीक्षार्थुपकाराय प्रत्येकार्थप्रकाशिका ।
टीका वाक्यपदीयस्य ब्रह्मकाण्डे वितन्यते ॥ २ ॥

अथ प्रयोजनं मनुद्दिश्य मन्दोऽपि प्रवर्तते इत्यतः प्रथमं व्याकरणाध्ययने प्रवृत्तिप्रयोजकं प्रयोजनं वक्तव्यम् तच्च अर्थधर्मकाममोक्षाख्यं चतुर्विधम् तेषु इतरेषां अनित्यत्वेन मोक्ष एव परमपुषार्थः तस्य नित्यत्वात् । सच (मोक्षः) तमेव विदित्वा तिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यते अयनाय ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् इत्यादि श्रुति स्मृति प्रामाण्यात् ब्रह्मतत्त्व ज्ञानाद् भवति ब्रह्मतत्त्वञ्च शब्दतत्त्वादभिन्नम् ब्रह्मशब्दयोरैक्यात् तथाच ब्रह्मात्मकशब्दतत्त्वनिर्णयद्वारा परमपुरुषार्थमोक्षात्मकफलं व्याकरणाध्ययनस्येति सिद्धान्तयिष्यता आचार्यपादेन ब्रह्मकाण्डोपमारभ्यते एतेन व्याकरणाध्ययनस्यार्थधर्मकामाख्यं लौकिकमेव फलं यदि भवेत्तदौक्तलौकिकफलानां कृष्यादिना सुलभोपायेनाऽपि सुसाध्यतया दुर्गाहविचारसाध्यैतदध्ययनोपाये प्रवृत्तेरनावश्यकत्वं स्यात् किञ्च मुमुक्षूणां प्रवृत्ति सम्भवलेशोऽपि न स्यात् इति विविदमानाः परास्ताः तत्र प्रथमं ब्रह्मपदार्थस्योपस्थितत्वात् तत्कीर्तनस्य ग्रन्थादौ मङ्गलरूपत्वाच्च तल्लक्षणं विधाय शब्द एव ब्रह्मेति प्रतिज्ञां कुर्वन् अर्थात्मक सृष्टि व्यवहारमुपपादयति अनादिनिधनेत्यादि —

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यद् क्षरम् ।

विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः ॥ १ ॥

अनादीनि यद् इत्युद्देशबोधकम् न आदिनिधने यस्य तत् अनादिनिधनम् उत्पत्तिमरणरहितम् (नित्य मिति यावत्) सावयवं हि परिच्छिन्नञ्च वस्तु अवयवादेः संयोग वियोगाभ्यां उत्पद्यमानं विनश्यच्चलोके दृष्टम् ब्रह्मणस्तु

निरवयवत्वत् अपरिच्छिन्नत्वाच्च उत्पत्तिविनाशयोः स्वप्नेऽप्यसम्भवात् अक्षरस्य
 व्यापकमित्यर्थः अश्नोतीतिविग्रहे अशू-यासौ इतिधातो रौणादिकसरन् प्रत्यये
 साधितत्वात् अतएव अनाधिनिधनपदेनाविनाशित्वार्थस्योक्तत्वेऽपि व्यापकता
 अनुक्तेर्नपुनरुक्तिदोषः ब्रह्मेति बृंहयन्नि पालयतीति स्वचैतन्यसम्पादनद्वारा जग
 द्ब्यवहारस्थितिनियामकमित्यर्थः एतेन आकाशादेश्चैतन्यशून्यस्य व्यावृत्तिः
 तदित्याध्याहारः यत्तदोर्नित्यसम्बन्धात् शब्दतत्त्वमिति विधेयतं तस्य भावः
 तत्त्वम् याथार्थ्यमितियावत् शब्द एव तत्त्वम् सकलशब्दग्राह्यमपि तदेव सकल-
 शब्दस्वरूपमपि तदेव शब्दार्थयोस्तादात्म्यात् अतएव भगवता ओमित्येकाक्षरं ब्रह्मेति
 गीतायामुक्तम् अर्थात् शब्द रूपब्रह्मण एवायं धर्मः यत् नानाशब्दरूपेण नानार्थ-
 रूपेण च प्रतीयते इति सिद्धान्तयिष्यति तथा चायं निर्गलितोर्थः नित्यं व्यापक
 चेतनतया सकलव्यवहारस्थितिनियामकञ्च यत् तत् शब्दतत्त्वम् ननु शब्दएव ब्रह्म
 तदा ततोर्थात्मकसृष्टिः कथमित्यत आह विवर्त्तते इति यतः ब्रह्मणः जगतः
 नामरूपाभ्यां व्याकृतदृश्यमानसंसारस्य प्रक्रिया व्यवहारः अर्थरूपेण घटपट-
 दिव्यकिरूपेण विवर्त्तते विवर्त्तरूपोत्पत्तिर्भवति उत्पत्तिर्द्विधा परिणामो विव-
 र्त्तश्च तात्त्विकान्यथाभावः आद्यः यथा दुग्धस्य दधिपरिणामः अयथार्थान्यथा-
 भावः अन्त्यो यथा रज्ज्वा विवर्त्तः सर्पाः शूक्तिकायश्चरजतम् अयम्भावः यथा
 रज्जौ रज्जुःचेतिविशेषधर्माज्ञानात् सर्पाण्यम् दण्डोयम् उदकधारेयम् भूछिद्र
 मिदमित्याद्याकारकनानारूपप्रतीतिर्जायते तत्र सर्पादिप्रतीतेः किमूलमितिगवेप
 णाय रज्जोरभावे सर्पादिप्रतीतेरप्यसंभवात् रज्जुरेव मूलमिति निश्चीयते
 परञ्च सर्पादिप्रतीतेः रज्जुसाक्षात्कारानन्तरं निवृत्तिदर्शनात् रज्जुतत्त्वमेव
 सत्यं सर्पादितत्त्वमसत्यम् तस्य बाधदर्शनेन अबाध्यत्वं सत्यत्वमिति
 सत्यत्वलक्षणस्य तत्रासंघट्टनात् तथैव प्रकृते नामरूपात्मकसकल दृश्यमान-
 पदार्थस्य नानारूपस्य संसारस्य ज्ञानं शब्दतत्त्वात्मकब्रह्मस्वरूपाज्ञानप्रयुक्तम्
 तथाच यदि सत्यं ब्रह्म न स्यात् तदा तत्स्वरूपाज्ञानप्रयुक्तं नानारूपं असत्यं
 जगन्न प्रतीयेत अतः संसारभ्रमस्याधिष्ठानं ब्रह्म जगद्विवर्त्तोपादानकारणम्
 किन्तु अधिष्ठानसाक्षात्कारस्य भ्रमनिवर्त्तकत्वेन यदा शब्दात्मकब्रह्मस्वरूपा
 धिष्ठानसाक्षात्कारो भवति तदा अज्ञानसंसारज्ञानस्य निवृत्तिर्भवति तथाच
 संसारनिवृत्तिरूपमोक्षः सिध्यतीति मोक्षरूप प्रयोजनं व्याकरणस्य सिद्ध मिति
 ननुशब्दएव ब्रह्म इत्यत्र किमूलमितिचेत् श्रुतिस्मृती गृहाण
 सूक्ष्मार्थेनाप्रविभक्ततत्त्वामेकावाचमाभिस्पन्दमानाम् उतान्ये
 विदुरन्यामिवच पूर्तां नाना रूपात्मानि सन्निविष्टास्
 इति अनेन सर्वेषामन्तःकरणे सन्निविष्टं चैतन्यं शब्दः तस्यै- व शक्तिः परवो-
 धनाय निस्सृत्य शब्दरूपेणार्थरूपेणय नाना रूपेण भासते इति सिद्धम् किन्तु

ओमित्यात्मानं युज्जीत, ओमिति ब्रह्म, ओंकार एवेदं सर्वम्, वाचारम्भणो विकारो नामधेयं तदस्येदं वाचा तन्त्या नामभिर्दामभिः सर्वं सितम् सर्वं हीद नामानि बह्वेदं शब्द निष्माणं शब्द शक्तिनिबंधनम् । विवृतां शब्दमात्राभ्य स्तास्वेवप्रविलीयते इत्यादि आकरतोद्गष्टव्यम् ।

ननु एकमेव शब्दतत्त्वं ब्रह्म तदानाना रूपेण कथं ज्ञायते इत्यत आह

एकमेव यदाभ्रातं भिन्नं शक्ति व्यपाश्रयात् ।

अपृथक्त्वेऽपि शक्तिभ्यः पृथक्त्वेनेव वर्त्तते ॥ २ ॥

एकमेवेति यत् एकमेव शब्दतत्त्वम् ब्रह्म आभ्रातम् एकमेवा द्वितीय ब्रह्म प्रणव एवैकस्त्रिधा भिन्न्यज्यते इत्यादि श्रुतिभिः कथितमित्यर्थः तदित्याक्षेपः शक्तिव्यपाश्रयात् नानाशक्त्याश्रयात् शक्तेर्भेदादितियावत् भिन्नम् बहुधा प्रतिभातिशक्तेर्नानात्वात् तदाश्रय ब्रह्म गोऽपि नानात्वमात्मेयते इतियावत् ननु शक्ति भिन्ना तदा श्रयो ब्रह्मभिन्नम् एवञ्च कथमेकमेवेति प्रतिज्ञातमित्यत आह अपृथक्त्वे ति शक्तिभ्यः ब्रह्मण इत्याक्षेपः अपृथक्त्वेऽपि अभिन्नत्वेऽपि पृथक्त्वेनेव पृथगिव ननु वास्तविकभिन्नता इत्याकृतः पृथक्त्वमारोप्यते इतियावत् वर्त्तते विद्यते इत्यर्थः अयमाशयः घटत्वेन शरावत्वेन च घटशरावादयो भिन्ना अपि मृत्तिकारूपेणाभिन्ना एव एवं विकारो विकारी यावद्वस्तु परस्परं भिन्नमपि सर्वस्योपादानकारणं ब्रह्म एकमेव अतस्तेन रूपेण सर्वं एकमेव ननु एकश्चेत् भिन्नं कथं एकस्मिन् भेदस्यवाधात् इति चेन्न एकस्मिन्नपि ब्रह्मणि नानाशक्तिसमावेशात् शक्तिगत भेदस्य ब्रह्मणि आरोपेऽपि स्वकीयैकत्वस्य वास्तविकस्या वाधेन एकत्वभिन्न- तत्रोभयव्यवहारस्योपपत्तेः यथा एकस्मिन् ज्ञाने घटः पट इत्याद्यनेक विषयस्य भानेपि विषयगत नानात्वेन ज्ञानगतैकत्वस्य न बाधः किञ्च करः कमलः इत्यादौ करे कमलत्वारोपेऽपि वास्तविककरत्वस्य न बाधः इदमत्रावधेयम् ता शक्तयोऽपि नहि ब्रह्मणः पृथक् तासांतत्रैवोपलब्धेः अन्यत्रानुपलब्धेस्व शक्तिशक्ति मतोरभेदात् किन्तु अविवेकिनां पृथगेव लभ्यतै इति ॥ २ ॥

ननु ब्रह्म एकं तदा तद्गतशक्तयः कथं नाना इत्यत आह

अव्याहताः कला यस्य कालशक्ति मुपाश्रिताः ।

जन्मादयो विकाराः षट् भावभेदस्य योनयः ॥ ३ ॥

अव्याहतेति यस्य ब्रह्मणः अव्याहताः न व्याहतां स्वरूपेणाविनष्टा इत्यर्थः नित्या इति यावत् कलाः शक्तयः कालशक्तिं समयशक्तिं उपाश्रिता प्राप्ताः

भावभेदस्य पदार्थभेदस्य योनेयः कारणानि जन्मादयः षट् जन्मस्थितिमर
णवृद्धिहासपरिणामाख्या इत्यर्थः भवन्तीति क्रियाध्याहारः अयम्भावः ब्रह्मणि
कालाख्यशक्तिः व्यापिकाम हतीति तद्धीन एव जन्मादिशक्तयः तासां कालमपेक्षैव
व्यवहार सम्भवात् कार्यमात्रं प्रति कालस्य कारणत्वात् सा कालशक्तिः यदा जन्म
शक्तिमाज्ञापयति तदा घटउत्पद्यते यदा प्रतिवधनाति तदा नश्यति यदा उभयं न करोति
तदा तिष्ठति एवञ्च उत्पद्यमानघटात् तिष्ठन्पटोभिन्नः एव तिष्ठतः पटात्
चिनश्चपटोभिन्न इत्यादि रीत्या सर्वेषां विकाराणां परस्परं भेदः पौर्वापर्यक्रम
श्च तथा च विकारगतभेदानां जन्मशक्त्यवच्छेदेन स्थित्यवच्छेदेन चाश्रयतया
एकोऽपि पौर्वापर्यक्रमहीनोऽस्ति कालः भिन्नः पौर्वापर्यक्रमवांश्च भवति अतएव-
तमेव भेदं क्रमञ्चादाय भवति अभूत् भविष्यतीत्यादि व्यवहारः एवमेव वर्द्धते
इत्यादयोऽपि यथा एकमेव तूलासूत्रं (श्रोत्रनेका ईङ्गुरे जीकांटा)
तस्मिन् उर्द्धदेशे एकोदण्डः तत्रानेकलेखाः भवन्ति तस्याधः
प्रदेशे द्रव्यान्तरं स्थाप्यते तस्य द्रव्यस्य गुरुत्वं यदा
प्रतिवध्यते तदोर्ध्वस्थित लेखानां मध्ये यस्यां लेखायां संयुक्तं सत् तिष्ठति
तत्परिमाणं एकसेटकं द्विसेटकं खारीत्यादि व्यवहारो भवति तत्र वस्तुतः एक
स्मिन्नेव तूलासूत्रे एकएवदण्डः द्रव्यगतभेदानां तत्तल्लेखावच्छेदेनाश्रयतया
भिन्नः तथैव प्रकृते जन्मादिनानाशक्तिसमनुगत कालशक्तिरेकापि नानात्वेन
एकस्मिन् ब्रह्मणि व्यवहियते इत्युप पत्तिरनुभूयतां सुधीभिरितिदिक्

सा कालशक्तिर्ब्रह्मभिन्ना उत्ततत्त्वरूपा इति बोधयितु माह —

एकस्य सर्वं बीजस्य यस्य चैयमनेकधा ।

भोक्तृभोक्तव्यरूपेण भोगरूपेण च स्थितिः ॥ ४ ॥

एकस्येति सर्वबीजस्य सर्वेषां बीजं कारणं तस्येत्यर्थः एकस्य सजातीय
द्वितीयरहितस्य यस्य ब्रह्मणः अनेकधा अनेकरूपा भोक्तृभोक्तव्यरूपेण
भोक्ता च भोक्तव्यश्च तयो रूपं तेन रूपेण द्वन्द्वान्ते श्रयमाणतया प्रत्येक मन्वयः
तथा च भोक्तृरूपेण अहंममेत्यभिमानलक्षणजीवरूपेण भोक्तव्यरूपेणान्नपाना-
दिविषयरूपेण चेति पर्यवसानम् भोगरूपेण च भोजनशयनादिक्रिया
रूपेणेत्यर्थः लोकव्यवहारार्थं प्रवर्तते इत्यध्याहारः अयम्भावः वेदान्ते अविद्या
इति सांख्ये सत्यरजस्तमस्साग्मावस्था प्रकृतिरिति च याकथ्यते सैवेहकाल
शक्ति शब्देन बोध्यते इयमेव लोके यावद्व्यवहाराणां प्रवर्तिका ब्रह्म च निर्विः
कारं चिदानन्दरूपम् सदा एकरूपं कदापि कुत्रापि न व्यवभिचरति यथा
रज्जुत्वाज्ञानमेव रज्जुस्थले सर्पः दण्डः जलधारा इत्यादि ज्ञानं प्रवर्तकम्
रज्जुस्तु सदा स्वरूपेणैव तिष्ठति कदापि वस्तुतः सर्पो न भवति इदमत्रविचा-
रणीयम् रज्जुसत्तानस्यात् चेत्तदा तु सर्पादिसत्तापि न भवेत् अतः स-

र्पादिसत्ता न रज्जुसत्तातः पृथक् अतः रज्जुभेदेन वक्तुं शक्यः । किञ्च वस्तुतः रज्ज्वभिन्नोऽपि न सर्पः । रज्जुजनितकार्यस्य सर्पेणाजननेन वास्तविकस्य रज्ज्वभेदस्य बाधात् । तस्माद्भेदरूपेणा भेदरूपेणचावाच्यत्वात् सर्प्योऽनिर्वाच्यः रज्जुस्तुनिर्वाच्यः सत्यः तथैव प्रकृतेऽपि ब्रह्म सत्यं निर्वाच्यं मायातु अनिर्वाच्या असत्या सैव शक्तिः अनिर्वाच्यं विचित्रं संसारं प्रसूते ननु संसारस्य मायारूपत्वमेवासिद्धमिति चेन्न अन्तवत्त्वाद् दृश्यवत्त्वाच्च स्वप्नवत् इत्यादि हेतु दृष्टान्तादिभिः संसारस्य मायारूपत्वम् अन्यत्र साधितम् । विस्तरेण तत एवावगन्तव्यं इति वेदान्त प्रक्रिया अत्रब्रह्मपदेन शब्द रूपं ब्रह्मेति कुत्रापि विस्मरणीयमिति दिक् । ४

ननु अस्तूकलक्षणं ब्रह्म तत्प्राप्तिस्तु ज्ञानादेव भवेद् तदा किं व्याकरणेनेति शंकापरिहाराय परम्परया व्याकरणस्य तत् प्राप्तपुपायतां प्रदर्शयति ।

प्राप्तपुपायोऽनुकारश्च तस्य वेदो महर्षिभिः ॥

एकोऽध्यनेकवर्त्मैव समाप्नातः पृथक् पृथक् ॥ ५ ॥

प्राप्त्युपेति । तस्य ब्रह्मणः प्राप्तपुपायः प्राप्तेरुपायो मार्ग इत्यर्थः अनुकारोऽनुकरणम् (भाषायां नकल फोटो इत्यादि कथ्यते) वेदः सच एकोऽपि महर्षिभिः याज्ञवल्कादिभिः अनेक वर्त्मैव अनेकशाखात्मकः पृथक् पृथक् भिन्नः भिन्नः समाप्नातः प्रणीतः व्यवस्थापित इति यावत् अयमाशयः यथा वृन्दावनं दृष्टवान् पुरुषः तत्र जिग्मिषुं अन्यस्मिन् तत्प्राप्त्यर्थं प्रतिपादयति एतादृशो मार्गोऽस्ति मार्गे च अमुकं अमुकं नगरं विद्यते तेन गन्तव्यं यत्र यमुना पतितपाविनी लिशालातिविशाल मन्दिरो मन्दिरे २ गेहे २ च अनुपमाभरण भूषित श्री राधा कृष्ण विग्रहाः श्री राधे श्यामेति शब्दैः गुञ्जायमान गगनः इत्यादि दृश्यं तज्ज्ञातव्यं इदमेव श्रीवृन्दावनधाम इति तथैव महर्षयः तपस्याविशुद्धान्तःकरणेन समाहितचेतस्काः नित्यां वाचं शब्दरूप ब्रह्म साक्षात् कृतवन्तः मंत्रद्वयः अङ्गेभ्यः परेभ्यो बोधन द्वारा तत्प्राप्त्यै वाक्यात्मकशब्दसमुहुरूपेण अनुकरणं प्रादर्शयन् । स एव वेदः सच स्वरूपेण भेदाभावादेक एव अध्ययनाध्यापननिबन्धनशाखाभेदेन लोकेश्वर्यमाणवाक्यात्मकशब्दभेदोपदेशभेदप्रयुक्तस्मृतिपुराणेतिहासभेदेन च पृथक् पृथगिव महर्षिभिः कृतः एवञ्च ब्रह्मानुकरणवेदज्ञानात् ब्रह्मज्ञानं स्यात् ततोमोक्षः इतिवेदः ब्रह्मप्राप्त्युपाय इति सिद्धम् ॥ ५ ॥

ननु महर्षिकल्पितशाखानां परस्परं भिन्नत्वेन विरोधात् एककर्मणि समावेशो न स्यात् तथाच शाखाभेदेन कस्मादपि भिन्नं स्याद् इति शङ्का परिहाराय आह

भेदानां बहुमार्गत्वं कर्मण्येकत्र चाङ्गता ।

शब्दानां यतशक्तित्वं तस्यशाखासु दृश्यते ॥ ६ ॥

भेदानामिति शतमध्वर्युशाखाः सहस्रसाम्नः एकविंशतिधा बहुव्चां नवधाऽध्वर्णो वेद इत्यादि शाखा भेदानां बहुमार्गत्वं नाना मार्गाः शाखा भेदाः एकस्मिन् साधनीये अनेके उपायास्ते इतियावत् कर्मणि एकत्र एकस्मिन् कर्मणि अंगता अन्यशाखाप्रदिपादितकर्मण्यपि इतरशाखासु मंत्राणां विनियोग इति नन्वेवं सर्वेषां एकस्मिन् समावेशात् विरोधाभावेन तत्तच्चशाखानां किंप्रयुक्तो भेद इति मनसि निधायाह शब्दानामिति त्यादि तस्य वेदस्य शाखासु पूर्वोक्तशाखासु शब्दानां पदात्मकादिप्रयोगाणां यतशक्तित्वम् यता नियताः शक्तयः अर्थबोधकतासामर्थ्यानि येषां तेषां भावः इत्यर्थः दृश्यते इति कर्मप्रत्ययान्तपदबोध्यक्रियायाः कर्ममेदम् इदमत्र फलितम् एकस्मिन् कर्मणि सर्वेषां समावेशसम्भवेऽपि एतदर्थबोधनेच्छया अयं शब्दः अस्यामेवशाखायां उदात्तादिगुणविशिष्टः प्रयुक्तः सन् पुण्यजनको भवति नान्यस्यां शाखायाम् इति नियमः पृथक् पृथक् तत्तच्च शाखायां दृश्यते इति तत्तन्नियमभेदप्रयुक्तएव शाखाभेद इति बोध्यम् अतएव भगवन्तः श्री पाणिनिपादा देवसुम्नोर्यजुषि सिमस्याध्वर्णोऽन्त उदात्त इत्यादि निर्म्ममुः इतिदिक् ।

६

नन्वेवं वेदस्यैव प्रमाणत्वे स्मृतीनां प्रामाण्यं स्यादत आह ।

स्मृतयो बहुरूपाश्च दृष्टादृष्टप्रयोजनाः ।

तमेवाश्रित्य लिङ्गेभ्योवेदविद्भिः प्रकाशिताः ॥ ७ ॥

स्मृतय इति वेदविद्भिः वेदज्ञैः कर्तृपदमिदम् तमेव वेदम् आश्रित्य मूलमादाय लिङ्गेभ्यः हेतुभ्यः श्रुत्यनुगुणहेतुभ्यः ननु शुष्कतर्कभ्य इतियावत् दृष्टादृष्टप्रयोजना दृष्टञ्चादृष्टञ्च ते प्रयोजने यासां ताः दृष्टफलं चिकित्सादिवोधनद्वारा रोगापनयनं अदृष्टफलं भक्ष्याभक्ष्यादिवोधनद्वारा पुण्यपापरूपमिति फलितोऽर्थः बहुरूपाश्च नानारूपाश्च स्मृतय आयुर्वेदादि शास्त्राणि मन्वादिधर्मशास्त्रादीनिच प्रकाशिता मन्द धियामुपकाराय प्रकटी कृताः । अयम्भावः वेदोक्त एवार्थः श्रुतिवाक्येभ्यः निश्चेतुं मशक्तानां सुखबोधाय स्मृतिषु विस्तरेण प्रकाशितः महर्षिभिरिति स्मृतीनामपि वेद मूलकत्वात् प्रामाण्यमिति दिक् ।

ननु स्मृतीनां वेद मूलकत्वे वेदस्यच एकरूपत्वात् स्मृतिषु मतभेदोऽ
प्रामाणिकः स्यादत आह ।

तस्यार्थवादरूपाणि निश्चित्य स्वविकल्पजाः ।

एकत्विनां द्वैतिनांच प्रवादा बहुधा मताः ॥ ८ ॥

तस्यार्थेति तस्य वेदस्य अर्थवादरूपाणि अर्थवादात्मकवाक्या-
नि निश्चित्य निर्णय ऋषिभिरिति कर्तृपदं अध्याहार्यम् अत एव मता
इत्येतदपेक्षया अस्य समानकर्तृकत्वात् समान कर्तृकयोरिति क्त्वा
स्वविकल्पजा स्वस्वानुभवानुसारेण एकत्विनां वेदान्तादीनां द्वैतिनाञ्च
न्यायादीनाञ्च प्रवादाः सिद्धान्ताः बहुधा बहुरूपाः मताः स्वीकृताः अयमा-
शयः अर्थवादादिप्रकरणेषु कचित् कर्माकाण्डस्तुतिः एवं रुद्रस्तुतिः सूर्य
स्तुतिः इत्यादि वर्तन्ते तत्र स्वस्वरूप्या एकं प्रधानीकृत्य तत्तत् परिपुष्ट्यै तत्त-
द्दर्शनं निरमायि अतः सर्वासां वेदमूलकत्वात् प्रामाण्यमिति ।

नन्वेवं खलु प्रवादेषु किं सत्यं तत्राह ।

सत्या विशुद्धिस्तत्रोक्ता विद्यैवैकपदागमा ।

युक्ता प्रणवरूपेण सर्ववादाविरोधिनी ॥ ९ ॥

सत्येति । तत्रोक्तप्रवादेषु एकपदागमा एकपदरूपाश्रुतिः विशुद्धिः
सर्वकल्पनादिदोषरहिता सर्ववादाविरोधिनी सर्ववादेषु अविरोधिनी
कस्मिन्नपि सिद्धान्ते अस्या विरोधो नास्तीति यावत् प्रणवरूपेण युक्ता प्रणव
रूपा ओं इतिवाक् विद्या सर्वार्थ प्रकाशिनी सत्या यथार्था उक्ता कथिता अयमा-
शयः एकमेवाऽहं द्वितीयो नास्ति सत्यं विज्ञान मानन्दं ब्रह्मेत्यादि प्रतिपाद्यं एक
मेव ब्रह्म सत्यं तस्य च साक्षाद् बोधकः प्रणवः अतः तयोरभिधानाभिधेययो-
रैक्यात् प्रणवरूपं ब्रह्म सत्यमिति फलितम् । संसारस्य च सर्ववस्तुनः तत्रैव
कल्पितत्वम् कल्पनायाश्च मिथ्याज्ञानमूलत्वेन मिथ्यात्वात् तत्कृतविरोध
दोषलेशोपि ब्रह्मणि नास्ति यथा गगने तलमलिनत्वादेः चालैः कल्पितत्वेऽपि
तत्कृतदोषस्य आकाशे असत्त्वमेव तथाच प्रणवरूपमेव ब्रह्म नानाशब्दकल्प-
नायाः नानार्थकल्पनायाश्चाधिष्ठानम् अतः कल्पनायाः स्वस्वबुद्ध्यनुसारित्वात्
विरोधेऽपि अधिष्ठानस्य निर्विकल्पस्य ब्रह्मणः कुत्रापि विरोधो नास्तीति वेदान्त
सिद्धान्तं रीत्यायम् ग्रन्थ इति ध्येयम् ।

ननु प्रणव एकपद कथं सर्वरूप इत्यत आह ।

विधातु स्तस्य लोकाना मङ्गोपाङ्गनिबन्धनाः ।

विद्याभेदाः प्रतायन्ते ज्ञानसंस्कारहेतवः ॥१०॥

विधातुरिति । लोकानां सकलजगतां विधातुः प्रकृतेः प्रामाण्य-
ञ्चात्र सहि शब्दार्थ प्रकृतिरिति श्रुतिः प्रकृतिपदेनात्र विवर्त्तोपादानकारण
गृह्यते इति पूर्वमेव प्रपञ्चितम् तस्य प्रणवस्य अंगोपाङ्गनिबन्धना अङ्ग-
ओपाङ्गश्च तेनिबन्धने प्रयोजके येषां ते विद्याभेदा व्याकरणादयः चिकित्सा
दयश्च ब्रह्मणः अङ्गेभ्यो व्याकरणादयः उपाङ्गेभ्यश्चिकित्सादयः इति फलितम्
ज्ञानसंस्कारहेतवः ज्ञानपदेन सम्यक्ज्ञानं संस्कारपदेन पुरुषसंस्कारः
तयोर्हेतवः कारणानि प्रतायन्ते प्रभवन्तीतियावत् एवञ्च सर्वेषां प्रणवप्रभ-
वत्वात् प्रणवरूपत्वेन ऐक्यमेवेति भावः ।

तेषु विद्याभेदेषु व्याकरणं ब्रह्मणः प्रत्यासन्नमित्याह ।

आसन्नम् ब्रह्मण स्तस्य तपसामुतमं तपः ।

प्रथमं छन्दसामङ्गं प्राहु व्याकरणां बुधाः ॥११॥

आसन्नमिति । बुधाः महर्षयः तस्य वेदरूपस्य ब्रह्मणः आसन्नं
समीपम् साधुत्वबोधनद्वारा स्वरूपसंस्कारकस्य व्याकरणस्य साक्षादुपकार-
कत्वात् आसत्तिर्बोध्या तपसां चान्द्रायणादीनां स्वाध्यादीनाञ्च मध्ये
उत्तमं अधिकं मिदम् तपः अस्य दृष्टाऽदृष्टो भयफले हेतुत्वात् अतएव अक्षरं
समास्त्यस्य ज्ञानमात्रेण सर्वपुण्यफलप्राप्तिबोधकस्मृतिः संगच्छते
छन्दसां वेदानां प्रथमं प्रधानं अङ्गमव्याकरणं प्राहुः कथयन्ति अतएव म-
हाभाष्ये प्रधानञ्च षडङ्गेषु व्याकरणम् प्रधाने च कृतोत्तमः फलवान् भवति इति
प्रतिपादितम् ।

ननु कया युक्त्या प्राधान्यमित्यत आह ।

प्राप्तरूपविभागाया यो वाचः परमोरसः ।

यत्तत्पुण्यतमं ज्योतिस्तस्य मार्गीयमाञ्जसः ॥१२॥

प्राप्तरूपेति प्राप्ताः रूपविभागाः वर्णरूपविभागः पदरूपविभागः वाक्यरूपविभाग-
श्चेति यस्याः तस्या वाचः गिरः यः परमोरसः गोत्वशिष्टव्यक्तिनिष्ठकर्मत्व-
बोधने गामिति शब्दः अभ्युद्ध्यहेतुः एवं रीत्या नियमितसाधुभावः शब्दसमुदायः
एतेन भाषायाः अर्थबोधनियतत्वेऽपि पुण्यहेतुत्वाभावात् व्यावृत्तिः

यत् ज्योतिः शब्दः, अनिर्यथा स्वप्रकाशेन घटपटादिवोधयति तथैव शब्दोऽपि
 अर्थप्रकाशकः अतो ज्योतिरित्युक्तम् तूत पुण्यतमम् प्रयोक्तुः पुण्यजनकत्वात्
 पुण्यतममिदम् स्वयं पवित्रमेवान्यं पवित्रयति यथा गङ्गाजलम् तस्य साधु-
 शब्दसमूहस्य किञ्चित्सामान्यलक्षणम् आदगुण इति किञ्चित्च विशेषलक्षणं वृद्धिरा-
 दैव इति एव स्वरूपक व्याकरणरूपः मार्ग उपायः आज्ञसः स्वाभाविकः
 ऋजुरितियावत् अयम्भावः पौर्वापर्यक्रमहीनं एकमेवाखण्डरूपं शब्दतत्त्वं ब्रह्म
 एतस्य साधुत्वं बोधनम् व्याकरणेन न सम्भवति किन्तु एतस्मात् यदा वर्णपद-
 वाक्यात्मकानां शब्दानां घटपटादिनामार्थानाञ्च सृष्टिर्भवति तदाभाषादीना-
 मपि शब्दत्वेन लोके अर्थबोधकत्वेऽपि वेदे संस्कृतस्यैव प्रयोगात् संस्कृत-
 शब्दानां व्याकरणेन घटकर्मकामयनार्थबोधने घटमानयेति शब्दः साधुरिति
 रीत्या साधुत्वबोधनात् वेदस्य साक्षात् स्वरूपबोधकं व्याकरणम् इति सिद्धं
 व्याकरणस्यैव प्रधानत्वम् इदमत्र फलितम् व्याकरणेन वेद स्वरूपज्ञानम् ततश्च
 तन्मूलभूतप्रणवस्वरूपज्ञानं ततश्च ब्रह्मज्ञानमपि जातमेव ओमित्येकाक्षरं
 ब्रह्मेति गीताप्रामाण्यात् तयोस्तादात्म्यात् ततश्च मोक्षः सिद्ध इति दिक् १२

एतदेव प्रपञ्चयति २२ द्वाविंशति श्लोकपर्यन्तम् ।

अर्थप्रवृत्तितत्त्वानां शब्दाएव निबन्धनम् ।

तत्त्वावबोधः शब्दानां नास्ति व्याकरणाद्वृत्ते ॥१३॥

अर्थेति अर्थानां घटपटादि वस्तूनां प्रवृत्तयः व्यवहारविषयताः तासां
 तत्त्वानि तेषां निबन्धनम् ज्ञापकम् शब्दाएव निबन्धनेति विशेषणे एक-
 वचनम् उद्देश्यतावच्छेदकशब्दत्वव्यापकतया विधेयान्वयबोधनाय विशेष्यगत
 बहुत्वसंख्याया विशेषणेनाऽविवक्षया वेदाः प्रमाणमितिवत् जातिगतैकत्व
 मादाय बोध्यम् तत्त्वपदेनात्र विवक्षाया ग्रहणमतिकेचित् विवक्ष्यशब्दादेव हि
 लोकाः तत्तदर्थबोधनयोग्यं तत्तच्चशब्दं प्रयुज्यते यथारूपग्रहणयोग्येन चक्षुरिन्द्रि-
 येणैव रूपोपलब्धिः ननु श्रवणेन प्रयोगश्च शब्दाधीनः अतः शब्दमन्तरा विवक्षया
 असम्भवात् विवक्षानिबन्धनम् शब्दाः अपरे तत्त्वपदेन घटत्वपदत्वादिसामा-
 न्यङ्गृह्यते तेषां निबन्धनं बोधकः शब्द इत्याहुः परेतु प्रवृत्तिपदेन आख्यातार्थ
 जन्मादिक्रिया बोध्यते तस्यास्तत्त्वं साध्यत्वम् साधनाकांक्षारूपम् सर्वत्र हि
 प्रथमं नाम बुद्धौ कृतवैचार्यं साधयति यथा कुम्भकारः पूर्वं बुद्धौ घटं वा शराव-
 चा करिष्यामीति विनिश्चित्यैव तदनुसारेण घटं शरावश्च रचयतीत्यतः साध्यत्व
 निबन्धनं शब्दा इति कथयति शब्दानां तत्त्वं साधुत्वं तस्या वबोधः
 ज्ञानम् व्याकरणाद्वृत्ते शब्दशास्त्रं विना नास्ति नभवतीत्यर्थः १३

तद्द्वार मपवर्गस्य वाङ्मलानां चिकित्सितम् ।
पवित्रं सर्वविद्यानां मधिविद्यं प्रकाशते ॥१४॥

तद्द्वारेति अपवर्गस्य मोक्षस्य द्वारं व्यापारः तद् व्याकरणम् अय-
माशयः व्याकरणेन साधुशब्दानां ज्ञानात् प्रयोगाच्च सञ्जातधर्मविशेषेण
विशुद्धेऽन्तःकरणे वर्णपदवाक्यात्मकध्वन्यतिरिक्ता एकाऽखण्डरूपा मध्यामा-
वाक् प्रत्यगन्तःकरणसन्निविष्टा एवाऽर्थबोधिका स एव स्फोट इति
साक्षात्कारो भवति ततोऽपि दृढताराभ्यासात् मध्यमावाक्प्रकृतिभूतां
नाभीस्थां पश्यतीं वाचं पश्यन्ति ततोऽप्युर्ध्वमननात् मूलाधारस्थां ब्रह्मरूपिणीं
परानांमनीं वाचं पश्यन्ति ततश्च ब्रह्मज्ञानान्मोक्षः इति मोक्षमार्गे प्रथमस्थानम्
व्याकरणम् इति योगविद्देवम् वाङ्मलानां वाग्दोषाणां चिकित्सितम्
भावक्तान्तादर्शाद्यच्च तथाच चिकित्साविशिष्टमिति फलितम् यथा आयुर्वेदे
शारीरिकचिकित्सा सर्वविद्यानां सर्वासु विद्यासु इदं पवित्रम् पुण्यम् सकल
विद्यास्थशब्दसंस्कारकत्वात् अविविद्यं विद्यासु विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः
प्रकाशते द्योतत इति १४

यथार्थजातयः सर्वाः शब्दाकृतिनिवन्धनाः ।
तथैव लोके विद्यानां मेषां विद्या परायणम् ॥१५॥

यथैवेति यथा अर्थजातयः घटत्वपटत्वादयः सर्वाः सकलाः
शब्दाकृतयः घटशब्दत्वपटशब्दत्वादयः निवन्धनानि वाचकानि यासां
ताः अयम्भावः अर्थगतजातिर्वाच्या शब्दगतजातिः वाचिका तथाच शब्द
ज्ञानाधीनं अर्थज्ञानं अतः शब्दानां प्राधान्यम् तथैवल्लोके विद्यानां मध्ये
एषा विद्या परायणम् श्रेष्ठा प्रधानशब्दसंस्कारकत्वात् इति १५

इदमाद्यपदस्थानं सिद्धिसोपानपर्वणाम् ।
इयं सामोक्षमाणानां मजिह्वा राजपट्टतिः ॥१६॥

इदमेति सिद्धेः मोक्षस्य सोपानम् आरोहमार्गः तस्य पर्वणि
ग्रन्थयः तेषां मध्ये आद्यं प्रथमं पदस्थानं चरण निक्षेपस्थलम् इदं व्याकर-
णम् मोक्षमाणानां मुक्तिकामानां साध्यं आजिह्वा अकुटिला सुखेन गम्या
इत्यर्थः राजपट्टतिः राजमार्गः अस्तीतिक्रियाक्षेपः इयमिति स्त्रीलिङ्गनिर्देशः उद्दे-
श्यविधेययोरैक्यमापादयत्सर्वनाम पर्यायेण तत्तल्लिङ्ग भागं भवतीति न्यायेन

विधेः प्रगतस्त्रीत्वविवक्षया ।

१६

अत्रातीतविपर्य्यासः केवला मनुपश्यति ।

छन्दस्यश्छन्दसां योनिमात्मा छन्दोमयीं तनुम् ॥१७॥

अत्रोति अत्र व्याकरणे अतीतविपर्य्यासः अपगतभ्रमः सम्यग्ज्ञानवान् इति यावत् छन्दस्यः शुद्धः आत्मा अन्तःकरणम् छदसां योनिं कारणम् छन्दोमयीं छन्दोरूपां तनुं सुक्ष्मां केवलां मध्यमाद्याख्यां वाचम् अनुपश्यति जानाति

१७

प्रत्यस्तमितरूपाया यद् वाचोरूपमुत्तमम् ।

यदग्निनेव तमसि ज्योतिः शुद्धं प्रवर्त्तते ॥१८॥

प्रत्यस्तमितेति प्रत्यस्तमितानि आच्छादितानि अज्ञातानीतियावत् रूपाणि घट इति प्रथमैकवचनविभक्त्यन्तत्वं भवतीति प्रथमपुरुषैकविभक्त्यन्तत्वं इत्याद्याकारकाणि यस्याः तस्याः वाचः घटोभवतीत्यादेः यत् उत्तमरूपं घट इति रूपं भवतीति च रूपं इत्यर्थं केचिद्वदन्ति परेतु व्याकरणानभिज्ञा लोकाः घटोभवतीत्यादिस्थले श्रावणप्रत्यक्षविषयवर्णादिषु एव शब्दत्वं मन्यन्ते न तु तदभिध्यङ्ग्यः तदतिरिक्तः अखण्डस्फोटः शब्द इति जानन्ति अतः प्रत्यस्तमितं रूपं अखण्डत्वादि यस्यास्तस्या वाचः मध्यमाख्यशब्दस्फोटस्य यत् उत्तमरूपं अखण्डत्वादि एतस्मिन् कल्पे उत्तमपदस्य अग्रे शुद्धपदस्य च स्वारस्य स्वरसतः उपपद्यते इत्याहुः तमसि अन्धकारे अज्ञानतःकरणे च ज्योतिः पद्मादि प्रकाशः अग्निना इव व्याकरणेन शुद्धः स्वच्छं प्रवर्त्तते सम्यग्यते इतिदिक्

वैकृतं समतिक्रान्ता मूर्तिव्यापारदर्शनम् ।

व्यतीत्या लोकतमसी प्रकाशं यमुपासते ॥१९॥

वैकृतमिति वैकृतं तदाख्यनादं समतिक्रान्ता अतीत्यवर्त्तमाना मध्यमादिवाक् आलोकतमसी व्यतीत्य त्यक्त्वा मूर्तिः स्वकीयाखण्डत्वादिः व्यापारः, घटाभिव्यङ्ग्येन घटत्वावच्छिन्नबोधनं पटाभिव्यङ्ग्येन पटत्वावच्छिन्न बोधनञ्चेत्यादि तयोर्दर्शनं ज्ञापकं यस्मिन् प्रकाशं व्याकरणाख्यमुपासेत समाश्रयते अयम्भावः घटादिरूपं आलोके मण्यादि प्रकाशश्च अन्धकारे प्रस्फुरति मध्यमावाचस्तु मूर्तिव्यापारौ उक्तोभयातिरिक्ते व्याकरणे ज्ञायेते इति व्याकरणस्य प्राशस्त्यम्—इतिदिक्

१९

यत्र वाचो निमित्तानि चिह्नीवाक्षरस्मृतेः ।
शब्दपूर्वेण योगेन भासन्ते प्रतिविम्बवत् ॥ २० ॥

यत्रेति यत्र व्याकरणे वाचः मध्यमावाचः निमित्तानि वर्णपदवाक्य
प्रकृतिप्रत्ययादीनि अक्षरस्मृतः, वास्तविकाकाशवृत्त्यक्षराणां स्मरणस्य चिह्ना
नीव लिपयइव शब्दपूर्वेणयोगेन प्रकृतिप्रत्ययादिव्युत्पादनेन प्रतिविम्ब
वत् प्रतिक्षाया इव भासन्ते ज्ञायन्ते अयमाशयः, व्याकरणे प्रकृति प्रत्ययादि
व्युत्पादनं मध्यमावाचः स्मरणार्थं चिह्नम् ननु वास्तविकमिति तस्या अखण्ड-
त्वात् अक्षरस्य लिपिरिवेति ॥ २० ॥

अथर्वणा मङ्गिरसां साम्ना मृग्यजुषस्य च ।
यस्मिन्नुच्चावचा वर्णाः पृथक् स्थितपरिग्रहाः ॥ २१ ॥

अथर्वणामिति ऋक् च यजुश्चेति द्वन्द्वे द्वन्द्वोच्छुद्धयहान्तेतिद्वि ऋ य
जुषः तस्य अन्यत् सर्वं सुगमम् सर्वासां श्रुतिस्मृतीनामिति यावत् उच्चावचाः
स एव क्वचित् उदात्तः क्वचित् अनुदात्तः क्वचित् आत्मना अन्यत्र तमना
इत्यादिरूपा वर्णाः यस्मिन् व्याकरणे पृथक् स्थितपरिग्रहाः असंकीर्णाः यथा
वत् प्रतिपादिता इत्यर्थः ॥ २१ ॥

यदेकं प्रक्रियाभेदै बहुधा प्रविभज्यते ।

तद् व्याकरण मागम्य परं ब्रह्माधि गम्यते ॥ २२ ॥

यदिति यद् एकं व्याकरणं भवतीत्यादौ पदं प्रक्रियाभेदैः क्वचित् लट्
तस्य स्थाने तिप् क्वचित्तिपः लट् संज्ञा इत्याद्युपाय भेदैः बहुधाप्रविभज्यते
विभक्तं भवति तद् व्याकरणां आगम्य ज्ञात्वा मध्यमावागादिज्ञानद्वारा
परं ब्रह्म अधिगम्यते प्राप्नोतीतिदिक् २२ ॥

ननु अनित्याः शब्दाश्चेद् तदा लोकाः प्रतिक्षणं नवं नवं उत्पादयिष्यन्ति ततः
शब्दानां व्याकरणेन अनुग तु मशक्यत्वात् किं व्याकरणेन इत्यत आह

नित्याः शब्दार्थ सम्बन्धाः समाम्नाता महर्षिभिः ।

सूत्राणां सानुतंत्राणां भाष्याणाञ्च प्रणेतृभिः ॥ २३ ॥

नित्याइति अल्प व्याख्या स्पष्टैव सूत्रकारवार्तिकारभाष्यकाराणां
त्रयाणां मते शब्दः अर्थः सम्बन्धश्चेति त्रयोऽपि नित्याइति तात्पर्यम् यदि शब्दाः
अनित्याः स्युः तदा प्रतिक्षणं उत्पत्तिमतां शब्दानां असंख्यात्वेन अनुगमा
सम्भवात् श्रीपाणिनेः सूत्रप्रणयनमेव व्यर्थं स्यात् यदि नित्याः तदा तेषां व्यवस्थि
ततया अनुगमाय सूत्रप्रणयनं सार्थकम् यद्वा तदशिष्यं संज्ञा प्रमाणत्वात् इति

सूत्र मेव प्रमाणम् सिद्धे शब्दार्थ सम्बन्धे, इति वदन् वर्त्तिककारोऽपि प्रमाणम् नित्येषु शब्देषु कुटस्थैरविचालिभिरित्यादि भाष्यकारोक्तमपि नित्यत्वेऽनुकुलम् इत्याद्यूह्यम् अत्रत्यविचारो वादिविजयाय वितन्यते केचित्तु शब्दपदेन शब्दत्वव्याप्यकलशशब्दत्वादजातिः अर्थपदेन अर्थगत घटत्वादजातिः बोध्यते जातिरेव वाचिका जातिरेव वाच्या ते उभेनित्ये ननु जातेः वाचकत्वे तस्या नित्यत्वेन सदा विद्यमानतया सर्वदैव कथनार्थबोध इति चेन्न तस्या विद्यमानत्वेऽपि अभिव्यक्तेरभावात् तथाहि कलशशब्दत्वाश्रय कलशशब्दस्योच्चारणानन्तरं श्रावणज्ञानं यदा भवति तदा तद्गतजातिः, अभिव्यज्यते अनुच्चारण दशायां तदभि व्यञ्जक शब्दव्यक्ते ज्ञानाभावेन जातेरपि ज्ञानाभावः नच कम्बुग्रीवादि मद्ध्यक्ते यावतां अवयवानां युगपत् विद्यमान-तया तदारब्धः अवयवी कम्बुग्रीवादिमान् तस्मिन् घटत्वजातेः पर्याप्तत्वेन अवयविज्ञानेन तद्गतजातिरभिव्यज्यते इति समुचितम् कलशशब्दस्य तु प्रत्येकवर्णानामुच्चरितप्रध्वंसितत्वेन ककारादिवर्णात्मकावयवानां यावतां युगपद्साहित्यावस्थानासम्भवेन अवयविनमारब्धुमशक्यतया अवयविनि कलशशब्दत्वजातेः पर्याप्तत्वा भावेन कथं सा जाति रभिव्यज्यते प्रत्येकं पर्याप्तत्वे तु द्वितीयादि वर्णोच्चारणस्य वैयर्थ्यापत्तिश्चेति वाच्यम् यथा न्याय नयेऽपि भ्रमणत्वं जातिः भ्रमण व्यवहार्यता अनेकेष्वेव व्यापारेषु ननु एक-स्मिन्व्यापारे तथाच क्रियायाः तृतीयक्षणे ध्वंसात् प्रथम व्यापारस्य द्वितीय व्यापारोत्पत्तिसमये नाशः तस्यापि तदुच्चारव्यापारकाले नाशः एवंरीत्या क्रमेण उत्पद्यमानानां विनश्यतांश्च यावतां व्यापाराणां एकस्मिन् काले साहित्या-सम्भवेऽपि अपेक्षाधिया यावतां संकलनया तावद्व्यापारात्मकावयवारब्धा, वयविरूपं भ्रमणाख्यक्रियाविशेषं बुध्यते ततश्च तद्गतजातिरपि बुध्यते एव प्रकृते क्रमेण उत्पद्यमानानां विनश्यतांश्चापि वर्णानां स्मरणद्वारा एककाले साहित्यसम्भवेन अवयविज्ञानेन तद्गतजात्यभिव्यक्तेर्वाधकोभावात् प्रत्येकं अपर्याप्तत्वेन द्वितीयादिवर्णोच्चारणवैयर्थ्याभावाच्च वस्तुतस्तु वैया-करण मते वर्णानां उच्चरितप्रध्वंसितत्वेन साहित्यासम्भवात् पूर्वपूर्व वर्णानुभवजनितसंस्कारसहकृतान्त्यवर्णानुभवोद्भूतसंस्कारेण युगपत् यावत् वर्णानां स्मरणेन साहित्यसम्भवेऽपि नष्टविद्यमानयोः अधिकरण तायाः नष्टे घटे जलम् इत्यादिवत् व्यवहारविरुद्धतया शक्त्याश्रयताया असम्भवाच्च कलशेत्याद्यति रिक्तः तदभित्यङ्गयः स्फोट एव वाचकः स एव जातिरूपः नित्यश्च सच पूर्वपूर्ववर्णानुभवजनितसंस्कारसंस्कृते अन्तः करणे अन्त्य वर्णविज्ञानतोऽभिव्यज्यते यथा मण्यादि परिचयः वारं वारं दृष्टेसति तत्रात् संस्कार संस्कृतेन मनसा क्रियते अत एव न पूर्व पूर्व वर्णानामानर्थक्यम् तथाच यथा प्रदीपादौ अभिव्यञ्जके घटाद्यधिकरणतायाः असत्त्वेऽपि तत्सम्बन्धेन अभिव्यज्यते तथैव कलशेत्याद्यानुपूर्वीषु जात्यधि

करणतायाः असत्त्व स्वीकारेऽपि तत्ताद् वर्णं जातेरभिव्यक्तिः अधिकरणश्चास्या मध्यमावागाख्यस्फोटरूपतया हृदिस्था मध्यमाज्ञेया इति प्रमाण्यात् हृदयदेशः एवञ्च न दोषलेश इति बोध्यम् अगरे जाति मस्वीकुर्वाणा अनेकवर्णाभिव्यङ्ग्यां नित्यां शब्दव्यक्तिं मन्यन्ते तत्रापि केचन एकस्यामपि कलशादिशब्दव्यक्तौ नाना वर्णा इति संगिरन्ति परेतु प्रतिपदं प्रतिवाक्यं चैक एव शब्द अवास्तविककर्मोत्पन्नावयवप्रत्यवभासतया प्रकाशते इत्याहुः अपरे व्यवहारानादित्वेनैषां नित्यत्वं स्वतोऽनित्यत्वञ्चेति स्वी कुर्वन्ति अर्थानामपि आकृति नित्यत्वात् व्यक्तिप्रवाहनिनित्यत्वाद्वा नित्यत्वं मन्यन्ते सम्बन्धमन्तरा अर्थोपदेशस्या शक्य कर्तव्यत्वात् सम्बन्धोऽपि औत्पत्तिकः स्वभावसिद्धः अनादिः प्राप्ताविच्छेदः इति नित्य इति सिद्धम् सच शब्दार्थयोः शङ्केतग्राह्या तादात्म्यरूपा योग्यता यथेन्द्रियविषययोः प्रकाश्यप्रकाशकभावः केचिच्च शब्दैरर्थानां बुद्धौ कल्पनात् अर्थ बुद्ध्याच तत्प्रतिपादनाय शब्दकल्पनात् कार्यकारणभावः सम्बन्ध इत्याहुः २३
ननु वाक्य स्यैव लोके प्रयोगात् वाक्यवाक्यार्थयोः । तत्सम्बन्ध स्यैवच नित्यत्वात् इति प्रकृति प्रत्यादि कल्पनं विफल मित्यतश्चाह

अपोद्धारपदार्था ये येचार्थाः स्थितलक्षणाः ।

अन्वाख्येयाश्च ये शब्दा येचापि प्रतिपादकाः॥२४॥

अपोद्धार इति अपोद्ध्ययन्ते यानि तानि अपोद्धारानि कर्मणि घञ्-
तानि च पदानि तेषां अर्थाः अयमर्थः लोके वाक्यस्यैव प्रयोगात् अखण्डवाक्यार्थ एव वास्तविकः अतएव वृक्ष इत्युक्तेक्रियापदं विना अर्थानिरूपणात् क्रिया विशेषापेक्ष नियमः अतः सर्वत्र अस्ति भवतीत्यादीनामाक्षेप इति वैयाकरणसमयः परञ्च तेषामानन्त्यात् प्रतिपदपाठेन उपदेशं कर्तुं मशक्यतया लघुनोपायेन साधु शब्दबोधनाय शास्त्रे, पदानि प्रविभज्य तेषामर्था अपि कल्पिता ते एव अर्थाः अपोद्धारपदार्थाः कथ्यन्ते एवं शास्त्रव्यवहारं दृष्ट्वा लोका अपि अस्य पदस्य अयमर्थः इत्यादि व्यवहरन्ति अतएवापोद्भूतपदस्यैवार्थवत्त्वं मत्वा कृत्तद्धिता-
न्तश्चैवार्थवन्नकेवलाः कृत स्तद्धितावेति भाष्ये उक्तम् एव मेव ऋषिभिः स्वस्व-
भावनानुसारेण प्रकृतिः प्रत्ययः तत्तदर्थश्च धात्वर्थः प्रातिपदिकार्थः इत्यादि कल्पितः अतएव अर्थवत् सूत्रे अप्रत्यय पञ्चुदासः अधातु पञ्चुदासश्चरितार्थः इति तत्सूत्रे भाष्ये स्पष्टम् (अन्वाख्येयाश्चेति) प्रकृतिप्रत्यादयः प्रतिपादका इति भूतिभूतिरित्यादि पदानि वाक्यानि च तत्र केवाश्चित् पदावधिकान्वाख्या-
नं केवाश्चिद्वचनवधिकान्वाख्यानम् तत्र पूर्वपक्षे विशेषणपदानि सामान्यार्थ बोधकतया सामान्ये नपुंसक मिति वलेन नपुंसकैकवचने लब्ध संस्काराणि वि-
शेष्यपदान्तर सम्बन्धे सत्यपि अन्तर्गृह्यत्वाज्जात संस्कारस्य बाधायोगेन नपुंसक लिङ्ग एव प्रयोगो भवेत् तदर्थं विशेषणानां जातेरिति भावित्रहिरङ्ग सम्बन्धः पेश

संस्कारबोधकम् द्वितीयपक्षेतु पदानां सामान्यार्थत्वमेव नास्ति एवं द्वन्द्वे
द्वन्द्वपदानां प्रत्ययवचं संस्कारे बहुषुलुग्वचनं मुपन्यस्तम् वाक्यं संस्कारमा-
दाय नवा सर्वेषां द्वन्द्वे वद्वर्थत्वा दित्युक्तमित्यलम् अस्य अग्रीम तृतीयश्लोकेना
काक्षापूर्तिः ।

२४

कार्यकारणा भावेन योग्य भावेन चस्थिताः ।

धर्मे ये प्रत्यये चाङ्गं सम्बन्धाः साधव साधुषु ॥२५॥

(कार्येति) शब्दश्च अर्थबोधं जनयति ज्ञानञ्च अर्थेषुप्रत्यस्तमितरूपं
सत् अर्थत्वेनाध्यवस्यति तथैव अर्थबुद्ध्या तत्प्रतिपादनाय शब्दप्रयोगः अतः
शब्दार्थयोः परस्परं (कार्यकारण भावः) सम्बन्धस्तेन (योग्य भावेनेति)
अयमर्थः कार्यकारणयोर भेदाध्यवसायात् योग्य शब्दः सोयमर्थोयोग्यमर्थः
सोयं शब्दः इति प्रतीत्या ओमित्ये काक्षरं ब्रह्मेत्यादि प्रामाण्याच्च तादात्म्यमेव
शब्दार्थयोः सम्बन्धः तदुक्तं सङ्ग्रहे शब्दार्थयोरसम्भेदे व्यवहारे पृथक् क्रिया ।
यतः शब्दार्थयोस्तत्त्वमेकं यत् समवस्थितम् ११ सम्बन्धस्यन कर्त्तास्ति शब्दा-
नां लोकवेदयोः । शब्दैरेवहि शब्दानां सम्बन्धः स्यात्कृतः कथमिति सम्बन्धस्यै
वार्थबोधने योग्यता तद् ग्रहश्च इन्द्रियविषयोरिव प्रकाश्य प्रकाशक भावेन
अतएव यस्य शब्दस्य येनार्थेन तादात्म्यम् सशब्दस्तस्यैवार्थबोधने कारणम्
अतो योग्य भावेनेत्युक्तम् (स्थिताइति) सिद्धादित्यर्थः (साधवसाधुषु) अप-
भ्रंशेषु संस्कृतेषुच येसम्बन्धाः (धर्मे) पुण्ये प्रत्यये अर्थबोधने (अङ्गम्)
कारणम् अयमाशयः यथा संस्कृत शब्दानां तत्तदर्थैः सह सम्बन्धाः बोधदर्श-
नाज्ज्ञायन्ते तथैव भाषाशब्देभ्योऽपि अर्थबोध दर्शनात् तत्तदर्थैः सहसम्बन्धाः
सिध्यन्ति परञ्चायं विशेषः संस्कृतशब्देभ्यः अर्थबोधः पुण्यञ्चोभे भवतः भाषा
शब्देभ्यश्च पुनः केवलार्थ बोधएव अस्यापि सम्बन्धः अग्रीमश्लोकेनेतिदिक् २५

ते लिङ्गैश्च स्वशब्दैश्च शास्त्रेस्मिन्नुपदर्शिताः ।

स्मृत्यर्थं मनुगम्यन्ते केचि देव यथागमम् ॥२६॥

(ते लिङ्गैरिति) (ते) पूर्वश्लोकद्वयेउक्ताः (लिङ्गैः) सूत्रकारादिभिः तिप्तस्
भीत्यादि रूपेण (स्वशब्दैश्च) प्रतिपदपाठरूपेण (अस्मिन्) व्याकरणे
(उपदर्शिताः) व्यवस्थापिताः (स्मृत्यर्थं) स्मृतिप्रणनाय लोकैरपि कैश्चित्
इत्याक्षेपः (यथागमम्) श्रुत्यनुक्लम् केचि देव अनुगम्यन्ते स्पष्टोऽस्यभावः
ननुचैवा साधवसाधुव्यवस्था अप्रामाणिकी इत्यत आह

शिष्येभ्य आगमात्सिद्धाः साधवो धर्म साधनम् ।

अर्थप्रत्यायनाभेदे विपरीतास्त्व साधवः ॥२७॥

अस्यान्वयः स्पष्टएव अयमाशयः साध्वपञ्चशयोरुभयोरर्थबोधकताया
स्तुल्यत्वेऽपि संस्कृत शब्दप्रयोगे धर्म्मो भवति अपञ्चशप्रयोगे नैति व्यवस्था
शिष्टानां परस्पराव्यवहारदर्शनेन तद्वोधकस्मृतिः श्रुतिमूलिकैव मन्वादि
स्मृतिवत् २७

नन्वस्तु शब्दनित्यतावादिमते शिष्टोक्तशब्दानामेव व्याकरणेनानु-
गमात् श्रुतिमूलकत्वम् अनित्याश्च शब्दाः व्याकरणेन निष्पाद्यन्ते इति तार्कि-
कादिमते कथमागममूलकत्वमतश्चाह

नित्यत्वे कृतकत्वे वा तेषामादिर्न विद्यते ।

प्राणिनामिव सा चैषा व्यवस्था नित्यतोच्यते ॥२८॥

(नित्यत्व इति तेषां) शब्दानां (नित्यत्वे कृतकत्वे) अनित्यत्वे वा
(आदिर्न) विद्यते अनादित्वम् वर्तत इति यावत् (प्राणिनामिव) संसारि-
णामिव सा एषा (व्यवस्था नित्यता) व्यवहार नित्यता उच्यते यथा संसा-
रिणां उत्पन्नविनाशयो दृष्टत्वेऽपि अनादित्वेन प्रवाहनित्यत्वात् उक्तव्यव-
स्थायाः शिष्टव्यवहारानुमितश्रुतिमूलकत्वम् इतिभावः २८

ननु लोकेत एव साध्वसाधु व्यवस्था ज्ञास्यते किं व्याकरणेनेत्यत आह

नानर्थिकामिमां कश्चित् व्यवस्थां कर्तुमर्हति ।

तस्मान्निवध्यते नित्या साधुत्वविषया स्मृतिः ॥२९॥

(नानर्थिकामिति) अन्वयः सुगमः अयमाशयः अयंसाधुरयमसाधुः
इति नियमः धर्म्माधर्म्म निवन्धकतया अर्थवत्त्वेन कर्तव्यत्वात् इदानीं तनेभ्यः
कैश्चिदपि अनन्तानन्तप्रयोगविषयकनियमं कर्तुमशक्यत्वाच्च नित्यैव
व्याकणस्मृतिः गुरु परस्परया (निवध्यते) इति

ननु अनन्त प्रयोग विषयापीयं व्यवस्था प्रवलतर्केण साध्यत्वेत् किम्
व्याकरणेनेत्यत आह

नचागमादृते धर्म्म स्तर्केण व्यवतिष्ठते ।

ऋषीणामपि यद् ज्ञानं तदप्यागम हेतुकम् ॥३०॥

(नचेति आगमादृते) वेदं बिना (तर्केण) अनुमानेन (धर्म्मः) नच
(व्यवतिष्ठते) ननु व्यवस्थितो भवतीत्यर्थः सूक्ष्मादि यावत् पदार्थानां पुरुषैर्ज्ञात-
मशक्यत्वात् ननु ऋषयः अतीन्द्रियप्रत्यक्षकर्तारः अनुमास्यन्ति इत्यत आह
(ऋषीणामपि यद् ज्ञानं) सूक्ष्मादि प्रत्यक्षं (तदपि आगमहेतुकं) वेदोक्त कर्म्मा-
नुष्ठान जनितमित्यर्थः अयमभावः काशीस्थस्य पुरुषस्य प्रयागगमनेऽपि
स्वभावो न व्यतिक्रमते कर्म्माणान्तु देश काल मन्त्रादि भेदेन सामान्य नगरे

गोदानेन यत्फलं ततोधिकं काश्यादि क्षेत्रे तत्रापि ग्रहणे अधिकतरं तत्रापि मन्त्रादिपूर्वकेनाधिकतममित्यादि फलजननस्वभावस्य भिन्नत्वात् स्वभावस्य नैयत्याभावात् साहचर्यादि द्वारा व्याप्तिग्रहाभावेन धर्मव्यवस्था तत्कर्केण नानुमातुं शक्या अतः आगमवलादेव अदृष्टधर्माधर्मव्यवस्था तथाच साध्वसाधुप्रयोगविषया धर्माधर्मव्यवस्था व्याकरणम् विना न तत्कर्क साध्या इतिफलति यद्यपि ऋषयः योगजधर्मवलात् अतीन्द्रियपदार्थानपि साक्षात्कृतवन्तः तथापि तेषामपि सिद्धावस्थातः पूर्वं आगमोक्तयोगानुष्ठानात् आगमेनैव धर्म निर्णयः नतु शुक्ततत्कर्केणेति सिद्धम् ३०

नन्वस्तु यत्र तर्कानवसरः तत्रागमस्य प्रामाण्यं यत्रतु सम्भवति तत्कर्कः तत्र तेनागमो बाध्यतामित्यत आह

धर्मस्यचा व्यवच्छिन्नाः पन्थानो ये व्यवस्थिताः ।

नतौल्लोकप्रसिद्धत्वात्कश्चि तत्कर्केण बाधते ॥३१॥

(धर्मस्येति धर्मस्य अव्यवच्छिन्नाः) अभ्रष्टाः सदा विद्यमाना इति यावत् (व्यवस्थिताः) नियताः (ये पन्थानः) मार्गाः तरति ब्रह्महत्यां योश्चमेधेन यजेते त्यादयः (तान्) मार्गान् (कश्चित्) शिष्टजनः (लोक-प्रसिद्धत्वात्) लौकिकव्यवहारानुसारात् (तत्कर्केण) स्वयुक्त्या (न बाधते) न विरुद्धीत्यर्थः अयमाशयः लोके हिंसायां विरुद्धत्वेऽपि वायव्यंश्वेतपशु मालभेते तिष्ठतिवलात् याज्ञीय पशुवधस्य धर्मसाधकत्वं मन्यन्ते शिष्टाः अत आगमो न तत्कर्क बाध्य इति ३१

किञ्च नु मानादीनां व्यभिचारो प्यस्ती त्याह

अत्रस्थादेशकालानां भेदाद्भिन्नासु शक्तिषु ।

भावानां अनुमानेन प्रसिद्धि रतिदुर्लभा ॥३२॥

(अत्रस्थेति) यादृशो युवावस्थायां बलः तादृशो वीर्यंके इत्य (वस्थाभेदात्) हिमालये शीततरस्पर्शवज्जलं घलाहकाग्निकुरडादिषु तूष्णम् इति (देशभेदात्) ग्रीष्मे सूर्यस्य यादृशप्रण्डांशवः न तादृशो हेमन्त इति (कालभेदात्) भिन्नासु शक्तिषु (भावानां) वस्तूनां (प्रसिद्धिः) साहचर्यादि स्वभावः अनुमानेन युक्त्या (दुर्लभा) दुःप्राप्ता इत्यागम वलादेव धर्मो निर्णेतव्य इतिफलितम् ३२

किञ्च प्रतिबन्धकवशात् सतोऽपिस्वभावस्य विनाश इत्याह

निर्जातिशक्तेर्द्रव्यस्य तान्ता मर्थक्रियां प्रति ।

विशिष्टद्रव्यसम्बन्धे सा शक्तिः प्रतिबध्यते ॥३३॥

(निर्वातेति) । तांतां (अर्थक्रियां) दहनादिं प्रति (निर्वाता) दृष्टा (शक्ति) दाहकता यस्य तस्य (द्रव्यस्य, अग्नेः) (विशिष्टद्रव्यसम्बन्धे) प्रतिबन्धकमणिसमवधाने साशक्ति दाहकता प्रतिवध्यते विनश्यतीत्यर्थः अतः स्वभावानुगमोदुर्घट इति भावः

किञ्चैकेनानुमितस्यार्थस्य परेण खण्डनात् तदर्थेषु न कस्यचिद् विश्वास इत्याह

यत्नेनानुमितोप्यर्थः कुशलैरनुमातृभिः ।

अभियुक्ततरै रन्यै रन्यथै वोपपद्यते ॥३४॥

(यत्नेनेति) अन्वयः सुगमः उदाहरणम् यथा केनचित् शब्दः द्रव्यम् अव्यवहितसम्बन्धग्राह्यत्वात् घटवत् इत्यनुमानेन शब्दे द्रव्यत्वे साधिते परेण शब्दो न द्रव्यं बहिरिन्द्रिय व्यवस्थाहेतुत्वात् रूपादिवत् इत्यनुमित्या शब्दे द्रव्यत्वाभावः साध्यते अतः केवलतर्कं विश्वासो न कार्यः अतएव भगवन्तो जैमिनि व्यासादमः विरोधे त्वनपेक्षस्या दसति हनुमानम्, तर्का प्रतिष्ठानात् इति सूत्रयां नञ्कुरिति ३४

नन्वेवम् ऋषीणां सूक्ष्मासूक्ष्म व्यवहिता व्यवहित विषयकं यद्ज्ञानं तदपि आनुमानिकं तथाच तत्रापि विश्वासो नस्यादतआह

परेषा मसमाख्येय मभ्यासा देव जायते ।

मणिरूप्यादिविज्ञानं तद्विदां नानुमानिकम् ॥३५॥

(परेषामिति) (परेषाम्) अन्यान् जनान् प्रति (असमाख्येयम्) अवाच्यम् (मणिरूप्यादिविज्ञानम्) अयम् मणि वास्तविकः अयंन इदं रूप्यकं सत्यम् इदमसत्य मित्यादि बोधः (तद्विदां) मण्यादिपरीक्षकाणां (अभ्यासादेव) वारं वारं स्वयमभ्यासादेव (जायते) उत्पद्यते (नानुमानिकम्) नानुमानवृत्तमित्यर्थः अयम्भावः यथा लोका मण्यादिपरिचये अनेकशोभ्यासा न्मणिपरीक्षका भवन्ति यथा वा पङ्जादिस्वर्भेदं शास्त्रतोज्ञात्वा पि स्वयमभ्यासादेव ग्राथका भवन्ति तथैव ऋषयोऽपि योगादौ अभ्यासात् योगजधर्मवलेन अतीन्द्रिय द्रष्टारो भवन्ति नानुमानेन अतो न ऋषिज्ञानेऽविश्वास इति ३५
अन्यामपि युक्तिमाह

प्रत्यक्षमनुमानञ्च व्यतिक्रम्य व्यवस्थिताः ।

रक्षः पितृपिशाचानां कर्मान्ता एवसिद्धयः ॥३६॥

(प्रत्यक्षेति) रक्षांसि च पितरश्च पिशाचाश्च तेषां (कर्मान्ता एव) कर्म परिपाकाः अनुष्ठानजन्यादृष्टनिमित्ता इतियावत् सिद्धयः व्यवहिता

व्यवहित सूक्ष्मा सूक्ष्मादि दर्शनरूपाः (प्रत्यक्षं) लौकिकसामग्रीजज्ञानम् (अनुमानं) लिङ्गज्ञानजज्ञानञ्च (व्यतिक्रम्य) हित्वा व्यवस्थिताः प्रवृत्ताः अयमाशयः सत्यपिकुड्यादिव्यवधाने अन्तर्गृहस्थितवस्तूनि राक्षसादयः पश्यन्ति तत्र कोहेतुः तत्तत्कर्मसम्पादितादृष्टशक्तिरेव तथैव ऋषयोऽपि तपः सम्पादिता दृष्टशक्तिवलादेव पश्यन्ति नतु लौकिकप्रत्यक्षेणानुमानेन वा येना सम्भवत् तत्र लोकानामविश्वासो भवेदतः ऋषिज्ञानं विश्वनीयमेवेति निर्गलितोर्थ इतिदिक् ३६

ननु महर्षिज्ञानं यदि नानु मितिरूपं लौकिक सन्निकर्षा भावात् न प्रत्यक्षरूपं वा तदा किमात्मक मित्या शक्य योगजधर्मरूपालौकिकसन्निकर्षजन्यत्वा दलौकिकप्रत्यक्षरूपतां दर्शयितु माह

आविर्भूतप्रकाशानामनुपद्रुतचेतसाम् ।

अतीतानागतज्ञानं प्रत्यक्षान्न विशिष्यते ॥३७॥

(आविर्भूतेति आविर्भूताः) उद्बुद्धाः प्रकाशाः सत्त्वगुणा येषां तेषाम् (अनुपद्रुतचेतसाम्) नास्ति उपद्रुतं उपद्रवः विषयवासनाजनित मालिन्यदोषो येषु तानि अनुदुतानि चेतांसि येषां तेषाम् महर्षीणामित्याध्याहारः (अतीतं) भूतं (अनागतं) भविष्यत् तदुभयविषयकज्ञानं इदमुपलक्षणम् सूक्ष्मासूक्ष्मव्यवहिताव्यवहितादीनाम् (प्रत्यक्षन्नविशिष्यते) नविलक्षणम् भवति प्रत्यक्षरूपमेव भवति किन्तु योगजधर्मेणा लौकिकसन्निकर्षेण जन्यत्वात्, अलौकिकप्रत्यक्षरूपमिति फलितम् यथाहिलोके स्वमुखमपश्यमानोऽपि शुद्धदर्पणादि द्वारा प्रतिबिम्बरूपेण पश्यति तथैव महर्षीणां तपसा विशुद्धेऽन्तःकरणे यावतां वस्तूनां दर्शनं भवतीति साक्षात् इति विभाव्यताम् सुधीभिः

ननुलोके, इन्द्रिय सम्बद्धस्यैव प्रत्यक्षात् इन्द्रियासम्बद्धस्य प्रत्यक्षम् तेषामनुमिति विरुद्ध मित्यत आह

अतीन्द्रियानसंवेद्यान् पश्यन्त्यार्षेण चक्षुषा ।

ये भावान् वचनं तेषां नानुमानेन वाध्यते ॥

(अतीन्द्रियेति ये) महर्षयः, (अतीन्द्रियान्) इन्द्रियाण्यतिक्रान्तान् असंवेद्यान् अयैदुर्ज्ञेयान् (भावान्) पदार्थान् (आर्षेण) तपः सम्पादितेन चक्षुषा, अतर्नयनेन (पश्यति) प्रत्यक्षीकुर्वन्ति तेषां [वचनं] उपदेशः अनुमानेन निरवधिकतर्कमात्रेण [नवाध्यते] नविरुध्यते, अतोमहर्षीणां प्रत्यक्षं तदनुसारि वचनञ्च न केनचन प्रामाणान्तरेण वाध्यमिति फलितम् ३८

तेषां प्रत्यक्षे न केनापि निप्रतिपत्तिविधेयेत्यत्रलौकिकप्रत्यक्षमेव दृष्टान्तमुपन्यस्याध्यवसाययति

यो यस्य स्वमिवज्ञानं दर्शनं नाभिशङ्कते ।
स्थितं प्रत्यक्षपक्षे तं कथमन्यो निवर्त्तयेत् ॥ ३९ ॥

[यो यस्येति] [यः,] घटप्रत्यक्षीकृतवान् जनः, [यस्य] इतरजनस्य [ज्ञानं] दर्शनं सत्यं (घटविषयकं) [स्वमिव] स्वकीयज्ञानमिव [नाभिशङ्कते] सत्यमेव मन्यते यथामरीयघट दर्शनं सत्यं तथैवान्यस्यापि भवेदिति निश्चिनुते [तं प्रत्यक्षपक्षेस्थितं] स्वयं प्रत्यक्षीकृतवन्तं पुरुषम् [अन्यः], स्वयं साक्षात्कारशून्यः, केवलतार्किकः, [कथं निवर्त्तयेत्,] अप्रामाण्यमापादयेत् (अपितु-नेतिकाकुः) अयस्मावः, शर्करामाधुर्यं मनुभूतवान् जनः, इतरजनेन शर्करा मधुरे-ति कथिते न शङ्कते यस्तु तदनभिन्नः, मधुरानवेति शङ्कते तस्य शङ्कया न माधुर्यस्य बाधः एवमेव अतीतानागतविषयकार्षप्रत्यक्षस्य न तर्कण बाधः, ततः कृत्वा स्वयमेवानुभूयतामिति ३६

एतावता आर्षप्रत्यक्षे प्रामाण्यं व्यवस्थाप्य तद्वचनेनैव धर्माधर्मौ निर्णेतव्यौ न द्वनुमानेनैवाह

इदं पुण्यमिदं पापमित्येतस्मिन्पदद्वये ।
आचण्डालं मनुष्याणां समं शास्त्रप्रयोजनम् ॥ ४० ॥

[इदमिति] [चण्डालम् अभिग्याप्य [मनुष्याणां] अयं धर्मः अयमधर्मः (इति पदद्वये) बोधनद्वये [समं] एकरूपं [शास्त्राणां] ऋषिप्रणीतवचनानाम् [प्रयोजनम्] आवश्यकम् अतः, अनुमित्या धर्माधर्मयोर निर्णयात् तन्निर्णयाय आर्षोपदेशात्मकशास्त्राणां आवश्यकतेति फलितम् ४०
शास्त्राणां सर्वतः प्रावर्त्यं प्रदर्शयति

चैतन्य मिव यश्चाय मविच्छेदेन वर्त्तते ।
आगमस्तमुपासीनो हेतुवादैनवाध्यते ॥ ४१ ॥

[चैतन्यमिति चैतन्यमिव] यथा अहंममेति व्यवहारकारकम् प्रत्यक् सिद्धं ज्ञानं न केनचिदपि तस्य बाधः क्रियते तथा [योयम्] सर्वत्र प्रसिद्धः, [आगमः] विधि निषेध तद्गुण तत्सन्तुत्यादिवोधकवाक्यात्मक श्रुतिस्मृति रूपः [अविच्छेदेन] विध्वंश राहित्येन वर्त्तते विद्यते तमागमम् [उपासीनः] शास्त्रानुसारेण प्रवर्त्तमानः पुरुषः (हेतुवादैः), युक्तिवादैः, वेदे, अविश्वसिभिः परिहृतमन्यैः, न बाध्यते न विचाल्यते इति शास्त्रमेवानुसर्त्तव्यम् इति भावः ४१
सर्वानुमानेनैव व्यवहारो, अनर्थकारितां दृष्टान्तदृष्टान्तिकयोः रूपके गहा

हस्तस्पर्शादिवाधेन विषमेप्यभिधावता ।

अनुमानप्रधानेन विनिपातो न दुर्लभः ॥ ४२ ॥

(हस्तेति अनुमानमेव प्रधानं) यस्य तेन एकत्र चक्षुः शून्येन परत्रागम शून्येनेति फलितम् (विषमे) एकत्र गिरिवनादिदुर्गमार्गे, अन्यत्र दुर्ग्रहधर्मादिमार्गे, (अभिधावता) एकत्र शीघ्रं गच्छता, अपरत्र अनुतिष्ठता अन्धेनेति दृष्टान्तस्थानीयस्य धार्मिकमन्येनेति दाष्टान्त स्थानीयस्य चोभयोराक्षेपः कर्तृवाचकमिदम् (हस्तस्पर्शादिः) उपलक्षण मिदंहेतोः तस्य (वाधेन) हस्तेन स्पृष्टा २ गच्छतोऽन्धस्य शून्यदेशे स्पर्शवाधेन बन्धेति पाठपक्षे हस्तस्पर्शादिः हेतुर्वन्धः अवलम्बो यस्य तेनेति कर्तृविशेषणम् तर्कण धर्म्मं निर्णयतश्च, अदृष्टकर्मणि स्वभावि नियमाभावात् लिङ्गवाधेन हेतौ तृतीया (विनिपातः) एकस्य गिरिगर्त्ते; अपरस्य नरकगर्त्तेच, अधोगतिः नदुर्लभः अवश्यमेवलभ्यते इति नञ् द्वयं प्रकृतार्थं द्रढयति अतोधर्म्मनिर्णये आगमचक्षुष्मानेव समर्थ इति भावः ४३
एवञ्च साध्वसाधु प्रयोगेण धर्म्माधर्म्मां व्याकरणेनैव निर्णयी, इत्यतो व्याकरणनिबन्धन मिति प्रकृते निगमयति

तस्मादकृतकं शास्त्रं स्मृतिं वा सनिबन्धनाम् ।

आश्रित्यारभ्यते शिष्टैः शब्दानां मनुशासनम् ॥ ४३ ॥

तस्मेति (तस्मात् पूर्वोक्तहेतोः, अकृतकम्) अनादि परम्परया, आगतम् (शास्त्रम्) शास्यतेऽनेनेति व्युत्पत्त्या पुरुषहितोपदेशकरणम् आम्नायम् सनिबन्धनां साङ्गोपाङ्गां स्मृतिम् अनादिपरम्परया शिष्टाचरितसाधुशब्दप्रयोग पुञ्जाम्, आश्रित्य प्रमाणीकृत्य शब्दानाम्, अनुशासनम् बोधनोपायम् शिष्टैर्धर्म्महर्षिभिः आरभ्यते, अनुगम्यते नतु नवीनशब्दप्रयोगः, स्वयंकल्प्यते सर्वेषामनादि सिद्धत्वादिति भावः ३४

अव्यवहित श्लोके शब्दानुशासन मिति प्रस्तुते प्रथमं शब्दः क इति निर्णयस्या वश्यकतया शब्दस्वरूपं बोधयितुमाह

द्रावुपादानशब्देषु शब्दौ शब्दविदो विदुः ।

एको निमित्तां शब्दानां मपरोऽर्थे प्रयुज्यते ॥ ४४ ॥

द्रावुपैति उपादीयते विवृत्यते अर्थो येनेति करणसाधनम् (उपादानशब्दः,) अस्मन्मते शब्द एवार्थरूपेण विवर्त्तते इत्यादावे वक्तुम् यथारज्जुरेव सर्प-रूपेण विवर्त्तते, अतः सर्पविवर्त्तोपादानम् रज्जुः तथैव, अर्थोपादानं शब्दः ननु यत्र विषमकार्योपपत्तिः तत्र विवर्त्तः यथा शूक्तिकाया रजतम् तथाच गामुच्चार-येऽथवा वाच्यवाचकयो रूमयोः स्वरूपतया एकरूपत्वात्कथं विवर्त्तोपादान

मित्तिचेत् उपादीयते श्रोत्रादिना ज्ञायते यदिति कर्मसाधन मेव शब्दार्थक स्थले गृहाण वस्तुतस्तु उपादीयते ज्ञायते अर्थो येनेति व्युत्पत्त्या वाचकत्वेनैक रूपेणो भयोः संग्रहात्तदर्थं न करणरूपविवर्त्तोपादानबोधकम् उपादानपदम् तथाच (उपादानशब्देषु) वाचकशब्देषु (शब्दविदः) वैयाकरणाः (द्वौशब्दौ) वाचकौ (विदुः) जानन्ति (एकः) श्रोत्रग्राह्यवैखरी वाग्रूपः (शब्दानां) स्फोटरूपाणां (निमित्तं) प्रकाशकारणम् तेनहि स्फोटः प्रकाश्यते नतृत्पाद्यते तस्य ब्रह्मरूपतया नित्यत्वात् (अपरः) स्फोटरूपः (अर्थेप्रयुज्यते) अर्थबोधन क्षमो भवतीति सारः अयमाशयः वैखरीवागात्मकशब्दः न साक्षादर्थं बोधयति अपितु स्फोटप्रकाशन द्वारा अर्थं बोधयति मध्यमावाग्रूपस्फोटश्च साक्षादर्थं बोधयतीति वैयाकरणसमय इतिदिक् ४४

तत्र प्रकार माह

आत्मभेद स्तयोः केचि दस्तीत्याहुः पुराणागाः ।

बुद्धिभेदा दभिन्नस्य भेदमेके प्रचक्षते ॥४५॥

कार्यकारणयो भेद इति पक्षे वैखरीवाक् स्फोटयोर्भेद इति केचित् अपरे तु एकः श्रोत्रेन्द्रिय ग्राह्यः, अपरः मनोग्राह्य इति बुद्धिभेदाद् भेदो वास्तविकस्तु अभेद इत्याहुः

वैखरी स्फोटयो रभिन्नत्वेऽपि प्रकाश्य प्रकाशकभावमूलक कार्य कारणभावं दृष्टान्तबलेनोपपादयति

अरणिस्थं यथाज्योतिः प्रकाशान्तरकारणम् ।

तद्वच्छब्दोऽपि बुद्धिस्थः श्रुतीनां कारणं पृथक् ॥४६॥

(अरणिस्थमिति अरणिस्थं) शमीकाण्डमध्यवर्त्ति (ज्योतिः) वह्निः (यथा प्रकाशान्तरस्य) मन्थनादिना उद्बुद्धस्य वहिरूपलभ्यमानस्य ज्योतिषः (कारणम्) उपादानम् (वस्तुतः) अन्तस्थित मेव ज्योतिः मन्थनेनोद्बुद्धं सत् वहिरूपलभ्यते (नत्वन्यत्) इतिभावः (तद्वत्) तथैव (बुद्धिस्थः) हृदयस्थः (शब्दः) स्फोटः अपि अर्थबोधनेच्छया प्रयत्नादिनोद्बुद्धः सन् इत्याध्याहारः (पृथक् श्रुतीनां) विभिन्नरूपेण श्रवणेषु (कारणम्) बोजम् अन्यैः श्रोत्रेन्द्रियेण वहिरूपलभ्यमानं व्यञ्जकध्वनिगतकत्वगन्वादिरूपेणा भासमानं पृथक् अभिलक्ष्यते अयमत्रसारः वक्तुः प्रयत्नेन विबुद्धः स्फोटः ध्वनिगत धर्मरूपितः सन् परश्रवणग्राह्यो भवति परेण श्रुतः सः हृत्स्थं स्फोट मभिव्यज्जयति ततोर्थ बोध इति वस्तुतः एकस्यैव प्रयत्नाद्युपाधिवशात् उभयोः प्रकाश्यप्रकाशकभावः, अतएव कार्यकारणभाव इति ४६

नन्वेवं घटशब्देन पटोऽप्यर्थः कथं न प्रतीयतइति शङ्कां परिहरन्नाह

वितर्कितः पुरा बुद्ध्या कचिदर्थे निवेशितः ।

कारणोभ्यो विवृत्तेन ध्वनिना सोनु गृह्यते ॥४७॥

(वितर्कित इति पुरा) पुर्वं (बुद्ध्या) मनसा [वितर्कितः] घट शब्दस्य कम्बुग्रीवादिमते व तादात्म्यसम्बन्धः न तु पटेन एवं पटस्य तदर्थेनैव इत्यादि रीत्या तत्तदर्थेन सह तादात्म्यसम्बन्धितया ऊहितः शब्दः पश्चादित्याध्याहारः [कचिदर्थे निवेशितः अर्थबोधनेच्छयाप्रयुक्त इति भावः [कारणोभ्यः] वायव-
भिहतताल्वादिभ्यः, [विवृत्तेन] जातेन [ध्वनिना कत्वह्रस्वत्वो दात्तत्वादि-
धर्माश्रयेण स अर्थबोधने, इत्याध्याहारः [अनुगृह्यते] उपक्रियते ध्वनिगत
घटत्वादिधर्मवा निवामिलक्ष्यते अतो नार्थबोधसङ्कर इति भावः इदमत्र
निस्सरितम् यादृशधर्मवान् ध्वनिः, तादृशधर्मवानिव शब्दोऽभिव्यज्यते तेन
सह यस्यार्थस्य पूर्वं शङ्केतो गृहीतः तस्यैव बोधो नान्यस्येतिदिक् ३६
नन्वेवं स्फोटो नाना स्यादत आह

नादस्य क्रमजातत्वा न्न पूर्वा नापरश्च सः ।

अक्रमः क्रमरूपेण भेदवा निव गृह्यते ॥४८॥

[नादस्येति नादस्य] ध्वनेः [क्रमजातत्वात्] क्रमेणोत्पद्यमानत्वात्
ध्वनिरेव पौर्वापर्य्यव्यवहारविषय इति यावत् [सच स्फोटः न पूर्वः न परः]
पौर्वापर्य्यव्यवहारशून्यः अतः [अक्रमः] क्रमशून्यः [क्रमरूपेण] व्यञ्जकध्व-
निगततत्तद्धर्मण [भेदवानिव] नाना इव गृह्यते उपलभ्यते वस्तुत एक एव
स इति फलितम् स्फोटस्य वस्तुत एकत्वेऽपि ह्रस्वत्वादि धर्मशून्यत्वेऽपि च
व्यञ्जकध्वनिगततत्तद्धर्मभेदेन नार्थबोध सङ्कर इति ३८

एतदेव दृष्टान्तेन द्रढयति

प्रतिविम्बं यथा न्यत्र स्थितं तोयक्रियावशात् ।

तत्प्रवृत्तिमिवा न्वेति सधर्मः स्फोटनादयोः ॥४९॥

[प्रतिविम्बमिति यथा अन्यत्र] जलादौ [स्थितं] निविष्टं [प्रतिविम्बं]
प्रतिच्छायम् स्वतोऽक्रियमपि तोयक्रियावशात् जलकम्पाद्युपाधिनिमित्तात्
तत्प्रवृत्तिमिव कम्पादिक्रियामिव अन्वेति प्राप्नोति तथैवेत्याध्याहारः स्फोट-
नादयोः सः धर्मः स्वभाव इति ३९

नन्वेवं गवादि शब्दानां सास्नादिमद्ब्यक्ति बोधने एव सामर्थ्यञ्चेत्
तदा गामुक्त्वारय राज्ञो यत् इत्यादौ लोके शास्त्रे च अर्थे कार्यस्य बाधात् उक्त
वाक्यानां अप्रामाण्यं स्यात् अतः शब्दोऽपि शब्दजन्य बोधे भासते इति स्वमतं
दृष्टान्तेन साधयति

आत्मरूपं यथा ज्ञाने ज्ञेयरूपञ्च दृश्यते ।

अर्थरूपं तथा शब्दे स्वरूपञ्च प्रकाशते ॥५०॥

(आत्मेति यथाज्ञाने] न्यायनयेनानु[व्यासायात्मके भट्टमतेन प्रत्यक्षा-
त्मक ज्ञान सामान्ये [ज्ञेयरूपं आत्मरूपञ्चेति] भूत भविष्यद् वर्तमान घटादि
स्वरूपं ज्ञानमपि (दृश्यते) विषयो भवति अतएव ज्ञानस्य प्रत्यक्षतया ज्ञानवान्
नवेति सन्देहो न जायते [तथा] एव मेव [शब्दे अर्थरूपम्] सात्नादिमदादि
व्यक्तिः [स्वरूपञ्च] ग + औ इत्याद्यानुपूर्वीं (प्रकाशते) उभयं शब्दजन्यबोध
विषयो भवतीति फलितम् । इदमत्र बोध्यम् शब्दानां शब्दे अर्थेच खण्डशः शक्तिः
अतः उभयोर्विशेष्यविशेषणभावस्य स्वेच्छानुसारित्वात् कचिदर्थो विशेष्यः
शब्दो विशेषणम् कचित् शब्दो विशेष्यः, अर्थो विशेषणम् तथाच यत्रार्थे कार्य-
स्य सम्भवस्तत्र स एव विशेष्यः यथा गामानय यत्र च बाधस्तत्र शब्द एव
विशेष्यः यथास्मद् व्याकरण सूत्रादौ इति ५०

स्फोट नादयोर्भेदं प्रकारान्तरेण॥ह

अण्डभाव मिवापन्नो यः क्रतुः शब्दसंज्ञकः ।

वृत्तिस्तस्य क्रियारूपा भागशो भजते क्रमम् ॥५१॥

[अण्डभावमिति यः शब्दः संज्ञा यस्य] सः शब्दशब्द इत्यर्थः [क्रतुः]
ब्रह्म [अण्डभावम्] इवा पन्नः हृद्देशे अवयवविभागम् अति क्रमस्थितः तस्यः
क्रिया रूपा अवयवोद्ग्राहकारक व्यापाररूपा [वृत्तिः विवर्तः] [भागशः] अव-
यवशः क्रमं पौर्वापर्यं [भजते] आश्रयते अयमाशयः यथा पक्षिणां अण्डः
पूर्वं अवयवादिविहीनः एक रूपेण स्थितो दृश्यते सपेव पश्चात् उद्भिन्नः अवयव-
वादिमान् लोके दृश्यते तथैव शब्दब्रह्म हृदयस्थः, अवयवादिशून्य स्फोट इति
सच यदा वात्वाद्याभिहतः तात्वादिना विवर्तते तदा अवयववान् पौर्वापर्यं
क्रमवांश्च नाद इति कथ्यते परञ्च दृष्टान्तस्थले अण्डः अनित्यः दाष्टान्तिकेतु
नित्य इति बोध्यम् ५१

शब्दोऽपि शब्देन गृह्यते इत्यत्र दृष्टान्त पूर्वकं युक्त्यन्तर माह

यथैकबुद्धिविषया मूर्ति राक्रियते पटे ।

मूर्त्यन्तरस्य त्रितय मेवं शब्देऽपि दृश्यते ॥५२॥

[यथेति] यथा [मूर्त्यन्तरस्य] पुरुषान्तरस्य [मूर्तिः] चित्र [पटे]
वस्त्र कुड्यादिषु [एक बुद्धि विषया] एकज्ञानग्राह्यः [आकृति] आकारः
प्राप्यते अयम्भावः पुरुषः १ पटः २ मूर्तिः ३ इति पृथक् पृथक् क्रमेण गृहीतमपि

चित्रस्थले तृतयं एकवारेणैव ज्ञायते तथैव तृतयं शब्देऽपि दृश्यते अयमाशयः
वैखरी रूप शब्दः घ अ ट अ इत्यादि क्रमेण ज्ञातोऽपि प्रति संहृत क्रमध्वनिः, एक
बुद्धिविषयो भवति ततश्च अन्तः करणे क्रम शून्यः अवयवशून्यश्चस्फोटोज्ञायते
इत्यवस्थाभेदात् सएव ग्राह्यः सएव ग्राहकोपीति विचार्य्यताम् ॥५२॥

यथा प्रयोक्तुः प्राग्वुद्धिः शब्देष्वेव प्रवर्त्तते ।

व्यवसायो ग्रहीतणा मेवं तेष्वेव जायते ॥ ५३ ॥

(यथेति) (यथा) (प्रयोक्तुः) प्रयोग कर्त्तुः (प्राक्) प्रथमं (शब्देष्वेव) शब्दविषयि
कैव (बुद्धिः) ज्ञानं (प्रवर्त्तते) जायते यस्य शब्दस्य येनार्थेन तादात्म्यसम्बन्ध
स्तस्यैवोच्चारणे तस्यार्थस्य बोधो भवतीत्यतः अर्थबोधनेच्छया प्रथमं शब्दं जानन्ति
अनन्तरं मुच्चारयतीति भावः (ग्रहीतृणां) श्रोतृणां (व्यवसायः) ज्ञानं (तेष्वेव)
शब्देषु एव (जायते) अयमाशयः शब्दाधीन एवार्थबोधः, अतः उच्चारयितुः
बोद्धुश्चोभयोः शब्द भावनाप्रावल्यात् शब्दविशिष्टमेवार्थं जानाति किन्तु कश्चित्
शब्दः विशेषणं कश्चित् विशेष्य इत्यत्र पूर्वोक्तयुक्तिरनुसरणीया इति ५३
नन्वेवं शब्दस्यापि प्रातिपदिकार्थत्वे गामानयेत्यादौ अर्थस्य यथाक्रिया
न्वयस्तथा शब्दस्यापि स्यादत आह

अर्थोपसर्जनीभूता नभिधेयेषु केषुचित् ।

चरितार्थान् परार्थत्वान्न लोकः प्रतिपद्यते । ५४ ॥

(अर्थोपसर्जनीति) । (अभिधेयेषु) वाच्येषु (केषुचित्) मध्ये
(अर्थोपसर्जनीभूतान्) विशेषणीभूतान् अतएव (चरितार्थान्) इतर
व्यावर्त्तकतया सफलान् (परार्थत्वात्) विशेष्योपकारकत्वात् (तान्)
विशेषणीभूतान् (लोकः न प्रतिपद्यते) ज्ञायते क्रियान्वयितया इति
शेषः । अयम्भावः शुक्लवाससं भोजय इत्यादौ विशेषणीभूत
वासः वस्त्ररहितस्यान्यस्य पुरुषस्य ग्रहणं मास्तु इति बोधनद्वारा चरितार्थं
चेत् तस्य क्रियान्वये मानाभावः फलाभावश्च विशेष्यस्तु क्रियान्वयमन्तरा
अचिन्तार्थः सन् क्रियान्वयी एवं यो गो शब्दः सोयं पिण्ड इति प्रतीत्या शब्द
विशिष्टार्थप्रतीतावपि शब्दस्य अयम्पिण्डः अस्य पदस्य वाच्यः नान्यस्येति
बोधनेन चरितार्थत्वात् न क्रियान्वयित्वम् एतद् युक्ति मूलकं एव इतरनिष्ठ
विशेषप्रतानिरूपितप्रकरतासम्बन्धेनान्वयप्रति मुख्यविशेष्यतासम्बन्धेनोप
स्थितिः कारणम् इति कार्यकारणभावः अतएव घटत्वान्वयतात्पर्येण न
नित्यो घट इति प्रयोग इति नैयायि का दीना मुद् घोषणम् इति

ग्राह्यत्वं ग्राहकत्वञ्च द्वे शक्ती तेजसो यथा ।

तथैव सर्वशब्दानां मेते पृथगिव स्थिते ॥५५॥

(ग्राह्यत्वमिति, ग्राह्यत्वं) घटादौ ननु ग्राहकत्वं (ग्राहकत्वंच) चक्षुरादीन्द्रियादौ ननु ग्राह्यत्वं तेजसस्तु आलोकादेः ते द्वे (उभये) शक्ती यथा घटादि ग्राहकतया ग्राहकत्वं स्वरूपग्राहकतया ग्राह्यत्वमपि (तथैव सर्व शब्दानां एते) ग्राह्यत्व ग्राहकत्वे उभे शक्ती (पृथगिव) भिन्ने इव (वस्तुतः उभयो नित्यत्वात् स्वरूपत्वात् अभिन्नैवेति

५५

शब्दानामुभयशक्तिसत्त्वात् आह

विषयत्वमनापन्नैः शब्दैर् नार्थः प्रतीयते ।

न सत्तयैव तेषां मगृहीताः प्रकाशकाः ॥५६॥

(विषयत्वमिति) विषयत्वं बोधविषयतां (अनापन्नैः) अनाश्रितैः (शब्दैः नार्थः) प्रतीयते बोध्यते यतस्ते शब्दाः (अगृहीताः) अज्ञाताः (सत्तयैव) सत्तामात्रेण (अर्थानां) न (प्रकाशकाः) उपस्थापकाः भवन्ति अयम्भावः अनुचारेण दशायां अर्थ बोधो न भवति अतः ज्ञाता एव शब्दा अर्थ बोधकाः तथाच शब्देन यथा गोत्वस्य व्यक्तेश्चोपस्थितिः एवमेव शब्दस्यापि अतः गोत्वादिवत् शब्दस्यापि विशेषणत्वसम्भवे तत्परित्यागे माना भाव इति

५६

ननु अनुभवकरणं यथा इन्द्रियम् तथैव शब्दोऽपि ततश्च शब्दो यथा बोधविषयः एवम् इन्द्रियमपि कथं नेत्युभयो वैषम्ये वीज माह

अतोऽनिर्ज्ञातिरूपत्वात्किमाहेत्यभिधीयते ।

नेन्द्रियाणां प्रकाशयेथे स्वरूपं गृह्यते तथा ॥५७॥

(अत इति) यतः शब्दानां इत्याध्याहारः (अनिर्ज्ञातिरूपत्वात्) यदा वक्त्रा उच्चरितः शब्दः श्रोत्रा न ज्ञायते तदा (किमाह] किं प्रुते [इत्यभिधीयते] प्रत्युच्यते अतः ज्ञाताः एव शब्दा अर्थबोधका इति शब्दोपि बोधविषयः [इन्द्रियाणाम् स्वरूपं] प्रकाशयेथे बोध्ये विषये [यथा] [न गृह्यते] ज्ञायते अज्ञातान्येवेन्द्रियाणि कारणानि इति भेदान्नेन्द्रियम् बोधविषय इति वैषम्यम्

५७

ननु अग्नेर्दमित्यादौ बोध्यबोधकयोः समानानुपूर्वीकत्वेनैकत्वात् स्वरूपमिति शास्त्रबोधितसंज्ञासंज्ञि भावोऽनुपपन्न इत्यत आह

भेदेनावगृहीतौ द्वौ शब्दधर्माविपोद्धृतौ ।

भेदकार्येषु हेतुत्वमविरोधेन गच्छतः ॥५८॥

[भेदेनेति] [शब्द धर्मौ] शब्दार्थौ [[अपोद्धतौ] वस्तुतोऽभिन्नावपि बुद्धिकल्पितपृथग्भावौ अतएव [भेदेनावगृहीतौ] भिन्नतया ज्ञातौ [द्वौ] [भेदकार्येषु] भेदप्रयुक्तविधेयेषु [हेतुत्वं] कारणत्वं [अविरोधेन] समावेशेन [गच्छतः] प्राप्नुतः अयमाशयः यथा लोके यस्य देवदत्तस्यैकपुत्रः तेन बुद्ध्या पृथग् प्रकल्प्य ज्येष्ठत्व कनिष्ठत्वादिमारोप्य ज्येष्ठत्वप्रयुक्तकार्यस्य कनिष्ठत्वप्रयुक्तकार्यस्य च समावेशः क्रियते शास्त्रेऽपि आभ्या मित्यादौ एकस्मिन् अकारे अदन्तत्वादिमारोप्य तत्प्रयुक्तदीर्घादिकार्यस्य समावेशः तथैव तत्रापि एकस्मिन् एव सूत्रघटकत्व प्रयोगघटकत्वोपाधिभेदात् पृथक्त्व कल्पनया संज्ञासंज्ञि भाव इति

५८

किञ्च

वृद्ध्यादयो यथा शब्दाः स्वरूपोपनिबन्धनाः ।

आदैच् प्रत्यायितैः शब्दैः सम्बन्धं यान्ति संज्ञिभिः ॥५९॥

[वृद्ध्यादय इति] [यथा वृद्ध्यादयः शब्दाः] वृद्धिरादैच् इत्यादि सूत्र घटकाः वृद्धिः इत्यादि शब्दाः [स्वरूपोपनिबन्धनाः] स्वरूपाणां उपनिबन्धना बोधकाः स्वरूपेणैवार्थवन्त इति यावत् [आदैच् प्रत्यायितैः] स्वरूपेणार्थवदादैच् शब्देन बोध्यैः [शब्दैः] आदैच् इत्यानु पूर्वोभिः [संज्ञिभिः] [सम्बन्धं] तादात्म्यरूपं [यान्ति] प्राप्नुवन्ति इदं फलितम् वृद्धिरादैच् इति संकेत ग्राहक वाक्ये सङ्केतग्रहात्पूर्वं वृद्धिपदबोध्यं वृद्धिपदं आदैच् पदबोध्य मादैच् पदमिति शक्त्यैवार्थवत्त्वा त्प्रातिपदिकत्वेन वृद्धिरीत्यत्र विभक्तिः, अनन्तरम् उभयोः संज्ञा संज्ञि भावः एवं भेदाभावस्थलेऽपि बोध्यम्

प्रकृते उपसंहरति

५९

अग्नि शब्द स्तथै वायमग्निशब्दनिबन्धनः ।

अग्नि अत्यैति संबन्ध मग्निशब्दाभिधेयया ॥६०॥

[अग्नि शब्देति] तथैवाग्नि शब्दस्य निबन्धनः, बोधकोऽयम् अग्निशब्दः सूत्र घटकः [अग्निशब्दोऽभिधेयोऽर्थो यस्य स्तया निश्चुत्या] प्रयोगघटकेन [संबन्धमेति] प्राप्नोति सूत्रघटकोऽग्निशब्दः केवलशब्दबोधकः संज्ञा अर्थबोधकप्रयोगस्थाग्निशब्दः संज्ञीति काल्पनिकभेदव्यवहारेणोपपाद्य इति भावः

६०

ननु उच्चारित एव शब्दः कथन्नकार्यान्वयीत्यत आह

योय उच्चार्यते शब्दो नियतं न स कार्यभाक् ।

अन्यप्रत्यायने शक्तिर्न तस्य प्रतिबध्यते ॥६१॥

योय इति योयः शब्द उच्चार्यते [स] [नियतं] निश्चितम् सर्वत्र कार्यभाक् कार्यान्वयी न किन्तु यत्रार्थे कार्यस्य बाधः तत्रैव शब्देऽपि कार्या-

न्ययित्वं यथा गामुच्चारय अतएव नियत इति पदम् इतिभावः इदमग्रे ६३
श्लोके स्फुटी भविष्यति ननुतर्हि अर्थ बोधकताशक्तिरपिनस्यादत् आह [तस्य]
शब्दस्य [अन्य प्रत्यायने] इतर बोधने शक्तिः, न प्रतिबध्यते प्रतिबन्धका भावान्न
विनश्यतीतिसारः ६१

कार्यान्वयाभावे कारणमाह

उच्चरन् परतन्त्रत्वात् गुणः कार्यैर्नयुज्यते ।

तस्मात्तदर्थैः कार्याणां संबन्धः परिकल्प्यते ॥ ६२ ॥

उच्चरन्निति [गुणः] विशेषणीभूतः [कार्यैः] आनयनादिभिर्न युज्यते
नान्वितोभवतीत्यर्थः तत्र हेतुमाह उच्चरन् परतन्त्रत्वात् पारार्थ्यादिति यावत्
तस्माद्धेतोः [तदर्थैः] शब्दार्थैः [कार्याणाम्] आनयनादीनां [संबन्धः परि-
कल्प्यते] अन्वयोभवतीत्यर्थः ६२

नन्वेवम् अग्नेर्दगित्यादौ अर्थभूतस्यापि अग्निशब्दस्य दगादि कार्ययोगो न
स्या दुच्चारणपरतन्त्रत्वात् अनुच्चरितस्य अर्थबोधकत्वासम्भव श्चेत्यत आह

सामान्यमाश्रितं यद्यदुपमानोपमेययोः ।

तस्यतस्योपमानेषु धर्मोऽन्योव्यतिरिच्यते ॥ ६३ ॥

(सामान्यमिति (उपमानोप मेययो र्यद्यत् सामान्यं) सादृश्यमुच्चारणपरतन्त्र
त्वादिक माश्रितं (तस्यतस्य) सर्वस्येत्यर्थः --- उपमानेषु -- (अन्योधर्मः) प्रकारतासमा
नाधिकरणत्व विशेष्यतासमानाधिकरणत्वेति विशेषधर्मः (व्यतिरिच्यते) भिद्यते स
र्वाशस्य साम्येदृष्टान्तताहानिः अयमा शयः) अस्तुसर्वत्राऽग्निशब्दः-- उच्चारण
परतन्त्रः किन्तु यः शाब्दबोधे विशेष्यः स कार्यभाक् यथा अग्नेर्दगि त्यादौ यत्र
विशेषणम् तत्र न यथाग्निमानय - उभयत्रोच्चारणपरतन्त्रत्वसामान्यधर्मस्य
सत्वेऽपि विशेष्यत्वविशेषणत्वेति विशेषधर्मयोर्भेदादिति हृदयम् ॥ ६३ ॥

(अन्यस्मात् व्यावर्तकधर्मेऽपि विशेषाधायकधर्मान्तर मस्ती त्युपपादयति

गुणाः प्रकर्षहेतुर्यः स्वातन्त्र्येणोपदिश्यते ॥

तस्याश्रिताद्गुणा देव प्रकृष्टत्वं प्रतीयते ॥ ६४ ॥

(गुणइति) (प्रकर्षहेतुः) शुक्लो घट इत्यादौ द्रव्यस्य द्रव्यान्तरेण विशेषकरणे कारणम्,
[यो गुणः] शुक्लादि (स्वातन्त्र्येण) घटे शुक्लमित्यादौ (उपदिश्यते) प्रयुज्यते (तस्य) घटगत
शुक्लादिगुणस्य (प्रकृष्टत्वं) पटादिगतशुक्लादिगुणतो विलक्षणत्वम् (आश्रिताद्) घट
शुक्ल स्थिताद् गुणात् शुक्लतरत्वादितः (प्रतीयते) ज्ञायते, अयम्भावः शुक्लो घट इत्य-
त्र नीलघटतो विशेषकारकः, शुक्ल गुणस्तस्यापि घटगतशुक्लादितो विशेषकारक
तद्गत शुक्लतरत्वादिधर्मः, एवं प्रकारेण विशेषकारकधर्मेऽपि भेदकधर्मा-
न्तरम् इति ॥ ६४ ॥

तस्य प्रकृतेऽपि संघटयति ।

तस्याभिधेय भावेन यः शब्दः समवस्थितः ।

तस्याप्युच्चारणे रूप मन्यत्तस्माद्विविच्यते ॥६५॥

[तस्येति] सूत्रस्थाग्निशब्दस्य [अभिधेयभावेन] वाच्यत्वेन [समव-
स्थितः] बुद्धो [यः शब्दः] प्रयोगादिस्थः [तस्योच्चारणेऽपि] उच्चारणाधी-
नत्वेऽपि [तस्मात्] सूत्र घटकाग्निशब्दात् [अन्यत् रूपं] धर्मान्तरम्
[विविच्यते] भिद्यते, इत्यर्थः, अयं सारः, वाच्यवाचकयो रुभयो उच्चारणाधी-
नत्वस्याविशेषेऽपि वाचके सूत्रघटके स्वरूपार्थमात्रसम्बन्धित्वं प्रयोगादिस्थ
वाच्ये व्यक्त्यर्थसम्बन्धित्वमिति धर्म भेदोस्त्येवेति बोध्यम् ६५

यथाऽग्नेर्देगित्यादौ स्वरूपार्थबोधकाः शब्दाः तथा शक्तिग्राहक
वाक्येऽपि स्वरूपार्थबोधका इत्युपपादयति

प्राक्संज्ञिनाभि सवन्धात् संज्ञा रूपपदार्थिका ।

षष्ठ्याश्च प्रथमायाश्च निमित्तत्वाय कल्पते ॥६६॥

प्रागिति, संज्ञिना आदैच्, इत्यनेनाभिसम्बन्धात्, प्राक्, वृद्धिरादैच् आदैच्
वृद्धिसंज्ञको भवतीति वाक्यार्थ बोधात् पूर्वं संकेतग्राहभावेन शक्तिज्ञाना-
भावात् आदैच् संज्ञी वृद्धिः संज्ञा, इति ज्ञानाभावः, अतस्तद्वाक्ये, इत्यर्थः
(संज्ञा) वृद्धिरिति (रूपपदार्थिका) स्वरूपेणैवार्थवत्, षष्ठ्या विभक्तेः प्रथमा-
याश्च निमित्तत्वाय कल्पते विभक्त्युत्पत्तिकारणं भवति, अन्यथा अर्थवत्त्वा-
भावेन प्रातिपदिकत्वाभावात् विभक्त्युत्पत्तिर्न स्यात् इति भावः ६६

ते उभे विभक्ती उपपादयति

तत्रार्थवत्त्वात्प्रथमा संज्ञाशब्दाद्विधीयते ।

अस्येति व्यतिरेकश्च तदर्थं देव जायते ॥६७॥

तत्रेति अस्यान्वयः सुलभा, अयम्भावः वृद्धिरादैच् इति संकेतग्राहक
वाक्ये उभयोः स्वरूपेणार्थवत्त्वेऽपि यदि आदैच् पदाभिन्नं वृद्धिपदम् इति संज्ञा
संज्ञिनो स्तादात्म्याध्यवसायेन शक्तिनियमश्चिकीर्ष्येत तदा, उभयत्र प्रथमा
यथा गौर्वाहिक इत्यत्र यदा तु, अस्यायम् वाचको भिन्नश्चैवं रूपेण शक्तिनियम-
स्तदा एकत्र षष्ठी, अपरत्र प्रथमा यथा उज इत्यादौ स्वरूपेणार्थवदुज् शब्दस्य
प्रगृह्यमिति संज्ञेति तदर्थं इति ६७

स्वरूपं शब्दस्ये त्यनेन संज्ञासंज्ञिभावो बोध्यते तत्र केषा चिन्मते
व्यक्तिः संज्ञा केषाञ्चिन्मते जातिः संज्ञा एवं संज्ञित्वं व्यक्तौ जातौ वा मन्यन्ते
इति मतभेदं दर्शयति श्लोकद्वयेन

स्वरूपमिति कैश्चित् व्यक्तिः संज्ञोपदिश्यते ।

व्यक्तौ कार्याणि संसृष्टा जातिस्तु प्रतिपद्यते ॥६८॥

स्वरूपमिति, (स्वरूपमिति) विषये राज्ञोयदित्यादौ (कैश्चिदाचार्यैः) व्यक्तौ राज्ञेतिव्यक्तिः संज्ञा उपदिश्यते बोध्यते अस्यायमाशयो यत्र भेदवन्तोऽर्थास्तत्र सोयमिति बुद्ध्युपपादनाय जातिः अत्र तु स्वरूपभेदाभावात्ता वश्यकता तस्याः अपरे पुनः व्यक्तौ संसृष्टा, आश्रिता जातिः कार्याणि संज्ञादीनि प्रतिपद्यते प्राप्नोतीति ६८

संज्ञिविषय आह

संज्ञिनीं व्यक्ति मिच्छन्ति सूत्रग्राह्या मथापरे ।

जातिप्रत्यायिता व्यक्तिः प्रदेशेषूपतिष्ठते ॥६९॥

संज्ञिनीमिति, (सूत्रेण (ग्राह्याम्) बोध्यां (व्यक्तिम्) संज्ञिनीं) वाच्यामिच्छन्ति, अथापरे) जातिमिच्छन्तीत्याध्याहृत्य व्याख्येयः ननु जातिश्चेत्संज्ञिनी तदा राज्ञोयदित्यादौ जाते र्यत् प्रत्ययः कथं स्यादत आह (जातिप्रत्यायितेति) प्रदेशेषु प्रयोगेषु जात्या प्रत्यायिता अविना भावेन बोधिता व्यक्तिम् बिना आश्रयताया असम्भवात् जात्याश्रिता व्यक्तिः (उपतिष्ठते) उपस्थिता भवत्यतस्तत्रैव कार्यं स्यात् इति ६९

जाति वादिनस्त्वयमाशयो व्यक्तेरानन्त्या उजातावेव शक्तिः येषां मते एक एव शब्दस्तेषाम्मते जाति व्यक्ति व्यवहारो नास्ति किन्तु अनेकत्ववादि मते, एव तद् व्यवहार इति दर्शयति

कार्यत्वे नित्यतायां वा केचिदेकत्ववादिनः ।

कार्यत्वे नित्यतायां वा केचि नानात्ववादिनः ॥७०॥

कार्यत्वइति (कार्यत्वे) शब्दस्यानित्यत्वे स एवायं गकार इति प्रत्यभिज्ञा वलात् (नित्यतायां) नित्यश्चेच्छब्दस्तदा मुख्यमेव शब्दस्यैकत्वमिति वादिनः केचित् अपरे तु अनित्या वा नित्या नाना एव शब्दा इति जल्पन्ति एतन्मते स एवायमिति रक्षणार्थं जातिस्वीकार इति हृद्यम् ७०

इदानीं पदादि व्यवस्था वक्तुमुपक्रमते

पदे भेदेऽपिवर्णानामेकत्व न निवर्त्तते ।

वाक्येषु पदमेकञ्च भिन्नेष्वप्युपलभ्यते ॥७१॥

पदेभेद इति (वर्णानामेदेऽपि) नानात्वेऽपि, पदे, एकत्वं न निवर्त्तते, एक पदमिति व्यवहारो भवत्येव समुदायनिबन्धनत्वादेकत्वस्य वनं सेना इत्यादि

वत् किञ्च भिन्नेषु वाक्येषु अपि घट मानय घटोऽस्ति इत्यादिवाक्यानां परस्परं भेदेऽपि सर्वत्र घट इति एकं पदमित्युपलभ्यते, इति व्यवहियते इति यावत् ७१

नन्वेवंवर्णातिरिक्तं पद मित्यत आह

तद्वर्णव्यतिरेकेण पदमन्यन्न विद्यते ।

वाक्यं वर्णपदाभ्यां च व्यतिरिक्तं न किञ्चन ॥७२॥

(तद्वर्णेति) (वर्णव्यतिरेकेण) वर्णभिन्नं (पदं) न विद्यते नास्ति प्रत्येकं समुदायातिरिक्तमपि समुदायस्य प्रत्येकानतिरेकत्वमितिन्यायादिनये प्रसिद्धतया वर्णसमुदायात्मकपदस्य वर्णभिन्नत्वा स्वीकारात् एवञ्च वाक्यं वर्णपदसमूहात्मकं वर्णपदभिन्नं नेतिसारः

इदं परमतं प्रथमं प्रतिपाद्य स्वमतं सिद्धान्तयति

पदे न वर्णा विद्यन्ते वर्णेष्ववयवा न च ।

वाक्यात् पदानामत्यन्तं प्रविवेको न कश्चन ॥७३॥

[पदे वर्णाः] वर्णात्मकावयवाः न विद्यन्ते इति प्रतिज्ञा अत्रोभयमतसिद्धस्य लो-
दृष्टान्तं उपन्यस्यति वर्णेष्ववयवानचेति] यथा वर्णे अवयवा न सन्ति शब्दत्वरूप-
हेतोः स्पष्टतया पृथक् नोक्तः, एवं वाक्येष्वपि पदावयवो नास्तीति कारि-
कायाः सामान्योऽर्थः अयमाशयः पदाद्यात्मकशब्दः अवयवशून्यः शब्दत्वात्
वर्णवत् इत्यनुमित्या वर्णसमुदायात्मकं पदमिति परमतम् न युक्तिसहम्
किञ्च वर्णेऽवयवान्तर मस्वीकृत्य पदे वर्णावयवस्वीकारे किंते बुद्धिवैशद्यं
यदिच घट इत्यत्र अकारो नोच्चरितः घट इत्यत्र घकार अकारोऽप्युच्चरित इति
व्यवहार एव प्रमाणमिति ब्रूये तदपि सुभिदमूलमेव, तद्व्यवहारस्य घटवत्-
त्वादिधर्मस्य ध्वनिगतत्वस्वीकारेण ध्वनिगतवैलक्षण्यादेवोपपत्तेः किञ्च-
ध्वनं सेना इतिवत् एकपदमिति व्यवहारोपपादनमपि ते आशामोदकायमानम्
वनस्य वृक्षाद्यवयवानां यावतामेककाले विद्यमानतया तावदवयवकसमु-
दायस्य सिद्धतया तद्गतैकत्वमादाय वनमिति व्यवहारोपपत्तावपि वर्णानां
मुच्चरित प्रध्वंसितया एकक्षणे यावतां साहित्याभावेन अवयवसापेक्ष
समुदायत्वस्यैवासिद्धतया तद्गतैकत्वमादायोपपादनस्या सम्भवात् इति
त्रिमृश्यतां सुधीभिः अधिकन्तु विस्तरभयान्नोक्तम् अस्मन्मते पदादिव्यवहार-
स्य कालपनिकतया वास्तविकः अखण्डः एकोनिरवयवः स्फोट एव शब्दः इति
एकं पदम् वाक्यमित्यादि प्रतीतिः एतेन स्फोटानङ्गी कुर्वन्तोऽपि परास्ताः ७३

ननु स्वमते पदादीनामसत्यतया पदादिसाधुत्वप्रदर्शनंकथमित्यत आह ।

भिन्नं दर्शनमाश्रित्य व्यवहारो ऽनुगम्यते ।

तत्र यन्मुख्यमेकेषां तत्रैतेषां विपर्ययः ॥ ७४ ॥

(भिन्नमिति भिन्नं,) दर्शनम् मतान्तर माश्रित्यालम्ब्य (व्यवहारः) पदादि व्यवहारः (अनुगम्यतेऽनुगमः) क्रियते (तत्र) मतान्तरे (एकेषां) प्रधानानां (यन्मुख्यं) पदादिः सत्य इति एतेषां पदादीनां (तत्र) व्याकरणमते (विपर्ययो) वैपरीत्यम् असत्यत्व मिति यावत् अन्यमते प्रसिद्धः पदादि व्यवहारः स्वमतेऽसत्योऽपि रेखागवयन्यायेन अनुगम्यते इति भावः ७४

स्फोटे पदादिवद्व्यवहाराभावं प्रपञ्चयतिचतुर्भिः श्लोकैः

स्फोटस्याभिन्नकालस्य ध्वनिकालानुपातिनः ।

ग्रहणोपाधिभेदेन वृत्तिभेदं प्रचक्षते ॥ ७५ ॥

स्फोटस्येति (अभिन्नकालस्येति) कालानवच्छिन्नस्येत्यर्थः अतएव नित्यत्वमिति फलितम् ननु तदा लोके तदानीम् घटशब्द उच्चारितो नत्विदानी मिति व्यवहारः कथमित्यत आह (ध्वनि कालानुपातिन इति) ध्वनेर्व्यञ्जकस्य काललक्ष्या इत्यर्थः (ग्रहणोपाधि भेदेनेति) ग्रहणस्य व्यञ्जकस्यो पाधेर्ध्वन्यादेर्भेदेन (वृत्तिभेदं) द्रुतादिवृत्तिम् प्रचक्षते कथयन्ति ननु तस्य वास्तविक द्रुतादिवृत्तिरिति फलितम् ७५

स्वभावभेदो नित्यत्वे ह्रस्वदीर्घप्लुतादिषु ।

प्राकृतस्य ध्वनेः कालः शब्दस्येत्युपचर्यते ॥ ७६ ॥

स्वभावेति प्राकृतस्यैतन्नामकस्य स्वभाविकस्येति यावत् इत्यग्रे स्पष्टं स्यात् (ध्वनेः स्वभावभेदात्) अल्पमध्योच्चैरुच्चारणभेदात् (ह्रस्वदीर्घप्लुतादिषु) सत्सु (कालः) एकमात्रिकद्विमात्रिकादिकालः नित्यत्वे (सत्यपि इत्यध्याहारः शब्दस्येत्युपचर्यते) आरोप्यते इति यावत् ननु वस्तुतः तस्य कालानवच्छिन्नत्वादि ति फलितम् ७६

प्राकृत वैकृतयोर्लक्षणमाह

वर्णस्य ग्रहणो हेतुः प्राकृतो ध्वनि रिष्यते ।

वृत्तिभेदे निमित्तत्वं वैकृतः प्रतिपद्यते ॥ ७७ ॥

वर्णस्येति येन वर्णज्ञानं स ध्वनिः प्राकृतो नाम अयन्तु प्रथमं भवति अन्तरं येन द्रुता मध्यमा विलम्बितेति वृत्तित्रयं भवति सः ध्वनिः वैकृतनामकः इति सारार्थः ७७

शब्दस्योद्ध्वमभिव्यक्ते वृत्तिभेदे तु वै कृताः ॥

ध्वनयः समुपोहन्ते स्फोटात्मा तैर्न भिद्यते ॥ ७८ ॥

शब्दस्येति शब्दस्योद्ध्वदेशम् (अभिव्यक्तेः) प्रकाशस्य निमित्तानि ये प्राकृता इति पूर्वत आक्षेपः (वृत्तिभेदे) उक्तवृत्तिभेदे तु कारणानीत्याक्षेपः, ये वैकृता स्तैः प्राकृतवैकृतैः, (ध्वनयः समुपोहन्ते संघाताः) भवन्ति (स्फोटात्मा) न भिद्यते वस्तुतो न भिन्नो भवति तस्यैकत्वान्नित्यत्वाच्चेति भावः ७८

ध्वनिभिः कः संस्क्रियते येन शब्दः प्रकाशयते इति मतभेदेनाह

इन्द्रियस्यैव संस्कारः शब्दस्यैवोभयस्य च ।

क्रियते ध्वनिभिर्वादा स्वयोभिव्यक्तिवादिनाम् ॥ ७९ ॥

इन्द्रियस्येति (ध्वनिभिः) (इन्द्रियस्यैव) श्रोत्रेन्द्रियस्यैव (संस्कारः) (क्रियते) संस्कृतेन तेन शब्दो गृह्यते इति केषांश्चिन्मतम् वा अथवा (शब्दस्यैव) शब्द एव ध्वनिभिः संस्कृतः श्रोत्रविषयो भवति इति अपरमतम् वा (उभयस्य) शब्द श्रोत्रेन्द्रिययो रभयोः संस्कार इति परमतम् इति त्रयोवादा अभिव्यक्तिवादिनाम् नित्यवादिनाम् नये प्रसिद्धा इति ७९

उक्तवादत्रयेऽपि क्रमशः दृष्टान्तमाह

इन्द्रियस्यैव संस्कारः समाधानाञ्जनादिभिः ।

विषयस्य तु संस्कारस्तद्गन्धप्रतिपत्तये ॥ ८० ॥

इन्द्रियस्येति (समाधानं) चिन्तैकाग्रता अञ्जनं आदिना मण्डुकवशादिः (इन्द्रियस्यैव) चक्षुरादेरेव संस्कारः अत एव चक्षुषैव घटो दृश्यते नतु श्रोत्रेण अन्यथा विषयस्या संस्कारेऽ संस्कृतो घटो यथा चक्षुषा गृह्यते तथा अन्येनापि स्यात् द्वितीयदृष्टान्तमाह विषयस्येति शरावादेः उदकादिना संस्कारः अत एव शरावस्थगन्ध एव गृह्यते नतु घटस्थः अन्यथा घ्राणेन्द्रियस्या संस्कारेऽ संस्कृतेन घ्राणेन्द्रियेण यथा शरावगन्धप्रत्यक्षः तथा घटादिस्थगन्धस्यापि स्यात् इन्द्रियस्याविशेषात् इति ८०

तृतीयमते दृष्टान्तमाह

चक्षुषः प्राप्यकारित्वे तेजसा तु द्वयोरपि ।

विषयेन्द्रियोरिष्टः संस्कारः स क्रमो ध्वनेः ॥ ८१ ॥

चक्षुष इति (चक्षुषः प्राप्यकारित्वे) चाक्षुषप्रत्यक्षे (तेजसा) आलोकेन (विषयेन्द्रिययोर्द्वयोरपि] (संस्कारः) इष्टः अन्यथा विषयस्यासंस्कारे अन्धकारस्थितघटस्यापि प्रत्यक्षं स्यात् इन्द्रियस्यासंस्कारे स्वयं अन्धकार

स्थितोऽपि पुरुषः घटं पश्येत् एवमेव (क्रमः) परिपाटी ध्वनेः ध्वनिर्हि श्रोत्रेन्द्रियं संस्करोति अतएव अत्रोच्चारितशब्दः अन्यत्रस्थितपुरुषेण नोपलभ्यते विषयं शब्दमपि संस्करोति अतएव घट इति ध्वनिसंस्कृतेन श्रोत्रेण पटशब्दो नोपलभ्यते इति भावः ८१

तत्र ध्वनि स्फोटयो ग्रहणे मतभेदमाह

स्फोटरूपाविभागेन ध्वनेर्ग्रहण मिष्यते ।

कैश्चिद् ध्वनिरसंवेद्यः स्वतन्त्रोऽन्यप्रकाशकः ॥ ८२ ॥

स्फोटेति, स्फोटे रूपस्य स्वकीयरूपस्या विभागेन अभिन्नतया स्फोटेरूपा-
नुपक्तत्वेति यावत् ध्वने ग्रहणमिष्यते अयं भावः व्यञ्जकरूपानुपक्तत्वं व
व्यङ्ग्यो लोके भवति यथा जपाकुसुमगतलौहियरूप मिश्रितत्वं स्फटिकादे
र्भानमेवम् ध्वनिस्फोटरूपयोरभिन्नतयैव ज्ञानमिति कैश्चित् । ध्वनिः असंवेद्यः
स्वयमप्रत्यक्षः स्वतन्त्रः केवलः अन्यस्य स्फोटस्य प्रकाशको ज्ञापक इत्यर्थः यथा
जधुरादीन्द्रियाणि स्वयमज्ञातानि विषयान् प्रकाशयन्ति तद्वत् ८२

इदानीं स्वमते ध्वनीनां क्रामिकत्वेऽपि एकपदं वाक्यमित्यादि व्यवहार-
मुपपादयति

यथानुवाकः श्लोको वा सोढत्वमुपगच्छति ।

आवृत्त्या न तु स ग्रन्थः प्रत्यावृत्त्या निरूप्यते ॥ ८३ ॥

यथेति, (यथानुवाकः) तदाख्यग्रन्थः नानावाक्यसमुदायः (श्लोको-
वा) नाना पदसमुदायः (सोढत्वं) एकबुद्धिविषयतां (उपगच्छति) प्राप्नोति
नतु स ग्रन्थः आवृत्त्या सकृदावृत्येति यावत् प्रत्यावृत्त्या बारं बारं आवृत्त्यापि
भेदेनेत्याध्याहारः निरूप्यते निश्चीयते किन्त्वेक इत्येव बुद्धिः एवमेव पदेऽपीति
अयमाशयः तत्प्रयत्नजनितैर्ध्वनिभिरवास्तविकान् सखण्डवर्णपदवाक्यान्
स्फोटान् पुनः पुनराविर्भावयद्भिः अल्पशोऽल्पशः वास्तविकाखण्डस्फोटबुद्धि
प्रकाशयद्भिः अन्त्ये साकल्येनैकः स्फोटः प्रकाशयते इयं प्रक्रिया नित्यैकत्व
वादिनां नये तथा च वास्तविकैकत्वमादाय एकोऽयमिति व्यवहारः अवान्तरे

तत्तद्ध्वनिसमुदाय गतसखण्डत्वधर्मकृतनानाधर्मप्रयुक्तवैलक्षण्यमादाय
नाना पदानि नाना वाक्यानीति अवास्तविकव्यवहारः इति । शाब्दिकनये सर्वं
समञ्जसम् मतान्तरं क्रमेण तु वर्णग्रहणे सति समुदायाभावादविषयत्वं तेषां
बुद्धौ स्यादिति संहिता सूत्रे भाष्ये स्पष्टमिति ८३

ननु घटेत्यत्र श्रवणानन्तरं स्फोटो ज्ञातश्चेत्, अलम् तज्ज्ञानार्थमेव घट
ध्वनि स्वीकारेणेति शङ्कामपनुदन्नाह

प्रत्ययैरनुपाख्येयैर्ग्रहणानुगुणैस्तथा ।
ध्वनिप्रकाशिते शब्दे स्वरूपमवधार्यते ॥८४॥

(प्रत्ययैरिति) (ग्रहणानुगुणैः) ग्रहणोपकारकैः (अनुपाख्येयैः) अवा-
च्योपायैः (प्रत्ययैः) घटाद्यवान्तरज्ञानैः (ध्वनिप्रकाशिते) ध्वनिना व्यक्ते
शब्दे (स्वरूपं) स्फोटरूपं (अवधार्यते) सम्यग् ज्ञायते अयमाशयः नहि सकृद्
द्विज्ञानेन स्फोटः सम्यक्त्वज्ञायते किन्तु सकलध्वनिभिः सम्यगभिव्य-
क्तस्य स्फोटस्य स्वरूपज्ञानं भवतीति ८४

तत्र सम्यग् ज्ञानस्य क्रममाहा

नादैराहितवीजायामन्त्येन ध्वनिना सह ।
आवृत्तपरिपाकायां बुद्धौ शब्दोऽवधार्यते ॥८५॥

(नादैरिति) (नादैः) पूर्वपरध्वनिभिः, (आहितं) स्थापितम् (बीजं)
सम्यक्प्रकाशानुगुणसंस्कारः यस्यां तस्याम् (आवृत्तपरिपाकायां) आवृत्तः
पुनः पुनः कृतः परिपाकः प्रत्यक्षकरणयोग्यता यस्यां असकृदनुभवजनित
संस्कारसंस्कृतायामिति यावत् तस्यां (बुद्धौ) अन्तःकरणे (अन्त्येनध्वनिना-
सह) चरमध्वनिसहकारेणेत्यर्थः (शब्दः) स्फोटोऽवधार्यते निश्चयरूपेण
ज्ञातो भवतीत्यर्थः । अयमाशयः, यथा मणिपरिचयः सकृद्दर्शनेन न भवति,
अपि तु एकवारदर्शनेन कश्चित्संस्कारो मनसि जातः पुनर्दर्शने सति ततोऽ-
धिकसंस्कार एवरीत्या चरमदर्शनेनोद्बुद्धसंस्कारसहकृतेनान्त्यानुभवेन
सम्यक् परिचितो भवति एवमेव पूर्वपूर्वध्वन्यनुभवजन्यसंस्कारसंस्कृतेनान्तः
करणेऽन्त्यध्वनिसहकारेण स्फोटः प्रत्यक्षोभवति अतएव न कस्यचिद्ध्वनेर्वै-
यर्थ्यमिति ८५

ननु वास्तविकस्फोटोऽखण्डश्चेत् तदा मध्ये मध्ये वर्णपदाद्यवयवाव-
भासः असङ्गतः स्यादत आह ।

असतश्चान्तराले या उच्छब्दानस्तीति मन्यते ॥
प्रतिपत्तुरशक्तिस्सा ग्रहणोपाय एव सः ॥ ८६ ॥

(असत इति) (अन्तराले) मध्ये (असत) असत्यान् (याच्छब्दानिति)
वर्णरूपान् वर्णावयवकपदरूपान् पदावयवकवाक्यरूपान् शब्दानित्यर्थः
(अस्तीति) (मन्यते) अस्तित्वेन बुध्यते सा (प्रतिपत्तु) ज्ञातुः (अशक्तिः)
वर्णाद्यवयवावभासः व्यञ्जकध्वनिषु विद्यते तद्व्यङ्ग्यस्फोटस्तु निरवयव
शुद्धोऽखण्ड इति विवेचनशक्तेरभावः इत्यर्थः वस्तुतस्तु स ध्वनिः ग्रहणोपाय
एव स्फोटप्रकाशक इति । ८६

नन्वेवं वाक्यानां पदानाञ्च परस्परं भेदो न स्यादत आह
भेदानुकारो ज्ञानस्य वाचश्चोपप्लवो ध्रुवः ॥

क्रमोपसृष्टरूपाया ज्ञानं ज्ञेयव्ययाश्रयात् ॥ ८७ ॥

(भेदेति) ज्ञानं वस्तुतो निरवयवं (एकं नित्यं) विषयाकारन्तु नाना
रूपात्मकम् व्यावहारिकमसत्यं विषयाणामसत्यत्वेन तदाकारताया अपि
असत्यत्वात् इत्यद्वैतवेदान्तमतेन दृष्टान्तः (यत इत्याध्याहारः) (ज्ञेयव्यया
श्रयम्) व्यवहारे घटाद्याकारक मतो ज्ञानस्य (भेदानुकारः) भेदप्रतीतिर्घट
ज्ञानं पटज्ञानादभिन्नमिति व्यवहारः, घटादीनां भेदेन तत्तद्विषयकं ज्ञानयोरपि
भेद स्वीकारात् इति यावत् तथा (क्रमेण) घट इत्यादि ध्वनिक्रमेण, (उपसृष्टं)
संश्लिष्टं (रूपम्) यस्या स्तस्याः (वाचः) स्फोटस्योपप्लवो भेदः (ध्रुवः)
अवश्यं व्यवहार इति शेषः घटेति व्यञ्जक ध्वनि रूपानुषक्तः तदभिव्यङ्ग्यः शब्दः
पदेति व्यञ्जकरूपानुषक्तात् तद् व्यङ्ग्यात् शब्दाद् भिन्न इति व्यावहारिकोभेदः
परमार्थस्तु एक एवेति सारः ८७

ग्रहणोपाय एव स इत्युक्तेऽर्थे दृष्टान्त मुपन्यस्यति
यथाद्यसंख्याग्रहणा मुपोयः प्रतिपत्तये ।
संख्यान्तराणां भेदेऽपि तथा शब्दान्तरश्रुतिः ॥ ८८ ॥

यथेति, (संख्यान्तराणां) अत्रान्तरैकत्वादिसंख्यानां परस्परं भेदेऽपि
शब्दत्वसंख्याया इति शेषः (प्रतिपत्तये) ज्ञानाय (आद्य संख्या) एकत्वादिः
तस्याः (ग्रहणम्) ज्ञानं यथोपायः (तथा शब्दान्तरश्रुतिः) वाक्यस्फोटज्ञानाय
तदवन्तरपदादिश्रुतिः उपाय इति ८८

इदानीं वाक्यपदादिविषयकदेवतादिश्रुतीनां ध्वनीनां भेदेऽपि तदभि
व्यङ्ग्यस्यैक्यमुपपादयति

प्रत्येकं व्यञ्जका भिन्ना वर्णा वाक्यपदेषु ये ।

तेषामत्यन्तभेदेऽपि सङ्कीर्णा इव शक्तयः ॥ ८९ ॥

प्रत्येकमिति (वाक्यपदेषु) वाक्येषु पदेषु च (प्रत्येकं भिन्नाः) नाना
रूपाः (व्यञ्जकाः) स्फोटद्योतकाः (वर्णाः) वर्णरूपा ध्वनयः [ये] [तेषाम-
त्यन्तभेदेऽपि] नानात्वेऽपि [शक्तयः] मात्रारूपाः [संकीर्णा इव] अभिन्ना इव
अयं सारस्तत्तत्प्रयत्न प्रेरिता वायवः तत्तत्स्थानाभिघातेन ध्वनीनुत्पादयन्ति
इति तेषां परस्परं भेदेऽपि अत्वादिरूपेण सर्वत्राकोरादिमात्राणां साभ्यात्
एकैवाकारश्रुतिः सर्वत्र यथा गोत्वादि जात्यभिव्यञ्जकानां भ्रमणत्वादिजाति
व्यञ्जकानामिव न भेदो दुर्ज्ञान इति एवञ्च निरवयवेष्वपि वर्णपद वाक्येषु

मात्राविभागः वर्णविभागः पदविभागश्च तत्कृत एव काल्पनिको मिथ्या इत्यग्रे दृष्टान्त द्वारा स्पष्टो भविष्यति ८६

उक्तार्थे एव दृष्टान्तं प्रदर्शयति

यथैव दर्शनैः पूर्वं दूरा त्सन्तमसेऽपिवा ।

अन्यथाकृत्य विषयमन्यथै वाध्यवस्यति ॥९०॥

यथेति [यथा दूराद्] वा [सन्तमसे] अन्धकारेपि [पूर्वदर्शनैः] प्राथमिकविलोकनैः (विषय मन्यथा कृत्य) विपरीतं बुद्ध्वा पुनः समीपे आलोके वेति शेषः [अन्यथैव] पूर्वदृष्टविपरीततया (अध्यवस्यति) नीर्णीयते अय-
म्भावः दूरतोऽन्धकारे वा जनस्य प्रथमं वृक्षादौ रज्ज्वादौ च हस्त्यादेः सर्पादेश्च
भ्रमात्मस्वप्नोः ततः समीपगमने आलोकानयने च वृक्षोयम् रज्जुरिय मितिच
निश्चिनोतीति ६०

दृष्टान्तं व्युत्पाद्य दार्ष्टान्तिके योजयति

व्यज्यमाने तथा वाक्ये वाक्याभिव्यक्तिहेतुभिः ।

भागावग्रहरूपेण पूर्वं बुद्धिः प्रदर्त्तते ॥९१॥

व्यज्यमान इति वाक्यानामभि व्यक्तयः प्रकाशाः, तासां [हेतवः] कार-
णानि तै ध्वनिभिः [व्यज्यमाने] प्रकाश्यमाने [वाक्ये पूर्वं] प्रथमं भागानां
वर्णपदाद्यात्मकावयवानामवग्रह आभासस्तस्य रूपेण स्वरूपेण प्रकृत्यादिभ्य
इति तृतीया तस्या अभेदोऽर्थः अतो वर्णपदावयवकाभासरूपेति फलितम्
(बुद्धिः)ज्ञानं प्रवर्त्तते भवतीत्यर्थः निरवयवेषु वाक्येषु विवेकाभावप्रयुक्तसा
वयवत्वभ्रम इति भावः ९१

पूर्वं आभासरूपा ततो निश्चरूपा बुद्धिरित्यत्र दृष्टान्त माह ।

यथा नुपूर्वीनियमो बिकारे क्षीरबीजयोः ।

तथैव प्रतिपत्तृणां नियतो बुद्धिषु क्रमः ॥९२॥

यथेति, क्षीरञ्च बीजञ्चतयोः । दुग्धस्य आम्रादि बीजस्य चेत्यर्थः (विकारे)
दधिरूपेवृक्षरूपेच (यथानुपूर्वीनियमः) अयं हि क्रमः क्षीरदध्नोः प्रथमं क्षीरं दध्नादुद्व्यं
ततः किञ्चित् काठिन्याविशिष्टदध्नादुद्व्यं ततश्चाधिककाठिन्याविशिष्टं भवति
तदा दृढं सत् दधीति परिणतं भवति—एवं बीजमपि द्वैधीभावाङ्कुरादिक्रमेण वृक्ष-
रूपेण परिणमति (तथैव प्रतिपत्तृणां) बोद्धृणां (बुद्धिषु) ज्ञानेषु (क्रमः) परि-
पाटी (नियतः) जायते इति फलितम् स्फोटबुद्धिरपि पूर्वं वर्णाद्याभासादि
क्रमेण पश्चात् निरवयवस्फोटविषयकनिश्चयात्मिका भवतीति भावः ६२

अयमेव पन्थाः स्फोटानङ्गीकृतां वर्णनित्यतावादिनां वेदान्तिनां मवश्य
माश्रयणी यदित्युपादयति

भागवत्स्वपि तेष्वेवं रूपभेदो ध्वनेः क्रमात् ।

निर्भागेष्वप्युपायो वा भागभेदप्रकल्पनम् ॥९३॥

भागवदिति(भागवत्सु)न-अ-द-ई-इति वर्णचतुष्टयावयवकसमुदायरूपादि
पदेषु अपि (तेषु) वेदांतिमतेष्वपि (रूपभेदः) दीनेतिसमुदायरूपात् ।
नदीति समुदायस्य स्वरूपभेदः (ध्वनेः क्रमाद्) ध्वनिकमप्रयुक्त एवेत्यर्थः ।
अयमाशयः नदीत्यत्र भवद्भिः तद् वर्णाभिव्यङ्ग्यः तदतिरिक्तः स्फोटोऽर्थ
वाचकः इति नाङ्गीक्रियतेऽपितु तावद् वर्णसमुदाय एव वाचकः, वर्णश्च नित्य
इति स्वीक्रियते तदा प्रत्येकवर्णाभिव्यक्त्यनन्तरसमुदायप्रतीतिश्चेत् द्विती-
यादिवर्णानां वैयर्थ्यम् तावद् वर्णाभिव्यक्त्यनन्तरसमुदायबोधश्चेत् नदीदीने
त्युभयत्र तावतां वर्णानां साम्या दर्थ संकरः अत इत्थमेव उत्तरणीयं स्यात्
यादृशक्रमेण ध्वनिः तत्तादृश क्रमेणैव तत्तद् वर्णाभिव्यक्तिः तावद् वर्णाभिव्यक्त्यनन्तर
क्रमिकसमुदाय बोधः अतो न नदीदीनयोरर्थसंकरः इति तत्तद् ध्वनिक्रमेण
पूर्व पूर्व वर्णाभि व्यक्ति स्तूपायः अन्त्यवर्णप्रत्यक्षकाले समुदायग्रहणेति
अभिव्यञ्जकध्वनिक्रमकृतैव नदी दीनेत्यादौ भेदबुद्धिः यथा मण्डूकवत्सांस्व
रप्रदीपेनाभिव्यक्तरज्वां सर्पज्ञानभेदः इति समायामम् ॥ एतत्
स्वमते साम्यं निगमयति निर्भागेति निर्भागेषु निरवयवपदादिस्फोटेषु
भागभेदकल्पनम् वर्णाद्यवयवकल्पनम् उपायः बोधद्वारमित्यर्थः तवमते
सावयवपदादिसमुदायबोधे पूर्व पूर्व वर्णानामुपायता अस्मन्मते निरवयव
स्फोटबोधे इति भावः एतेनोपायस्यावयोस्तुल्यत्वेऽपि तव मतेऽनन्तानन्त
पादानां वाचकत्व मनन्तानन्तध्वनीनां व्यञ्जकत्वमिति द्विविधानन्तगौरव
कल्पनापेक्षयाऽनन्तपादानां मवाचकत्वकल्पनालाघवात् एकः अखण्डस्फोटो
वाचक इति वैयाकरणशरणिरेव ज्यायसीति विभाव्यतां सुधीभि रधिकन्तु
विस्तर भयान्न वितन्यते इति

६३

मतान्तरमाह

अनेक व्यक्त्यभि व्यङ्ग्या जातिः स्फोट इति स्मृता ।

कैश्चिद् व्यक्तय एवास्या ध्वनित्वेन प्रकल्पिताः ॥९४॥

अनेकेति, कैश्चिदाचार्यैः, अनेकाश्च ता व्यक्तयः क्रमोत्पन्ना वर्णास्तैरनेक
वर्णैः अन्त्यवर्णप्रत्यक्षकाले पूर्वपूर्ववर्णानुभवजन्यसंस्कारसहकारेणा-
भिव्यज्यत इति अभिव्यङ्ग्या (जातिः स्फोटः) इति स्मृता, कथितेत्यर्थः

एतेन शब्दव्यक्तीनामनित्यत्वेऽपि तद्गताकृतिनित्यत्वात् शब्दानित्य इति व्यवहार इति सूचितम् स्फोटमात्रनिर्दिश्यते रश्रुते र्लभ्रुतिरिति पे ओडित्यादि सूत्रस्थभाष्ये स्फोटशब्देन शब्दगतजातिः बोध्यत एतन्मतमनुमृत्य भूषणकारेण स्वग्रन्थे प्रतिपादितम् इति ततएव विस्तरेण द्रष्टव्यः [अस्या] जातेः [ध्वनित्वेन] व्यञ्जकत्वेन [व्यक्त्यपव] उत्पत्तिमत्योऽनित्या शब्दव्यक्तयः [प्रकल्पिताः] कथिता इति ९४

पूर्व मतस्यैव सिद्धान्तसम्मतत्वं मुख्यत्वञ्च दर्शयितुं पुनस्तदेवाह

अविकारस्य शब्दस्य निमित्तैर्विकृता ध्वनिः ।

उपलब्धौ निमित्तत्वमुपयाति प्रकाशवत् ॥९५॥

अविकारस्येति, परेतु जातिमसहमाना एकमेव शब्दतत्त्वं, नित्यमिति मन्यन्तेऽतोऽविकारस्य विकाररहितस्य नित्यस्येति यावत् शब्दस्यैकवचनेनैक शब्दतत्त्वमिति सूचितम् [उपलब्धौ] ज्ञाने (निमित्तैः) तत्तत्प्रयत्न प्रेरितवाग्वभिघातरूपकारणैः (विकृता) उत्पन्ना ध्वनिः [प्रकाशवत्] आलोकस्थानाश्रितस्य स्वसंयुक्तस्य पटादेरूपलब्धौ यथा तथा (निमित्तत्वं) कारणत्वम् (उपयाति] प्राप्नोतीत्यर्थः ध्वनिना तद्रूपानुषक्ततदनाश्रितस्फोटस्य बोध इति भावः ९५

ननु शब्दस्या अभिव्यक्तिपक्षेऽपि अनित्यस्यापि घटादेः प्रदीपादिभिः लोकेऽभिव्यक्तिदर्शनात् शब्दोऽनित्यः अभिव्यङ्ग्यत्वाद् घटादिवत् इत्यनुमित्या अनित्यत्वं सेतस्यति उत्पत्तिपक्षे तु सुतरामनित्यत्वमित्या शङ्क्याह

न चानित्येष्वभिव्यक्ति नियमेन व्यवस्थिता ।

आश्रयैरपि नित्यानां जातीनां व्यक्तिरिष्यते ॥९६॥

नचेति [अनित्येषु] वस्तुषु अभिव्यक्तिः अभिव्यङ्ग्यत्वं [नियमेन] नियततया यत्रयत्राभिव्यङ्ग्यत्वं तत्र तत्रानित्यत्वमिति व्याप्तिरूपेणेति यावत् (नव्यवस्थिता) नहिनिश्चिता अनित्यत्वसाध्यव्यभिचारी अभिव्यङ्ग्यत्वहेतु रिति भावः व्यभिचारं प्रदर्शयति (नित्यानां] जातीनां घटत्वगोत्वादीनाम् [आश्रयैः] कम्बुग्रीवावयवैर्व्यक्तिः अभिव्यक्ति रिष्यते उभयमते सिद्धमित्यर्थः जातौ अभिव्यङ्ग्यत्वहेतोः सत्वेऽपि अनित्यत्वरूपसाध्याभावात् (व्यभिचारोऽतः पूर्वोक्त हेत्वाभासेन नानित्यत्वं साधयितु मलमिति भावः ९६

ननु गेहाः तरस्थितेन प्रदीपेन गेहान्तरस्थितस्य घटस्याभिव्यक्तैरदर्शनं
यथा तथा तालवोष्ठपुटव्यापारजन्यप्रकाशमानैः श्रोत्रदेशस्थितैः ध्वनिभिः
हृद्देशस्थितस्य शब्दस्य वैयधिकरणयात् कथं मभिव्यक्तिरित्यत आह

देशादिभिश्च सम्बन्धो द्रष्टुः कायवतामिह ।

देशभेदविकल्पेऽपि न भेदो ध्वनिशब्दयोः ॥९७॥

देशेति (इह) लोके (कायवतां) मूर्त्तानामेव [देशादिभिः] सम्बन्धः,
अस्य पूर्वदेशेन तस्यच परदेशेन अनयोस्तु, एकदेशेनैव सम्बन्धः इति व्यवहारा
देव नाना देशत्वादिव्यवहारः इष्टः प्रत्यक्षीकृतः ध्वनिशब्दौ त्वमूर्त्तौ तयो
नानादेशत्वव्यवहाराभावात् वैयधिकरण्यमिति भावः इदानीं नानादेशव्यव-
हारं स्वीकृत्यापि समाधत्ते [देशेति] देशानां भेदः तस्य विकल्पेऽयं पूर्वदेशस्थः
अयं पर देशस्थः इमावेकदेशस्थाविति व्यवहारस्वीकारेऽपीत्यर्थः ध्वनि
शब्दयोर्न भेदः न देशभेदः हृद्देशेऽपि आकाशः श्रोत्रेऽप्याकाश इत्युभयत्रा
काशत्वस्य तुल्यत्वात् इति भावः किम्वा ध्वनिः श्रोत्रेन्द्रियद्वारा हृद्देशे गच्छतीति
नास्ति देशभेदप्रयुक्तवैयधिकरण्यमिति भावः ९७

ननु प्रदीपादयोऽभिव्यञ्जका यथाघटमभिव्यञ्जयति तथापटमपीत्यत्रा
नियमो द्रश्यते ध्वनीनां तु नियता भिव्यञ्जकता तालवभिधातजेन नादेन चादय एवाभि-
व्यञ्जन्ते नतु कादय इति नियमाः तस्मात् शब्दा उत्पद्यन्ते इत्येव पक्ष इत्यत आह

ग्रहणग्राह्ययोः सिद्धा योग्यता नियता यथा ।

व्यङ्ग्यव्यञ्जक भावेन तथैव स्फोटनादयोः ॥९८॥

ग्रहणेति गृह्यतेऽनेनेति [ग्रहणम्] चक्षुरिन्द्रियादिः । गृह्यन्त इति
[ग्राह्या] रूपादयस्तयो योग्यता चक्षुषि रूपग्राहकता रूपे चक्षुः ग्राह्यता चेति
यथा नियता सिद्धा चक्षुषा रूपमेव गृह्यते नतु गन्धो रूपे चक्षुः ग्राह्यतैव नतु
श्रोत्रे ग्राह्यतेति नियम इति भावः (तथैव स्फोटनादयोः) व्यङ्ग्यव्यञ्जकभावेन
नियमः, तालवभिधातजध्वनिः चादीनेवाभिव्यञ्जयति नतु कादीनिति नियमेन
अभिव्यक्तेर्न कापि क्षतिरिति भावः ९८

नन्वस्तु विभिन्नेन्द्रियग्राह्यरूपादिषु तादृशनियमः एकेन्द्रियग्राह्य
ध्वनिषु कथं नियम इत्यतो नियममाह

सदृशग्रहणानाञ्च गन्धादीनाम्प्रकाशकम् ।

निमित्तां नियतं लोके प्रतिद्रव्य मवस्थितम् ॥९९॥

सदृशेति, (सदृशानि ग्रहणानि) ग्राहकानि, येषां तेषां तुल्येन्द्रियग्राह्यानां मित्यर्थः [गन्धादीनां] कुम्कुमगन्धादीनाम् [प्रकाशकम्] अभिव्यञ्जक गो घृतादीत्यर्थः [निमित्तम्] कारणं (नियतं) प्रतिद्रव्यं द्रव्यं द्रव्यं प्रति (अवस्थितम्) वर्तन्त इति यावत् गोघृतं हि कुङ्कुम गन्धमेवाभिव्यञ्जयति न तु पाषाणस्थगन्धम् उदकं हि सत्कुरस मेवाभिव्यञ्जकम् न तु पाषाणरस मिति नियमो यथा तथैव प्रकृतेऽपीति भावः ९६

नन्वेवमपि यथा लोके प्रदीपादीनां वृद्धिहासयोः सत्त्वेऽपि न घटादीनां वृद्धिहासौ किञ्च व्यञ्जकप्रदीपादीनां संख्याभेदेऽपि अभिव्यङ्ग्ये न संख्यानन्तरसम्बन्ध इति दृश्यते न तथा शब्दे शब्दो ध्वनिधर्मानुसारेण वृद्धिहास संख्यानन्तरसंबन्धादिधर्म मनुसरति, अतो व्यङ्ग्यधर्माभावात् न शब्दोऽभिव्यञ्ज्यत इति शङ्कां परिजिहीषु राह

प्रकाशकानां भेदांश्च प्रकाशयोऽर्थोऽनुवर्तते।

तैलोदकादिभेदे तत् प्रत्यक्षं प्रतिबिम्बके ॥१००॥

प्रकाशेति, (प्रकाशकानां) आदर्शजलादीनां (भेदान्) उन्नतनिम्बत्वभेदान् जलतरङ्गादिभेदांश्च (प्रकाशः) अभिव्यङ्ग्यमुखचन्दादिप्रतिबिम्बः (अर्थः) पदार्थः अनुवर्ततेऽनुसरति (प्रतिबिम्बके) मुखचन्दादिप्रतिबिम्बके (तैलोदकादि) भेदे सति [तत्] व्यञ्जकगतश्यामादि (प्रत्यक्षं) दृश्यते इति शेषः आदर्शादिगत विकार प्रयुक्तम् प्रतिबिम्बमुखे उन्नतनिम्बत्वादि प्रियङ्गुतैल गतश्यामादि प्रतिबिम्बेऽपि श्यामत्वं जलतरङ्गादिगतसंख्याभेदप्रयुक्तं चन्द्रप्रतिबिम्बे संख्याभेदश्च इत्यादि दृश्यते तथैव प्रकृते ध्वनि शब्दयोर्वाच्य मिति भावः १००

ननु चन्द्रादिभ्यः पदार्थान्तरमेव हि प्रतिबिम्बं आदर्शादिषु दृश्यते एवञ्च नादर्शादयोऽभिव्यञ्जकास्तत उक्तदृष्टान्ता सङ्गतिरत आह

विरुद्ध परिमाणेषु वस्त्वा दर्शजलादिषु ।

पर्वतादि सरूपाणां भावानां नास्ति संभवः ॥१०१॥

विरुद्धेति (विरुद्धं) पर्वताद्यपेक्षया लघुरूपं परिमाणं येषां तेषु (वस्त्वा दर्शजलादिषु) स्वक्षे मणौ आदर्शं दर्पणे आदिपदेन स्वच्छलौहादे ग्रहणं (पर्वतादि सरूपाणां) गुरुपरिमाणपर्वतहस्त्यादीनां (भावानां) पदार्थानां (सम्बन्धः) तत्र सन्निवेशो नास्ति लघुनि आदर्शतले गुरु परिमाण हस्त्यादेः सन्निवेशस्यासम्भवात् न वास्तविक हस्त्यन्तरन्तत्र किन्तु आदर्श सम्बन्धेन तस्यैव हस्तितनः । आभासो व्यञ्ज्यते स एव प्रतिबिम्ब पदार्थ इति न दृष्टान्ता सङ्गतिरिति भावः १०१

नन्वेवं स्फोटस्यैकत्वात् भेदप्रयुक्तपौर्वापर्यव्यवहारः ? ह्रस्वदीर्घादि व्यवहारः द्रुत विलम्बितादिवृत्तिव्यवहारश्चा संगतः स्यादत आह

तस्मादभिन्नकालेषु वर्णवाक्यपदादिषु ।

वृत्तिकालः स्वकालश्च नादभेदाद्विभज्यते ॥ १०२

तस्मादिति(तस्मात्)स्फोटस्यैकत्वात्(अभिन्नाः कालाः)येषां तेषु काल भेद शून्येष्वित्यर्थः, वर्णवाक्यपदादिषु आदिपदेन वाक्यसमुदायमहावाक्यस्यग्रहणं (वृत्तिकालः) द्रुतादिभेदः (स्वकालः) ह्रस्वादि व्यवहारः ? चकारेण पौर्वापर्यादि व्यवहारस्य संग्रहः(नादभेदाद्)ध्वनिभेदाद् (विभज्यते) विविच्यते इत्यर्थः वस्तुत उक्त व्यवहारः स्फोटे नास्त्येव किन्तु ध्वनिगतपौर्वापर्यं प्राकृतध्वनिप्रयुक्तह्रस्वादिव्यवहारं वैकृतध्वनिकृतद्रुतादिव्यवहारश्चादाय तत्र तावद् व्यवहारः कल्प्यत इति भावः १०२

इदानीं ध्वनि स्फोटयो रनित्यत्ववादिमते स्वरूपमाह

यः संयोगवियोगाभ्यां करणौ रूपजन्यते ।

स स्फोटःशब्दजाः शब्दा ध्वनयोऽन्यैरुदाहृताः ॥ १०३

य इति(संयोग)स्तत्तत्स्थानेषु वायोरभिघातः (वियोगश्च उक्तस्थानान्निःसरणम् । ताभ्यां (करणैः)स्थानादिभिः(यः)प्राथमिकः(उपजन्यते)उत्पद्यते(सस्फोटः) शब्दः अस्यदेशः आकाशः सचैकोऽपि संयोगिद्रव्यान्तरकृतभेदेन भिन्नः अतो न पौर्वापर्यादिव्यवहारविरोधः शब्दाज्जाताः शब्दजाः प्रथमोत्पन्नात् शब्दात् शब्दान्तरं जायते ततोऽपि शब्दान्तरमेवंरूपेण श्रुति पथमारोहन्ति ? अत्रैववीचितङ्गन्यायोद्घुष्टान्तः इत्यन्यत्र विस्तरः ते शब्दा (अन्यैः)नैयायिकैः (ध्वनयः उदाहृताः) कथिता इत्यर्थः अन्यैरित्युक्त्या नेदं स्वमतमिति सूचितं स्वमतन्तु संयोगविभागजा ध्वनयस्तदभि व्यङ्ग्यः स्फोटः शब्दो नित्य इति केषाञ्चित्तु संयोगविभागजध्वनिसम्भूतनादाभिव्यङ्ग्यः स्फोट इति मतम् तत्र ह्रस्वादि व्यवहार हेतवो ध्वनयः इति पूर्वमेवोक्तवान्नात्र पृथगुक्त इति भावः १०३

अधुना प्राकृत वैकृतयोर्भेदम् श्लोकद्वयेनाह

अल्पे महति वा शब्दे स्फोटकालोन विद्यते ।

परस्तु शब्द संतानः प्रचयापचयात्मकः ॥ १०४॥

अल्प इति(अल्पे महति वाशब्दे)ध्वनौ ध्वनेः अल्पत्वे महत्त्वेपीति यावत् (स्फोट कालोनविद्यते)नभिन्नोभवतीत्यर्थः । स्फोटस्य नित्यत्वादेकत्वात् व्यापकत्वाच्च नादाल्पत्वमहत्त्व कृतालपत्व महत्त्वे, इति यावत् ध्वनि द्विविधिः

आद्यः उत्तरोत्तरशब्दानां कारणम् स एव प्राकृत इत्युच्यते । अस्य यादृश सामर्थ्यं तादृश एव उत्तरोत्तर शब्दोऽहोमहान्वा उत्पद्यते स एव प्राकृत अतएव मेरी दण्डाभिधातजशब्दो दुरंगच्छति लोहकंसाभिधातजस्तु समीपदेशमेवेतिवृत्ति भेदः (परस्तु) इतरः ध्वनिरूपः(शब्द सन्तानः) प्राकृत वैकृतः प्रचयापचयात्मकः अलावमहत्वादिविशिष्टः १८४

अन्यमतमाह

दूरात् प्रभेव दीपस्य ध्वनिमात्रन्तु लक्ष्यते ।

घण्टादीनाञ्च शब्देषु व्यक्तोभेदः सद्दृश्यते ॥१०५॥

दूरादिति [दीपस्य प्रभा इव] यथा एकैवा लोकः दूरादपि तथैव ध्वनि मात्रम् एकएवनादोलक्ष्यते एवञ्च प्राकृत एव वैकृत इति मतान्तरम् उभयभेद-वादि मतेनाह (घण्टेति) [घण्टादीनां] घण्टा लोह कंसानां [शब्देषु] ध्वनिषु (सभेदः) कश्चित् दुरगामी कश्चित् समीपगामीतिभेदः व्यक्ताः स्पष्टोद्दिश्यते अनेनैव दृष्टान्तेन सर्वत्र वर्णाद्युत्पत्तिस्थले प्राकृतवैकृतनादौ मन्तव्यावितिधेयम् पूर्वं दृष्टान्तस्तु शब्दस्थलातिरिक्तस्थलीयत्वान्न सिद्धान्त संमतः इति भावः १०५

प्राकृत वैकृतयोः कार्यविशेषमाह

द्रव्याभिधाता त्रिचितौ भिन्नौ दीर्घप्लुतावपि ।

कम्पे तूपरते जाता नादा बृत्ते विशेषकाः ॥१०६॥

द्रव्येति द्रव्यैरभिधातः तस्मात्(प्रचितौ) विवृद्धौ (भिन्नौ) परस्परभिन्नौ (दीर्घप्लुतौ) भवत इति शेषः तत्तत्स्थानेषु यादृशोभिधातोभवति तादृशः प्राकृतो नादः एवञ्च लघुरूपाभिधातश्चेत्तदा ह्रस्वः उच्चैरभिधातात् दीर्घः उच्चैस्तरात् प्लुतश्च भवति इत्ययम् प्राकृतधर्मः [कम्पे] वायुना तत्तत्स्थानेषु अभिधातात् उभयोः परस्परं संघर्षस्ततश्च वर्णादिप्रस्पन्दनानुगतः कम्पो भवति तस्मिन् (उपरतेतु) निवृत्तेतु (जाताः) उत्पन्ना नादाः वैकृताख्याः प्राकृतज ध्वनयः (वृत्तेः) द्रुतादेः विशेषकाः परिचायकाः इति १०६

तत्रैव मतभेदमाह

अनवस्थितकम्पेऽपि करणे ध्वनयोऽपरे ।

स्फोटादेवोपजायन्ते ज्वाला ज्वालान्तरादिव ॥१०७॥

अनवस्थितेति (अपरेध्वनयः) वैकृताख्याः (करणे) तालवादी (स्फोटा-देव) प्रथमनादादेव (नानवस्थितः कम्पः नानुवर्त्तमानकम्प इत्यर्थः तस्मिन्

अकम्पे (उपजायन्ते) उत्पद्यन्ते (ज्वालांतरादिव) यथा इन्धनाश्रितप्रथम
ज्वालातः (ज्वाला सकम्पाद्वितीया ज्वाला उर्द्ध्वविवर्द्धते अर्थान् प्रकाशयति
तथैव प्रथम नादात् उत्पन्नाः कम्पानुवर्त्तमानाः वैकृताख्याः द्वितीयानादाः
उर्द्ध्वविवर्द्धन्ते दुतादीन् प्रकाशयन्ति इति भावः १०७

इतः शब्द स्वरूपे मतभेदानाह

वायोरणूनां ज्ञानस्य शब्दत्वापत्तिरिष्यते ।
कैश्चिद्दर्शनभेदोहि प्रवादेष्वनवस्थितिः ॥१०८॥

वायोरिति कैश्चिदाचार्यैः [वायोः शब्दत्वापत्तिः] शब्दत्वम् वायुरेव
शब्द इति यावत्[अणूनां]वा[ज्ञानस्य] वा अणव एव शब्दाः ज्ञानमेव वा इत्यादि
[इष्यते]मन्त्रते[हि]यतः[प्रवादेषु]प्रवचनेषु[अनवस्थितिः]प्रत्येकं सूचीनांभिन्नत्वात्
इयत्ता नास्ति अतः दर्शनभेद इति १०८

सामान्येन मतभेदानुक्तत्वा प्रत्येकमुपपादयति

लब्धक्रियः प्रयत्नेन वक्तुरिच्छानुवर्त्तिना ।
स्थानेष्वभिहतोवायुः शब्दत्वम् प्रतिपद्यते ॥१०९॥

(लब्धेति) (वक्तुः) प्रयोगकर्तुः इच्छामनुवर्त्तयतीति तेन इच्छानुसारेणेत्यर्थः
प्रयत्नं नलब्धा क्रिया स्पन्दनम् यस्य सवायुः(स्थानेषु)तत्त्वादिषु (अभिहतः)
संयुक्तः सन् (शब्दत्वं) शब्द प्रवृत्ति निमित्तम् (प्रतिपद्यते) प्राप्नोतीत्यर्थः
शब्दपदेन व्यवह्रियते इति यावत् १०९

ननुवायुश्चेत् कथं कत्वादिना ज्ञायतेऽत आह

तस्य कारणसामर्थ्यात् वेगप्रचयधर्मिणाः ।
संनिपाताद् विभज्यन्ते सारवत्योपि मूर्तयः ॥११०॥

[तस्येति] वेगप्रचयौधर्मौ यस्य वेगवत् प्रचयवत्तश्चेत्यर्थः[तस्य]वायोः
[संनिपातात्] स्थानाद्यभिघातात् [कारणसामर्थ्यात्] प्रयत्नादिकारणसम्बन्धा-
दित्यर्थः(सारवत्योऽपि)कले त्यादि घन रूपाः (मूर्तयः) आकाराः विभज्यन्ते
विभक्ताभवन्ति इत्यर्थः सपच वायुः स्थानप्रयत्नादिकारणसम्बन्धमाहात्स्यात्
कादिवर्णरूपो भवतीति भावः ११०

अणूनां शब्दत्वमुपपादयति

अणवः सर्वशक्तित्वाद् भेदसंसर्गवृत्तयः ।
छायातपतमःशब्दभावेन परिणामिनः ॥१११॥

(अणव इति भेदेन संसर्गेण) सम्बन्धेन [वृत्तयः] परस्परंभिन्ना इत्यर्थः
अणवः नभःस्थितः सूक्ष्मशब्दाः सर्वाशक्तिर्यस्य तस्य भावस्तत्त्वात् यतः सर्व शक्तिमन्तः
अतः इति भावः (छायाशब्दत्वेन आतपशब्दतया तमःशब्दत्वेन च छायादिसकल
शब्दरूपेणेति यावत् (परिणामिनः) परिणता भवन्ति तेषामेव परिणामो यावच्छब्द
इति भावः) अणवः सर्वशक्तिमन्तः परस्परंभिन्नाश्चेत्यतः विरुद्धार्थक
शब्दरूपेणाऽपि परिणामे न किञ्चिद्वाधकमुन्नेयमिति छायाऽऽतपदानेन सूचित
मिति भावः १११

ननु अणूनां सदाविद्यमानतया सदैव कथंन परिणामः इत्यतः, आह

स्वशक्तौ व्यज्यमानायां प्रयत्नेन समीरिताः ।
अभ्राणीव प्रचीयन्ते शब्दाख्याः परमाणवः ॥११२॥

स्वशक्ताविति (प्रयत्नेन) अर्थबोधनेच्छया आन्तरिकप्रयत्नेन (समी-
रिताः) उदीर्णाः अतएव (स्वशक्तौ) परिणामजनकताशक्तौ (व्यज्यमानायां)
सत्यां (शब्दाख्याः परमाणवः) घटेत्यादिशब्दस्वरूपाः (प्रचीयन्ते) संधी-
भवन्ति (अभ्राणीव) यथा आकाशे वर्षायां मेघपरमाणवः गगनतलाच्छादिनो
भवन्तीत्यर्थः एवञ्च यदैव प्रयत्नप्रेरिताः तदैवशब्दपरिणामा न सदेति
फलितमिति ११२

ज्ञानस्य शब्दत्वमुपपादयति

अथेदं मान्तरं ज्ञानं सूक्ष्म बागात्मना स्थितम् ।
व्यक्तये स्वस्य रूपस्य शब्दत्वेन विवर्तते ॥११३॥

अथेति (अथ इदम्) प्रत्येकं खतः सिद्धम् (आन्तरं ज्ञानं) प्रत्येकं
प्राणिनां अन्तः अर्थविषयकज्ञानम् वर्तते तदेव (सूक्ष्मबागात्मना) इन्द्रियागोचर
शब्दकारणरूपेण (स्थितम्) विद्यमानम् तदेव (स्वस्यरूपस्य) ज्ञानस्वरूपस्य
[व्यक्तये] प्रकाशाय (शब्दत्वेन विवर्तते) वहिः शब्दरूपम् भवति इत्यर्थः ११३
तस्य निसरणप्रकारमाह

स मनोभिन्नमापद्य तेजसा पाकमागतः ।
वायुमाविशति प्राणमथासौसमुदीर्यते ॥११४॥

समन इति (सः) ज्ञानाभिन्नः अन्तःस्थितसूक्ष्मशब्दः (मनोभावं)
(आपद्य) इच्छावान् मन इति सांख्य मतानुसारेण अर्थबोधनेच्छाविशिष्टो
भूत्वा [तेजसा] कायाग्निना [पाकम्] आगतः तत्सम्बन्धेनोर्द्धमापन्नः [प्राणं
वायुं] हृदयस्थवायुमाविशति, समाश्रयति [अथ] अनन्तरं [समुदीर्यते]
उच्चार्यते इत्यर्थः । इदमेव भगवान् पाणिनिः स्वशिक्षायामाह आत्माबुध्या समे-
त्यर्थान् मनोयुक्ते विवक्षया । मनः कायाग्निं माहन्ति संप्रेरयति मारुतमिति ११४
ततः कथं निःसरतीत्याह

अन्तः करणतत्त्वस्य वायुराश्रयतां गतः ।
तद्धर्मैण समाविष्टस्तेजसैव विवर्त्तते ॥११५॥

अन्तः करणेति (अन्तःकरणतत्त्वस्य) यावद् व्यवहारकारणस्य अद्वैत
वेदान्तगोहेहि यावदन्तःकरणस्थितिः तावदेव व्यवहारः तन्नाशे ब्रह्मस्व
रूपत्वमिति तस्य च हृद्देशेस्थितिः तस्याश्रयतां अधिकरणतां गतः प्राप्तो वायुः
प्राणवायुः । यत्रहि प्राणवायुर्नास्ति तत्र नैवान्तःकरणं यथा मृतशरीरे इत्यतः
तदधिकरणं अतः [तद्धर्मैण] अन्तःकरणस्य ज्ञानरूपशब्देन धर्मैण समाविष्टः पूर्व
रित्या समायुक्तः सन् तेजसैव [कायाग्निनैव विवर्त्तते] वहिः समागत्य शब्दरूपो
भवतीति भावः ११५

केन रूपेण वहिर्गच्छतीत्यत आह

विभज्य स्वात्मनो ग्रन्थीन् श्रुतिरूपैः पृथग्विधैः ।
प्राणो वर्णा नभिव्यज्य वर्णेष्वेवोपलीयते ॥११६॥

विभज्येति (प्राणः) वायुः [स्वात्मनः] स्वकीयरूपस्य ग्रन्थीन् कादि
वर्णरूपान् (विभज्य) विभागं कृत्वा [पृथग्विधैः] नाना प्रकारैः [श्रुति रूपैः] कख
गेत्यादिरूपैः [वर्णान्] (अभिव्यज्य) प्रकाशयित्वा स्वयमपि वर्णेष्वेवोपलीयते
वर्णतः पृथक् न तिष्ठति किन्तु तद्रूपमेव भवतीति भावः ११६

मतान्तरमाह

अजस्रवृत्तिर्यः शब्दः सूक्ष्मत्वाच्चोपलभ्यते ।
व्यञ्जनाद्वायुरिष स स्वनिमित्तात् प्रतीयते ॥११७॥

अजस्रेति (अजस्रं) संततं (वृत्तिः (सत्ता) यस्य स (शब्दः) यः सूक्ष्मत्वात्
अन्तर्वाह्ये सर्वत्र (उपलभ्यते) प्राप्यते हस्तादिताडने सर्वत्रैवशब्दो लभ्यते अतः
सर्वत्र शब्दः सूक्ष्मरूपेण विद्यते इतिभावः (स स्वनिमित्तात्) प्रयत्नादिवशात्
(प्रतीयते) प्रकाशितः सन् ज्ञायते इत्यर्थः (व्यञ्जनात् वायुरिव) यथा व्यञ्जनादि
द्वारा वायुः प्राकाशितो भवति तथा सदा सर्वत्र सूक्ष्मरूपेण शब्दः स्थित एव
निमित्तैर्विवृद्धः सन् ज्ञायते नतु नवीनो भवतीत्येतन्मतसारः ११७

पक्षान्तरमाह

तस्य प्राणो च या शक्तिर्या च बुद्धौ व्यवस्थिता ।
विवर्त्तमाना स्थानेषु सैषा भेदं प्रपद्यते ॥११८॥

तस्येति (तस्य) शब्दस्य (प्राणो) प्राणवायौ (याशक्तिर्या) च (बुद्धौ) अन्तः
करणे (व्यवस्थिता) विद्यमानाऽस्ति, शब्दाधिष्ठानम् प्राणो बुद्धिश्चेति फलितम्
(सापेक्षा) बुद्धिशक्तिः प्राणशक्तिसहकारेण (स्थानेषु) तात्वादिषु (विवर्त्तमाना) वर्णादि
रूपेण प्रतिभासमाना (भेदं) कादिभेदं प्रतिपद्यते प्राप्नोतीत्यर्थः तस्या एव शक्तेः
कादिवर्णरूपेण अतास्त्रि का यथा भावो भवतीति भावः ११८
शब्द एव जगत् कारणम् इति प्रथमतः उक्तं तदेव पुनः दाढ्याय स्मारयतिः

शब्देष्वेवाश्रिता शक्ति विश्वस्यास्य निवन्धिनी ।
यन्नेत्रः प्रतिभात्मायं भेदरूपः प्रतीयते ॥११९॥

शब्द इति (अस्यविश्वस्य) संसारस्य [निवन्धिनी] कारणम् (शक्तिः)
विवर्त्तनात्मिका शक्ति रित्यर्थः (शब्देषु एवाश्रिता) विवर्त्ताधिष्ठानतया शब्द एव
अधिकरण मिति भावः [या] उक्तशक्तिः (नेत्रं) ज्ञापकं यस्य सः विवर्त्तवशादेव
भेद व्यवहारः वस्तु तस्तु नास्तीति सूचितम् [प्रतिभा) तबममेत्याद्यानादि
वाशना (आत्मा) आश्रयो यस्य सोऽयं (भेद रूपः) सांसारिक व्यवहारः (प्रती-
यते) प्रतीतिमात्रम् नतु वस्तुसत्ता भेदव्यवहारस्येति फलित मिति ११९
व्यवहारमात्रस्य शब्दाधीनत्वं प्रदर्शयति

षड्जादिभेदः शब्देन व्याख्यातो रूप्यते यतः ।
तस्मादर्थ विधाः सर्वाः शब्दमात्राः सुनिश्चिताः ॥१२०॥

षड्जेति (व्याख्यातः) सङ्गीतशास्त्रेकथितः षड्जादि भेदः षड्जर्षम
गान्धारेत्यादि सप्त स्वर भेदः (यतः शब्देन रूप्यते) निश्चीयतेनहिकश्चिदप्यर्थः वा

चक्रमन्तराव्यव ह्रियते अज्ञशिरोमणि गौपालोऽपि स्वगोयूथे प्रत्येकं गवां हरी
निलीत्यादिनाम कृत्वाआह्वानादिव्यवहारं विधत्ते तस्मात् [सर्वा अर्थविधाः]
अर्थ प्रकाराः [शब्दमात्राः) शब्दनिबन्धना परिमाणे मात्रच् [सुनिश्चिताः]
निर्णिता इत्यर्थः १२०

शब्दादेव सृष्टिरित्यत्र वेदप्रामाण्यादि दर्शयति

**शब्दस्य परिणामोय मित्याम्नायविदोविदुः ।
छन्दोभ्यः एव प्रथममेतद् विश्वमव्यवर्तत ॥१२१॥**

शब्दस्येति (अयं) संसारः (शब्दस्य) (परिणामः) शब्दादेव जात
इत्यर्थः अत्रोत्पत्तिः विवर्त्तोत्पत्ति ग्राह्येति पूर्वोक्त मनु सन्धेयम् [इत्याम्ना
यविदः] वेदप्रामाणिकाः (विदुः] जानन्ति तमेव वेदमाह छन्दोभ्य इति (एत
द्विश्वं) संसारः [प्रथमं] सृष्ट्यादौ [छन्दोभ्यः] वेदेभ्य एव व्यवर्तत अजायत इत्यर्थः
वेदानां शब्दरूपत्वात् शब्दादुत्पत्तिरिति सिद्धम् अत्र प्रमाणम् ऋग्वर्णः वागेव
विश्वां भुवनानि जज्ञे वाच इत्सर्वमसृजत यच्चमर्त्यमिति किञ्च एषवैछन्दस्यः
साममयः प्रथमो वैराजः पुरुषोयोजनमसृजत तस्मात् पशवोऽजायन्तपशुभ्यो
वनस्पतयो वनस्पतिभ्यो दिश इत्यादि श्रुतिः स्मृतिरपि विभज्य बहुधाऽत्मानं
सच्छन्दस्यः प्रजापतिः छन्दोमयीभिर्मात्राभिर्वहुधैव विवेशतम् इत्यादि किञ्च
दृष्टान्तेऽपि यथा घटादौ सर्वत्र मृददर्शनात् मृदुपाद्यानकत्वम् सिध्यति तथैव
सर्वत्र शब्दमात्रासमन्वयात् शब्दोपादानकत्वम्

सर्वत्र शब्द समन्वयमुपपादयति

**इति कर्तव्यता लोके सर्वा शब्दव्यापाश्रयाः ।
यांपूर्वाहितसंस्कारो वालोऽपि प्रतिपद्यते ॥१२२॥**

इतिकर्तव्येति (लोके) सर्वा (इति कर्तव्यता) इदं कर्तव्यमिति नियोगादि
सकलव्यवहाराः शब्दव्यापाश्रया शब्दनिबन्धनाः पूर्वाहितसंस्कारो जन्मान्तर स-
ञ्चितसंस्कारः (वालोपि) यां इति कर्तव्यतां प्रतिपद्यते शब्देन व्यवहरतीत्यर्थः
किमुक्तव्यम् लोकेऽसदपि वस्तु शशविषाणादि वाचा व्यव ह्रियते सदपि वस्तु
शब्दं विना नव्यवह्रियते अतोयावद् व्यवहारे शब्द समन्वय इति भावः १२२

युक्त्यन्तरमाह

आद्यः करणविन्यासः प्राणस्योर्ध्वं समीरणम् ।

स्थानानां मभिघातश्च न विना शब्दभावनाम् ॥२३॥

आद्य इति (शब्द भावनां विना) जन्मान्तरे शब्दभावना नासीच्चेत् तदेत्यर्थः (आद्यः) प्राथमिकः (करणविन्यासः) शब्दश्रवणार्थं श्रोत्रेन्द्रियस्य सावधानताकरणम् (प्राणस्य) तदाख्यवायोः (उर्ध्वं समीरणम्) उर्ध्वगमनं शब्दोच्चारणार्थं वायोरुर्ध्वप्रेरणमित्यर्थः (स्थानानाम्) तालवादीनाम् (अभिघातश्च) जिह्वादिसंयोगकरणम् न स्यात् । जन्मान्तरे शब्दभावनां विना उपदेशाभावेऽपिश्रोत्रेण शब्दः श्रूयते एवंरीत्या उच्चार्यते इति ज्ञानस्या संभवात् इन्द्रियविन्यासाद्य संभवः स्यात् इति भावः अतः इन्द्रियविन्यासादिदर्शनेन श्रोत्रेण शब्दः श्रूयते इति ज्ञानकारणतया प्रतिपुरुषं पूर्व पूर्व जन्मान्तरकृत शब्दभाव नानुमीयते इति फलितम्

सर्वत्र शब्दभावनां प्रदर्शयति

न सोस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमाद्भूते ।

अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वशब्देन भासते ॥१२४॥

न सोस्तीति (लोके) व्यवहारे [सः प्रत्ययः] ज्ञानं नास्ति [यः]

प्रत्ययः (शब्दानुगमात् ऋते) शब्दमविषयीकृत्य वर्तते किन्तु [सर्वज्ञानं शब्देन अनुविद्धम् इव] शब्दविषयीकृत्यैव (भासते) प्रकाशते इत्यर्थः अयमाशयः गौरवम् इति प्रत्यक्षस्थलेऽपि शब्दः स्मर्यते अयं शब्दः एतदर्थवाचक इति सङ्केतज्ञानं शब्दार्थोभयविषयकं शब्दश्रवणानन्तरमपि उभयविषयकं स्मरणं शब्दबोधोप्युभयविषयकः, अतएव षोडशाप्रातिपदिकार्थ इत्युद्घोषः एवञ्च सर्वत्र शब्दभावतानुगमदर्शनेन शब्दोपादानकत्वं संसारस्येति पूर्वं प्रतिज्ञातार्थ सिद्धिः

१२४

पुनरपि तदेवोपपादयति

वाग्रूपताचे दुत्क्रामेदवबोधस्य शाश्वती ।

न प्रकाशः प्रकाशेत सा हि प्रत्यवमर्शनी ॥१२५॥

वाग्रूपेति [अवबोधस्य] सविकल्पकज्ञानस्य [शाश्वती] सदाविद्यमाना [वाग्रूपता] ज्ञाने यथा स्वप्रकाशत्वं स्वरूपं सदा तिष्ठति तथैव शब्दानुगतत्वमपि स्वस्वरूपं सदा तिष्ठति इति भावः [सा उत्क्रामेच्चेत्] यदि विनश्येत् इत्यर्थः तदा (प्रकाशः) ज्ञानं [न प्रकाशेत] न विषयमवधारयेत्

[हि] यतः [सा] ज्ञाने वागानुगतता [प्रत्यक्षमर्शनी] सविकल्पकज्ञानसम्पादिका इत्यर्थः घटं दृष्ट्वा घटोऽयमिति सविकल्पकनिश्चयं करोति तत्र वाचकतया शब्दोपि विषयः अन्यथा वाचकशब्दाज्ञानेन कोयमिति सन्देहो न निवर्त्ततेत्यतः ज्ञाने शब्दानुगतत्वं सविकल्पत्वसम्पादनम् यत्र च अस्यार्थस्य वाचकः अयंशब्दः इति वाचकविशेषस्य ज्ञानं नास्ति तत्र वस्तु इदमिति सामान्यवस्तुशब्दानुगतमेव ज्ञानं भवतीति सर्वथा शब्दविषयितां न कदाचिदपि ज्ञानं जहाति इति भावः

१२५

सर्वस्य शब्दाधीनत्वेयुक्त्यन्तरमाह

सा सर्वविद्याशिल्पानां कलानां चोपबन्धिनी ।

तद्बशादपि निष्पत्तौ सर्ववस्तु विभज्यते ॥१२६॥

सासर्वेति) सर्वाश्च ता विद्या वेदादयस्ताश्च शिल्पाश्च शरादिनिर्माणविधयस्तस्यां (कलानां) सङ्गीतादीनां चकारेण एवरित्या पटो वातव्य इत्यादि उपदेशग्रहणं (उपनिबन्धिनी) ज्ञापिका [सा] वाक् किञ्च (निष्पत्तौ) घटाद्युत्पत्त्यनन्तर मित्यर्थः । शब्दवशात् सर्वं वस्तु विभज्यते घटोऽयं पटोऽयमिति विभागो भवतीत्यर्थः । अयमाशयः लोके विद्यादिभिरेव व्यवहारो भवति विद्यादयश्च शब्दे एव निबद्धाः किञ्च घटादावुत्पन्नेऽपि घटोऽयं पटोऽयमिति शब्देनैव विभागो भवतीत्यतः सर्व व्यवहारः शब्दाधीन एवेति

१२६

तदेव प्रपञ्चयति

सैषा संसारिणां संज्ञा बहिरन्तश्च वर्तते ।

तन्मात्रामप्यतिक्रान्ते चैतन्यं सर्वजन्तुषु ॥१२७॥

सैवेति [सा एषा] वाक् [संसारिणां] प्राणिनां [बहिः] व्यवहारे (संज्ञा) वाचिका (तन्मात्रां) तद् व्यवहारम् (अतिक्रान्तेऽपि) अतीतेऽपि (सर्वजन्तुषु) सर्वप्राणिषु (चैतन्यं) एतदुपलक्षकं सुखदुःखादीनाम् अन्तस्संज्ञा वर्तते सर्वत्र संज्ञादिद्वाराशब्द समन्वय इति भावः

१२७

अपि च

अर्थक्रियासु वाक् सर्वा समीहयति देहिनः ।

तदुत्क्रान्तौ विसंज्ञोऽयम् दृश्यते काष्ठकुड्यवत् ॥१२८॥

अर्थेति) (सर्वा वाक्) अर्थक्रियासु सिद्धोगादिरर्थपदार्थः साध्यमानयनादि क्रियाः तेषु (देहिनः) प्राणिनः समीहयति प्रवर्तयति तदुत्क्रान्तौ

व गुत्क्रमेण सति (काष्ठकुड्यवत्) काष्ठभित्त्यादि तुल्यम् (अयं) चेतनः (विसंज्ञः) चैतन्य
शून्यः (द्रश्यते) व्यवहियते शब्दानुगतं चैतन्यं शब्दव्यापाराभावे तदपि न व्यवहियते
इति भावः १२८

लोके कुलालादिकारणरूपं घटादिकार्यरूपश्चेति सर्वं शब्दब्रह्मणो वि
वर्तमहिम्नैव विभज्यते इ युपपादयति

प्रविभागे यथा कर्ता तथा कार्ये प्रवर्तते ।

अविभागे तथा सैव कार्यत्वेना वतिष्ठते ॥१२९॥

प्रविभाग इति (प्रविभागे) शब्दब्रह्मणः कुलालः कर्ता घटः कार्यमित्या
दि विभागात्मकविवर्त्तंसति (यथा] येन प्रकारेण (कर्ता) कुलालादिः (तथा) तेन प्र
कारेण (कार्ये) घटादौ (प्रवर्त्तते अविभागे) उक्तविभागशून्ये विवर्त्तं सति सावा
क तथा (कार्यत्वेन) घटाद्यर्थरूपेण (अवतिष्ठते) स्थितो भवतीत्यर्थः विभागा
विभागरूपेण शब्द ब्रह्मणः विवर्त्ता देव सांसारिक पदार्थ इति भावः १२९

पुनरपि जगत्कारणत्वं शब्दस्योपपादयति

स्वमात्रा परमात्रा वा श्रुत्या प्रक्रम्यते यथा ।

तथैव रूढतामेति तथा ह्यर्थो विधीयते ॥१३०॥

स्वमात्रेति (स्वमात्रा] आत्मातिरिक्तं किमपि नास्ति तस्यैवाभासः प्रतिवि
म्बरूपः प्रत्येकं पुरुषे जीव इति व्यवहियते प्रतिविम्बप्रतिवि
म्बितोः वस्तुतः पार्थक्याभावात् जीवब्रह्मणोरैक्यम् एतदेव बोधयति तत्त्वमसी
त्यादि वाक्यम् संसारश्चासत्यः अत्रोपोद्बलिका यत्र हि द्वैतमिव भवति यत्र
वा अन्यदिवस्यात् तत्रान्योन्यत्यश्यति अन्योऽन्यत् विज्ञानीयात् यत्र त्वस्य सर्व
मात्मैवाभूत् तत्केन कं पश्येत् केन कं विज्ञानीयात् इति श्रुतिः इत्यद्वैतमतम् (पर
मात्रा) यथाग्नेर्विस्फुलिङ्गा तथा ब्रह्मणोऽवयवाजीवा इति द्वैतमतम् (वाश्रुत्या)
नेह ना नास्ति किञ्चनेत्यादि श्रुत्या द्वासाणां सयुज्येत्यादि श्रुत्या वा यथा प्र
क्रम्यते) यथा प्रदर्श्यते तथैव सा श्रुतिः तस्मिन्नर्थेरूढतामेति प्राप्नोति (हि) यतः
श्रुत्या सोऽर्थो विविधीयते] निश्चीयत इत्यर्थः तत्तत्प्रवादानुसारेण तत्तच्छब्दस्य
तत्तदर्थं संकेतः कृतः, अतएव तच्छब्देन स एवार्थः नत्वन्यः, इति व्यवहार नियमः
एवञ्च यावद् व्यवहारस्य शब्दमूलत्वात् शब्दमूलकोऽयं संसार इति ध्वनिः १३०

पुनस्तदेव युक्त्यन्तरेणोपपादयति

अत्यन्तमतथाभूते निमित्ते श्रुत्युपाश्रयात् ।

द्रश्यतेऽलातक्रादौ वस्त्वाकारनिरूपणा ॥१३१॥

[अत्यन्तेति निमित्ते] कारणे [अत्यन्तम् अतथा भूते] असत्ये सत्यपि (अलातचकादौ) उल्कोत्पातशशविषाणादौ [श्रुत्युपाश्रयात्] शब्दबलात् [वस्त्वाकारनिरूपणा] इदं वस्त्वित्याभासप्रतीतिः दृश्यते बाह्यसत्ताविहीनोप्यर्थः शशविषाणादिः शब्दबलेन बुद्धौ सन्निपतति शब्दसत्ताविहीनस्तु अर्थः न कुत्रापि प्रतीयतेऽतः शब्दमूलिकैवार्थसृष्टिरिति भावः १३१

अन्तर्यामिण एव शब्दत्वे युक्त्यन्तरमाह

अपि प्रयोक्तुरात्मानं शब्द मन्तरबस्थितम् ।

प्राहुर्महान्तमृषभं येन सायुज्यमिष्यते ॥१३२॥

[अपीति प्रयोक्तुः] उच्चारयितुः [आत्मानं] अन्तः करणम् (अन्तरवस्थितम्) हृदयस्थितं (महान्तम् ऋषभम्) श्रेष्ठम् [शब्दं प्राहुः] येन शब्देन [सायुज्यम्] तद्भावापन्नः मोक्षः (इष्यते) इष्टोऽस्ति अयमाशयः शब्दो द्विविधः नित्योऽनित्यश्च नित्यः स्फोटः स एवान्तर्यामी सर्वशाक्तयुक्तः सर्वेश्वरः प्रतिपुरुषम् अन्तरवस्थितम् एतद्भावनावशादेव एतद्भावापन्नो मोक्षः सायुज्याख्यः सर्वेषामिष्टोऽस्ति अनित्यश्च लोके उच्चार्यमाणः व्यावहारिकः इति एतदेव महामाष्ये चत्वारि शृङ्गा त्रयोऽस्य पदा इत्यादि प्रतिपादितम् १३२

शब्दसंस्कारस्य सायुज्योपायतां प्रदर्शयति

तस्माद्यः शब्दसंस्कारः सा सिद्धिः परमात्मनः ।

तस्य प्रवृत्तितत्त्वज्ञस्तद् ब्रह्मामृत मश्नुते ॥१३३॥

तस्मेति [तस्मात्] शब्दब्रह्मणोवैक्यात् (शब्द संस्कारः) अयं शब्दः साधुः अयं शब्दोऽसाधुः इत्यादि प्रक्रिया [सा] परमात्मनः परब्रह्मणः [सिद्धिः] प्राप्त्युपायः कथमित्यत आह । (तस्य) शब्दब्रह्मणः (प्रवृत्तितत्त्वज्ञः) वर्णादि व्यवहारः ध्वनिकृतः शब्दब्रह्म तु तदभिव्यङ्ग्योऽखण्डः एकः इत्यादि रूपेण यावत् व्यावहारिकधर्माणां नेति नेतीत्यादि श्रुति रीत्या निषेधमुखेन शुद्धाखण्डब्रह्मज्ञानवान् पुरुषः तद् (ब्रह्मामृतम्) अजरामरादिभावं (अश्नुते) ब्रह्मरूपो भवतीत्यर्थः संस्कृतेन ध्वनिना विशुद्धान्तःकरणे विशुद्धं ब्रह्म अभिव्यज्यते इति ध्वनिसंस्कारः परम्परया ब्रह्मप्राप्त्युपाय इति भावः १३३

इदानीं स्मृतीनां प्रवाहानादित्वव्यवस्थापनेन प्रामाण्यं स्थापयति

न जातु कर्तृकं कञ्चिदागमं प्रतिपद्यते ।

वीजं सर्वागमापाये त्रप्येवादौ व्यवस्थिता ॥१३४॥

न जात्विति (कञ्चित् आगमम्) स्मृतिम् [जातु] कदाचिदपि [अकर्तृकं] अप्यपेयं (न प्रतिपद्यते) न विजानाति अपि तु पौरपेय एव जानाति केवलं वेद

वाक्यान्येवापौरुषेयाणि नन्वेवम् पूर्वस्मृतिषु विनष्टासु पुनः कथं भविष्यन्ती
त्यत आह (वाजं] स्मृतेः कारणरूपं [सर्वांगमापाये) सर्वस्मृतिविनाशेऽ-
स्ति (त्रयी] एव श्रुतिरेव (आदौ व्यवस्थिता) वेदे एव कारणरूपेण
तिष्ठतीत्यर्थः पूर्वस्मृतिषु विनष्टास्वपि पुनः प्रणेतारः तद्वेदबीजमादाय
प्रणयिष्यन्तीत्यतः स्मृतीनां प्रवाहविच्छेदाभावेन प्रवाहनित्यतया प्रामाण्यम्
इति भावः १३४

उक्तार्थमेव युक्त्यन्तरेणोपपादयति

अस्तं यातेषु वादेषु कर्तृष्वन्येष्वसत्स्वपि ।
श्रुतिस्मृतिगतं धर्मं लोको न व्यतिवर्तते ॥१३५॥

अस्तमिति [वादेषु] भक्ष्याभक्ष्यादितत्तद्विषयनियमनिबन्धेषु
अस्तं यातेषु विनष्टेषु सत्स्वपि अन्येषु (कर्तृषु) ग्रन्थ निर्मायकाचार्येषु
(असत्स्वपि) अविद्यमानेष्वपि (श्रुतिस्मृतिगतं) तत्प्रतिपाद्यं (धर्मम्)
भक्ष्याभक्ष्यादिनियमं (लोकः) साधुजनः (न व्यतिवर्तते) न व्यतिक्राम्यतीत्यर्थः
पूर्वाचार्यकृतग्रन्थाः विनष्टाः पुनर्नवीनाचार्याः निबन्धनग्रन्थान् नाकार्षुः
एतादृशावस्थायामपि साधुजनाः परम्परागतशिष्टाचारं न त्यजन्तीत्यतः
श्रुतिस्मृतिकथितधर्मस्य कदापि विच्छेदो नास्तीति प्रवाहनित्यतेति भावः १३५

नन्वेवं स्मृतिमन्तरापि लोको धर्ममाचरिष्यत्येव किमर्थं स्मृति
प्रणयनेनेत्यत आह ।

ज्ञाने स्वाभाविके नार्थः शास्त्रैः कश्चन विद्यते ।
धर्मो ज्ञानस्य हेतुश्चेत्तत्रात्मनायो निबन्धनम् ॥१३६॥

(ज्ञान इति) (स्वाभाविके) प्राक् कृतधर्मवशात् शास्त्रमन्तरापि
उत्पन्ने ज्ञाने (शास्त्रैः) (कश्चन) अर्थः) प्रयोजनं न (विद्यते) यदि (ज्ञानस्य)
हेतुः कारणं धर्मश्चेत् किन्तु [तत्र] धर्मो [आत्मनायः (निबन्धनं)] ज्ञापक
कस्यचित् पुरुषस्य प्राक्तनधर्मवशात् ज्ञानोत्पत्तौ तत्र शास्त्राणां प्रयोजन
विरहेऽपि आपामरं प्रतिधर्मव्यवस्थापनेन शास्त्राणां चारितार्थमिति भावः १३६

आगमस्यैव प्रामाण्यत्वे तर्कस्य सर्वथा अप्रामाण्यमेव स्यादत आह

वेदं शास्त्राविरोधी च तर्कश्चक्षुरपश्यताम् ।
रूपमात्राद्वाक्यार्थः केवलान्नावतिष्ठते ॥१३७॥

वेद शास्त्रेति[अपश्यताम्]साक्षात् कर्तुंमसमर्थानाम् जनानां (वेदशास्त्रा विरोधो] आगमविरुद्धः (तर्कश्चक्षुः] अर्थप्रकाशकः (हि) यतः [कैवलात्] प्रकरणादितर्क रहितात्[रूपमात्रात्]केवलवाक्यस्वरूपात्[वाक्यार्थः]निश्चयात्मकं वाक्यार्थो (नावतिष्ठते) न व्यवस्थितो भवतीत्यर्थः प्रकरणादिज्ञान पुरःसरं यो वाक्यार्थः स एव निश्चयात्मकः प्रकरणादि ज्ञानं तर्कमन्तरा न भवेदतो वेद वाक्यार्थे सहकारि तर्क प्रमाणम् नतु शुष्क तर्कः इति भावः १३७

तदेवोपपादयति

यतो विवक्षा पारार्थ्यं व्यक्तिरर्थस्य लैङ्गिकी ।

इति न्यायो बहुविधस्तर्केण प्रविभज्यते ॥१३८॥

यत इति) यतः यस्मात् (विवक्षा)पशुना यजेतेत्यत्रैकत्वस्य विवक्षा अतएवैकपशुकरणकयागाददृष्टसिद्धिः नतु अनेकपशुहरणकयागात् ग्रह समार्षि + इत्यत्र अविवक्षा अतो न वसोमरसपात्रसम्मार्जनं एवञ्च विधेयगत संख्या विवक्ष्यते नतु हे शगतसंख्या इत्यनुगमः (पारार्थ्यम्) नक्षत्रं दृष्ट्वा वाच विसृजेत् इत्यादौ नक्षत्रपदस्य तदुदयकाले लक्षणा अत एव सत्यपि नक्षत्रदर्शने दिवा न वाग् विसर्गः रात्रौ च असत्यपि दर्शने विसृज्यते वाक् इति(लैङ्गिकी)अर्थस्य व्यक्ति र्यथा अक्ताः शर्करा इत्यत्र तेजो वैद्यतमित्यन्यत्र घृतस्य स्तुति रुर लिङ्गात् धृतेनाक्ता इत्यर्थस्य प्रकाशः(इति बहुविधः न्यायः) अनुगमः(तर्केण प्रविभज्यते) विविच्यते तस्मात् वेदार्थबोधे सहकारितया तर्कस्य प्रामाण्यमिति भावः १३८

ननु यथा वेद वाक्यार्थं तर्के निश्चिनोति तथा स्वतन्त्रार्थमपि कथं न निश्चिनयात् अत आह

शब्दानामेव सा शक्ति स्तर्केयः पुरुषाश्रयः ।

स शब्दानुगतो न्यायोऽनागमेष्वनिबन्धनः ॥१३९॥

शब्दानामिति)[यः पुरुषाश्रयः]पुरुषवृत्तिः तर्कः उक्तविवक्षादिविषयकः [सा शब्दानामेव शक्तिः]सामर्थ्यं (सन्ध्यायः) अनुगमः (शब्दानुगतः) शब्दसहकृतोभवतीत्यर्थः शब्दानां नियतविषयकशक्तिमत्त्वे सत्येव विवक्षादयो भवन्ति नतु शब्दशक्तिमःतरापि अतएव हरिशब्दस्थले प्रकरणादिनापि विष्णवाद्यन्यतमार्थ एव नियम्यते नतु कदाचिदपि घटादयः इति सारः तस्मात्(अनागमेषु)अशब्दस्थले शुष्क तर्कः(अनिबन्धनः)अनिश्चायक इत्यर्थः १३९

तन्वेवं शब्दस्य सर्वसामर्थ्यं सर्वकार्यं प्रसंगोऽत आह

रूपादयो यथा दृष्टाः प्रत्यर्थे यत शक्तयः ।
शब्दास्तथैव दृश्यन्ते विषापहरणादिषु ॥ १४०॥

रूपेति[यथा रूपादयः]रूप रस गन्ध स्पर्शादयः (प्रत्यर्थम्) अर्थमर्थम् प्रति
(यत शक्तयः) नियतसामर्थ्यका [दृष्टाः]स्फटिकरूपम् अन्यप्रतिविम्बमादधानि
नत्वन्वयत् ओषधिविशेषरसः विषं शमयति नान्यत्र चम्पकगन्धः भ्रमरम्
नाशयति अयस्कान्तस्पर्शः स्वर्णयति इत्यादिदृष्टफलनियमः) शालिग्रामरूप
तोयादिकव्यसादिः अदृष्टजनन इत्यदृष्टफलनियमश्चेति भावः तथैव
शब्दा तत्तद्व्यनिवर्णाद्यभिव्यङ्ग्या विषापहरणादिषु यतशक्तयो दृश्यन्ते
केन चित् शब्देन विषहरण दृष्टफलं कस्य चित्स्मन्त्रस्य पारायणेन अदृष्टा-
र्थसिद्धि रितिनियम इति भावः १४०

यथा तुलस्यादि रसस्यदृष्टिफलं रोगनिवृत्तिः अदृष्टफलं भगवत्प्रसादः
इत्युभयफलं एवं साधुशब्दानां मुभयफलं मुपपादयति

यथैषां तत्र सामर्थ्यं धर्मेऽप्येवं प्रतीयते ।
साधूनां साधुभिस्तस्माद् वाच्यं मभ्युदयार्थिभिः ॥ १४१ ॥

यथैषामिति (यथा) साधूनाम् तेषां शब्दानाम् (तत्र) विषहरणादिदृष्टि
फले [सामर्थ्यं] शक्तिः एवं धर्मेऽपि सामर्थ्यं प्रतीयते एकः शब्दः सम्यक् ज्ञातः
इत्यादि श्रुत्या ज्ञायते इत्यर्थः तस्माद् [अभ्युदयार्थिभिः] इहामुत्रफलकांक्षिभिः
जनैः कर्तृपद[साधुभिः]संस्कृतशब्दैः कारणे तृतीया वाच्यम् व्यवहर्तव्यमित्यर्थः
१४१

ननु यस्य दृष्टफलजननसामर्थ्यं तस्यादृष्टफलजननसामर्थ्यं कथं
न यस्य चादृष्टफलं तस्या दृष्टफलदृष्टान्तवलेन दृष्टफलं कुतो नेत्या
शंकां परिहरति

सर्वे दृष्टफलानर्था नागमात्प्रतिपद्यते ।
विपरीतञ्च सर्वत्र शक्यते वक्तुमागमे ॥ १४२ ॥

सर्व इति [सर्वः]शब्दः [आगमात्]आगमप्रामाण्यात् दृष्टफलान् अर्थान्
प्रतिपद्यते कथयति यदि तदा [आगमे] वेदे सर्वत्र विपरीतं फलं दृष्टफलस्थले
अदृष्टफलं अदृष्टफलस्थले दृष्ट फलं [वक्तुं] शक्यते अपितु आगमप्रामाण्यं
नास्ति यत् सर्वेषामेकरूपमेव फलं कल्पनीयम् किन्तु कस्यचित् दृष्टमेव फलं

कस्यचित् अदृष्टमेव कस्यचित् तूभयमेवेति आगमप्रमाणसहकृतयुक्त्या
कल्पनीयमिति सारः

न चैतावता प्रकृते व्याकरणे किमायातमत आह

साधुत्वज्ञानविषया सैषा व्याकरणास्मृतिः ।

अविच्छेदेन शिष्टानामिदं स्मृतिनिबन्धनम् ॥१४३॥

साधुत्वेति) साधुत्वज्ञानं) इदं साधु इत्याकारकसाधुत्वप्रकारकज्ञानं
विषयः) प्रतिपाद्यः यस्याः (यथा साधु शब्दज्ञानं भवेत् + इति फलितम्)
सा एषा (व्याकरणस्मृतिः) व्याकरणशास्त्रम् । ननु पाणिनेः पूर्वं व्याकरणं
नासीत् इति कथं नित्यरूपेयं स्मृतिरत आह (शिष्टानां) आचार्याणां (अवि-
च्छेदेन)सातत्येन (इदं स्मृतिनिबन्धनम्)शास्त्र प्रणयनम्)आचार्याणां विच्छेदेऽपि
व्याकरण स्वरूपस्य विच्छेदाभाव इति भावः १४३

व्याकरणेन वास्तविकशब्दस्वरूपज्ञानात् मोक्षफलं स्तौति

वैखर्या मध्यमायाश्च पश्यन्त्याश्चैतदद्भुतम् ।

अनेकतीर्थभेदाया स्त्रय्यावाचः परंपदम् ॥१४४॥

वैखर्या इति [वैखर्या]वैखरीवाचः श्रोत्रेन्द्रियेण यत् श्रूयते सा वैखरी
इयमनेकधा घटः इत्यादि संस्कृता घटा इत्यादि श्रष्ट संस्कारा भाषा दुन्दु-
भिवेगुजोणादिजन्यध्वनिमात्ररूपा इत्यादयः (मध्यमायाः) हृदयस्थवाचः
इयं हि जपादौ बुद्धि निर्ग्राह्या सूक्ष्मा प्राणवृत्यनुगता [पश्यन्त्याः]नाभीस्थवाचः
इयं हि नाभिदेशे वायुनाऽभिव्यक्ता मनोगोचरीभूता योगिना समाधौ
साक्षात्क्रियमाणा[एतस्याः] त्रय्याः अनेकतीर्थभेदायाः तत्तत्स्थानभेदप्रयुक्त
भिन्नायाः वस्तुतः एकस्या एवेति फलितम्(वाचः परं)श्रेष्ठं(पदम्)मूलाधारास्थ
पराख्यम् एतद् (अद्भुतम्)विलक्षणम् योगिनामपि समाधौ निर्विकल्पकज्ञान
विषयः ब्रह्मरूपम् एतत्साक्षात्कारेणैव मोक्षो भवतीति ध्वनितम् अतएव
महाभाष्ये चत्वारि वाक्परिमितानि पदानिःत्यादि प्रयोजन निरूपणे प्रथमा हि
के प्रतिपादितम् किञ्च परा वाक् मूल चक्रस्था पश्यतो नाभि संस्थिता हृदि-
स्था मध्यमा ज्ञेया वैखरी कण्ठदेशेऽनेत्यन्यत्र स्वरूपं निर्धारितम् १४४

ननु इदं साधुमसाध्विति व्यवस्थां अस्मदादयः स्वयमेव करिष्यामः किं
व्याकरणेनेति परिहरति ।

तद्विभागा विभागाभ्या डिक्त्रयमाणमवस्थितम् ।

स्वभावज्ञैश्च भावानां दृश्यन्ते शब्दशक्तयः ॥१४५॥

तद्विभागेति(भावानां)वस्तूनां(स्वभावज्ञैः) एतावन्तोऽर्थाः एतावन्तः शब्दाः
इति यथार्थ स्वरूपज्ञानिभिः प्राणिन्यादिभिः (शब्दशक्तयः) शब्दसामर्थ्यानि

(दृश्यन्ते) योगजधर्मवलात् प्रत्यक्षीक्रियन्ते यतः तत इतिशेषः तैः[विभागाविभा-
भ्यां]भू धातु ति प्रत्यय इति प्रकृत्यादि विभागेन पङ्क्ति विंशति, दाधर्ति दाध-
र्षीत्यादि रूपेण अविभागेन साक्षात् पदोपदेशेनेति फलितम् (क्रियमाणं)
निर्माण्यमाणम् (तद्) व्याकरणम् साधुत्वबोधकतयानियतम् अस्मदादीनां
तादृश ज्ञानाभावात् साधुत्व ज्ञापनार्थं व्याकरणमिति भावः १४५

श्रुतिस्मृत्योर्नित्यत्व बोधन द्वारा ताभ्यामेव धर्मो व्यवस्थापनीय
इति प्रतिपादयति ।

अनादि मप्यवच्छिन्नां श्रुतिमाहुरक तृकाम् ।

शिष्टैर्निवध्यमाना तु न व्यवच्छिद्यते स्मृतिः॥१४६

अनादीति(अवच्छिन्नमपि)प्रलयेतिरोहितभूतामपि (अनादिम्) प्रलये-
निरोभावे तादृशस्वरवर्णानुपूर्वीणां नाशाभावात् युगादौ आविर्भावेऽपि पूर्वं
नासोत् अधुना जात इति व्यवहाररहितामिति भावः (अकतृकाम्) कतृ-
र-
हिताम् (आहुः) “धाता यथा पूर्व मकलययत्”इति श्रुतिवलात् हिरण्यगर्वादिः
सृज्यादौ प्रचारकतृत्वेऽपि स्वातन्त्र्येण रचनाकतृत्वाभावात् अपौरुषेयैव
श्रुतिरिति भावः [स्मृतिस्तु) (शिष्टैः) आचार्यैः व्यासादिभिः (निवध्य-
माना) श्रुत्यर्थप्रकाशार्थं विरच्यमाना (न व्यवच्छिद्यते) प्रवाहरूपेण न
विनश्यति स्मृतेः पौरुषेयत्वेऽपि तदुक्तविषयप्रवाहस्य सदा विद्यमानतया
विद्यत्वमिति भावः एवञ्च शास्त्र प्रतिपादितविषयानुष्ठाने धर्मः तदति
क्रमणे अधर्मः सामान्यतो यो गोवधोऽधर्मः स एव गोमेधयागे धर्म इति
शास्त्रेणैवोच्यते इति विना शास्त्रं न धर्मादिज्ञान मिति एतेषां शब्दानां प्रयोगे
धर्मइति ज्ञापनार्थं व्याकरणशास्त्रमिति तात्पर्यम् १४६

प्रकारान्तरमाह

अविघाता द्विवृत्तानामभिख्या स्वप्नवच्छ्रुतौ ।

भावतत्त्वन्तु विज्ञाय लिङ्गेभ्यो विहिता स्मृतिः॥१४७॥

अविघातेति [श्रुतौ) वेदे (विवृत्तानां] प्रकाशितानां पदार्थानां [अवि-
घातात्] अविघातं कृत्वा याथातथ्येनेति यावत् [भावतत्त्वं) वस्तुतत्त्वं [वि-
ज्ञाय] ज्ञात्वा [लिङ्गेभ्यः) नाना हेतुभ्यः (विहिता] प्रकाशिता [स्मृतिः]
(अभिख्या] संज्ञा यथा स्वप्ने दृष्टानां भावतत्त्वं जाग्रदवस्थायां स्मृत्वा स्मृत्वा
वागादिनाना हेतुभ्यः प्रकाश्यते तथैव वेदे स्थितं वस्तु स्मारं स्मारं नानाहेतुभ्यः
प्रकाश्यते सैव स्मृतिरिति भावः १४७

व्याकरणफलमाह

कायवाग्बुद्धिविषया ये मलाः समवस्थिताः ।

चिकित्सा लक्षणाध्यात्म शास्त्रैस्तेषां विशुद्ध्यः ॥१४८॥

कायेति (कायवाग्बुद्धिविषया) [येमलाः) कायगतमलं रोगादि वाग्मलं अपभ्रंशत्वम् बुद्धिमलं विषयरागद्वेषादि एते [समवस्थिताः) वर्त्तमानाः (तेषाम्] [चिकित्सालक्षणाध्यात्म शास्त्रैः) (विशुद्ध्यः) संस्काराः भवन्तीत्यर्थः चिकित्सा शास्त्रं आयुर्वेदः तेन औषधादि द्वारा रोग निवृत्तिः, लक्षणेन व्याकरणशास्त्रेण इकोयण चीत्यादि सामान्यविशेषलक्षणादि द्वारा अपभ्रंश निवृत्तिः अध्यात्मशास्त्रेण वेदान्तेन रागद्वेषादिनिवृत्तिः भवतीत्यतः अपभ्रंश परिहारः व्याकरणफलमिति भावः

१४८

अर्थनिमित्ता साधुत्वासाधुत्वव्यवस्था नतु शब्दस्वरूप निमित्तेत्युपपादयति

अस्व गोण्यादयः शब्दाः साधवो विषयान्तरे ॥

निमित्तभेदात्सर्वत्र साधुत्वन्तु व्यवस्थितम् ॥१४९॥

अस्वेति (अस्वगोण्यादयः) शब्दाः) वाज्यर्थे अस्वशब्दः गवार्थे गोणीशब्दः इत्यादयः असाधवोऽपि (विषयान्तरे) धनाभावे आवपने चार्थे (साधवः) दृश्यन्ते यतः अतः इतिशेषः (साधुत्वम्) तुशब्दात् असाधुत्वं (निमित्तभेदात्) अर्थप्रवृत्तिनिमित्तादिविशेषप्रयुक्तं (सर्वत्र व्यवस्थितम्) नियतम् अनुमेयमिति भावः ---॥१४९॥

साधुशब्दानामेव वाचकत्वात् अपभ्रंसस्थलेऽपि साधुस्मरणद्वारा शाब्द बोध इति नैयायिकमत मनुवदति

ते साधुष्वनुमानेन प्रत्ययोत्पत्तिहेतवः ॥

तादात्म्यमुपगम्येव शब्दार्थस्य प्रकाशकाः ॥१५०॥

ते साध्विति (तेऽपभ्रंशाः) (अनुमानेन) सादृश्यादिना ज्ञातेषु इति शेषः अत एव साधु पदे स्व बोध्य क्रियायाः स्वाधारकालानन्तरकालेन प्रत्ययोत्पत्तिरूपक्रिया व्यवच्छेदकतया ज्ञापक क्रियाश्रय बोधकत्वात् “ यस्य च भावेनेति सप्तमी ” (साधुषु) संस्कृतेषु [प्रत्ययोत्पत्ति हेतवः] शब्दबोधकारणानि [तादात्म्यमुपगम्येव] साधुभिः सहतादात्म्यं प्राप्येव स्वसादृश्येन साधून् स्मारयित्वा इति फलितोऽर्थः (शब्दार्थस्य प्रकाशकाः) बोधकाः भवन्तीत्यर्थः

१५०

ननु घट शब्दादय इव घडा शब्दादयोऽपि साक्षात् वाचका भवन्तु किञ्च
कलशादिवत् पर्याया अपि भवन्त्वत आह

न शिष्टैर्नुगम्यन्ते पर्याया इव साधवः ।

न यतः स्मृतिशास्त्रेण तस्मात्साक्षाद् वाचकाः १५१

नशिष्टैरिति [यतः शिष्टैः] आचार्यैः [स्मृति शास्त्रेण] व्याकरण
कोशादिना [साधव इव] अपभ्रंशाः इति शेषः (न अनुगम्यन्ते) अत इत्याध्या
हारः (न पर्यायाः) घट पर्याय कलशादीनां कोशादौ अनुगमा दिव घडादि
शब्दानां तद्विरहात् पर्यायता विरह इति भावः यस्मात् न पर्यायाः (तस्मात्
साक्षात् अवाचकाः] एकप्रवृत्तिनिमित्तावच्छिन्नवाचकत्व मेव पर्यायत्व
मिति भावः १५१

असाधूनां साधुस्मरणद्वारावाचकत्वे दृष्टान्तं मुपपादयति

अम्बाम्बेति यदा बालः शिक्ष्यमाणोऽपभाषते ।

अव्यक्तत्तद्विदां तेन व्यक्ते भवति निश्चयः ॥१५२॥

अम्बेति [अम्बाम्बेति शिक्ष्यमाणः] वृद्धैः अम्बा अम्बा इति वदेत्युपदि
श्यमानः (बालः) द्विहायनोवदुः (यदा अव्यक्तं) अमामेति (अपभाषते]
अशक्त्या अपभ्रंशमुच्चारयति तदा (तद्विदां) साधुज्ञानां वृद्धानां (तेन) अव्यक्त
कथनेन (व्यक्ते] साधुशब्दे अनुमितेसति (निश्चयोभवति) अयमिदं कथयती
ति निश्चीयते इत्यर्थः बालेन दुधू इत्युक्ते वृद्धः साधु शब्दानुमानेन दुग्धमित्युच्चा
रयतीति निश्चिनोतीति भावः १५२

प्रकृते निगमयति

एवं साधौ प्रयोक्तव्ये योऽपशब्दः प्रयुज्यते ।

तेन साधुव्यहितः कश्चिदर्थोऽभिधीयते ॥१५३॥

एवमिति]तथैवजनेन (साधौ प्रयोक्तव्ये) सति अशक्त्यादिनेति शेषः
(यःअपशब्दः) अपभ्रंशः (प्रयुज्यते) तेन) अपशब्देन (साधुव्यवहितः) साधु
स्मरणानन्तर मित्यर्थः [कश्चिद् अर्थः) स्मृत साधु सङ्केतितार्थः [अभिधी-
यते] बोध्यते इत्यर्थः अपभ्रंशेषु शक्तिर्नास्तीति भावः १५३

अन्यमतं मुक्त्वा तत्त्वण्डनं पुरस्सरं स्वमतं माह

पारम्पर्यादपभ्रंशा निर्गुणेष्वभिधातृषु ।

प्रसिद्धिं मागता ये तु तेषां साधुर वाचकः ॥१५४॥

पारम्पर्येति [निगुणेषु] स्त्रीशूद्रवालादिषु (अभिधातृषु) प्रयोग
कर्तृषु विषयेषु (पारम्पर्यात्] अनादिकालतः [प्रसिद्धि मागताः] कम्बु
प्रीवादिमति गगरी शब्दः साम्नादिमतिच गावी शब्दः एवं रूपेण व्यवहृताः
[ये अपभ्रंशाः भाषाशब्दाः [तेषां] समुच्चारणे इति शेषः [साधुः अवाचकः]
स्त्रीशूद्रादीनां साधु स्मरण द्वारा नार्थ बोधो भवति प्रत्युत साधूच्चारणेऽपि
भाषाशब्देनैव वार्थबोधो भवतीति शक्तिग्राहकव्यवहारस्योभयत्र तौल्यात्
भाषा शब्देऽपि शक्तिः केवल धर्म जनकता साधावेव नत्वसाधावितिभावः
तदेवाह

दैवी वाग् व्यवकीर्णो य मशक्तैरभि धातृभिः ।

अनित्यदर्शिनां त्वस्मिन् वादे बुद्धिविपर्ययः ॥५५॥

दैवीति [अशक्तैः] असमर्थैः [अभिधातृभिः] उच्चारकैः इयं (दैवी-
वाग्] देववाणी (व्यवकीर्णा) । संकीर्णा संस्कृतेन व्यवहर्त्तव्ये भाषयापि
व्यवह्रियते इति तयोः साङ्ग्यमिति साधुविवेकाभावात् व्यवहारोपपत्त्यै
भाषास्वपि शक्तिः कल्पनीयैवेति भावः (अस्मिन्वादे (अनित्यदर्शिनान्तु]
नैयायिका दीनाम् (बुद्धिविपर्ययः) भाषासु नास्ति शक्तिरिति भ्रम इत्यर्थः १५५
तत्रैव युक्त्यन्तर माह

उभयेषामविच्छेदेऽप्य न्यशब्दविवक्षया ।

योऽन्यः प्रयुज्यते शब्देन सोऽर्थस्याभिधायकः ॥१५६॥

इति वाक्य पदीये ब्रह्मकाण्डः

उभयेषामिति (उभयेषाम्) साध्वसा धूनां (अविच्छेदे) अविनाशे
सत्येव एवार्थकोऽपि (अन्य शब्द विवक्षया) गो शब्द प्रयोगेच्छया
(यः अन्यः] शब्दः पटः [प्रयुज्यते) प्रयुक्तो भवति (स अर्थस्य] गवार्थस्य
(न अभिधायकः) न बोधको भवतीत्यर्थः वालप्रलापवत् अन्यशब्द
विवक्षया अन्यः प्रयुक्तः साधु रसाधुश्च नार्थवाचको भवतीत्यतः उभयत्र
शक्ति रिति सिद्धम्

इति महा वैयाकरण श्रीहरि वृषभाचार्य विरचित वाक्य पदीय प्रकाशे
प्रथमस्य ब्रह्मकाण्डस्य व्याकरणन्यायवेदान्तसांख्यशास्त्राध्यापक भोपाह
मैथिल पण्डित श्री द्रव्येश शास्त्रि प्रणीत प्रत्येकार्थ प्रकाशिका टीका समाप्ति
मगात् शुभम्भूयात्

❀ प्रणेतृ परिचय ❀



गुणाष्टाङ्केन्दु १९८३ दध्नेऽब्दे बैक्रमेकुज वासरे ।
 माधवाऽसित सप्रभ्यां काण्डेयम् पूरितोऽनया ॥ १ ॥
 एनां द्रव्येशभा शर्मा पित्रोः परफलाप्तये ।
 विनिर्माऽर्पिण च श्रीम च श्यामाङ्गिसरसीरूहे ॥ २ ॥
 तातः श्रीहरि केशवाभिधुध श्रीकान्त चिन्ताचणः ।
 आनन्दा जननी च यं जनयति स्मोल्लासित श्रीपदा ।
 श्रीराधारमणः पितु स्त्ववरजः सम्पत् सुताद्यन्वितः ।
 ख्यातः सर्वगुणान्वित स्तदनुजः श्रीरेवती रामणः [रेवतीरमण] ॥ ३ ॥
 एते श्री ठीठरा ख्यस्य पञ्जीवद्धस्य धीमतः । (शशिपुर शूलपाणिभा पांजि)
 पगौली मूलका विप्राः सुताख्याताश्च मण्डले [पगुलवार बढिआम मैथिल परिचय
 यद् भूमौजनकोऽभवजन पतिर्लक्ष्मीः स्वयंजानकी ।
 यस्याः सम्प्रति शाशको निज भूजैः प्रख्यात कीर्त्तिभूवि ॥
 नेपालेश्वर चन्द्र शेरनृपति र्धर्मात्मदानीश्वरः । (राणा श्री ३ चन्द्र समसेर)
 तस्या वाग् वतिकातटे वसत पूराख्यं पुरंजन्म भूः ॥ ५ ॥
 विद्यालयान् कति पयान् कृतवान् स्वभूपैः ।
 अस्माविधान् निजबुधान् भूतवान् गुणान्नैः ।
 षट् शास्त्रसार रस रञ्जित मानसालिः
 नेपाल राजगुरु रिन्दतिहेम राजः (श्री हेमराज उपाध्यायः] ॥ ६ ॥
 स्वग्रामे प्रथमं मनीषिमहित श्रीकर्मदत्ताख्यतः ।
 भीठायां जननी जनुभुविमहाविद्वन्नथुन्याख्यतः [श्रीनथुनीभा) ।
 कौमुद्यन्तमधोत्य साधु निखिलं ग्रन्थं तदाशीर्वृतः ।
 काश्यां श्री भुवनेश्वरस्यचराणाम्भोजं शरण्यं श्रितः ॥ ७ ॥
 तत्र श्री राम कृष्णः सुरगुरु निभया ख्याति माप्तः स्वकीर्त्या ।
 तात्या शास्त्रिप्रसिद्धो बुधजन निकरे भूतिटीका प्रकर्त्ता ।
 सम्राजो लब्धवान् वै महदुभयपदप्रागुपाध्याय शस्तिम् ।
 टीकाग्रन्थार्थचिन्तामणिममलमदः पादपद्यादलब्ध ॥ ८ ॥

शेषश्चषट् शास्त्र विचारदक्ष श्री बालबोधोपादुपनाममिश्रात् (कोकनवासीमैथिल
अध्यापकात् काशिकराजकीयविद्यालये दर्शन शास्त्र मापत् ॥ ६ ॥
वृन्दावने शरण संश्रित सज्जनाना मन्नादि दाननिचयैः प्रथितः पृथिव्याम् ।
श्रीकान्तकान्त पद पद्म समाश्रितो यो वेदान्तवादविधिवादविचारदक्षः ॥ १० ॥
गोपालाचार्यवर्येण महता तेन निर्मिते (श्रीस्वामी महन्त गोपालाचारी ।
श्रीहयग्रीव रामानुजविद्याधर्मि पाठकः

प्राप्तिस्थान
पं० द्रव्येश भा व्या० आ० वे०
शास्त्री प्रधानाध्यापक
श्री १०८ स्वामी महन्त गोपालाचार्य
संस्थापित श्री हयग्रीव रामानुज-
पाठशाला वृन्दावन (मथुरा)

निवेदकः—
प्राप्तिस्थान—
पं० श्री वरशर्मा चतुर्वेद गतश्रम टीला
मथुरा

❀ वोक्यपदीय ब्रह्मकाण्डस्य शुद्ध चशुद्धि पत्रम् ❀

| पृ० सं० | पं० सं० | अशुद्ध | शुद्ध |
|---------|---------|------------|------------|
| २ | ६ | यतम् | यम् |
| " | ८ | दास्यपात् | दास्य्यात् |
| " | १० | व्यापक | व्यापकम् |
| " | १३ | पट | पटा |
| " | २७ | अज्ञाज | अज्ञानज |
| " | ३० | मर्थेन | मर्थेन |
| " | ३३ | रूपेणय | रूपेणच |
| ३ | ३ | ब्रह्मेदम् | ब्रह्मेदम् |
| ३ | १६ | वाधात् | वाधात् |
| " | २४ | ताशक्त | ताःशक्त |
| " | २७ | पाश्रितः | पाश्रिताः |
| ४ | ३ | पेक्ष्यै | पेक्ष्यै |
| " | ८ | स्थियव | स्थित्यव |
| " | १० | व्यवहार | व्यवहार |
| " | ११ | ओखने | जोखने |
| ७३ | २६ | निर्विः | निर्वि |

| अंकपृष्ठ | पांक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|----------|---------|---------------|-----------------|
| ५ | २२ | गगनः | गगनम् |
| ६ | ३ | सहसम् | सहस्रम् |
| " | ४ | धर्व | धर्व |
| " | १२ | सभावे | समावे |
| ७ | १० | कर्माका | कर्मका |
| ८ | ११ | कणम् | करणम् |
| " | १६ | स्वाध्यादी | स्वाध्यायादी |
| " | २६ | गोत्वविशि | गोत्वविशि |
| १० | ५ | मध्यामा | मध्यमा |
| " | ७ | ढतारा | ढतरा |
| ११ | १० | यावत् | यावत् |
| " | २५ | पासेत | पासते |
| १२ | १४ | परिग्रहाः | परिग्रहा |
| १३ | २ | नित्येषु | नित्येषु |
| १५ | २८ | श्रुत्यनुकुल | श्रुत्यनुकूल |
| १७ | २० | किञ्चनुमान | किञ्चानुमान |
| " | २५ | देशभेदत् | देशभेदात् |
| १८ | १३ | व्यासादमः | व्यासादयः |
| " | " | अनयेक्षस्यान् | अनपेक्षः स्यात् |
| " | " | ह्यनुमान | ह्यनुमान |
| १८ | २६ | अतीन्द्रिय | अतीन्द्रिय |
| १९ | ६ | विश्वसनीय | विश्वसनीय |
| २० | २९ | रूपकेनह | रूपकेणाह |
| २१ | ८ | शून्यदे | शून्यदे |
| २२ | ५ | वाग्रूपः | वाग्रूपः |
| २३ | ११ | संकेत | संकेत |
| " | २५ | प्राप्नोति | प्राप्नोति |
| २४ | ३ | आमेति | आत्मेति |
| २८ | १७ | तस्यवस्य | तस्यतस्य |
| " | १८ | शेषधर्मः | शेषधर्मः |
| ३३ | ३० | इन्द्रिय | इन्द्रिय |
| ३४ | ११ | अन्यस्व | अन्यस्व |
| ३५ | ६ | सम्पक्तपा | सम्यक्तया |
| ३६ | १० | स्योपल्यवो | स्योपल्यवो |

| | | | |
|----|----|--------------|-----------------|
| ३६ | ३१ | व्यञ्जका | व्यञ्जका |
| ३७ | ४ | संतभसे | संतमसे |
| ३६ | ३ | मनुमृत्य | मनुसृत्य |
| ४० | १ | गेहातर | गेहान्तर |
| " | १७ | कदयः | कादयः |
| " | २५ | अभिधात | अभिघात |
| " | " | कादीनिति | कादीनिति |
| ४१ | १ | येषा तेषा | येषां तेषां |
| " | २ | कुम् कुम् | कुङ्कुम |
| " | १७ | मुखचन्दा | मुखचन्दा |
| ३३ | १२ | दूरगामी | दूरगामी |
| " | " | व्यक्ताः | व्यक्तेः |
| ४५ | २५ | स्वस्वरूपस्य | स्वस्वरूपस्य |
| ४५ | २७ | निसरण | निःसरण |
| ४६ | १६ | रित्या | रीत्या |
| ४७ | ६ | एतमत | एतन्मत |
| ४८ | ६ | सन्धेयम् | सन्धेयम् |
| ४८ | ११ | वेदेभ्य | वेदेभ्य |
| " | १७ | मृदुपाद्या | मृदुपादा |
| " | २३ | व्यपाश्रया | व्यपाश्रयाः |
| " | २६ | यावद्द्रव्यव | यावत्द्रव्यव्यव |
| ५० | ०६ | वस्तुतः | वस्तुतः |
| " | ०० | न्यश्यति | न्यत्पश्यति |
| " | ०० | विनानी | विजानी |
| ५० | २५ | पदा | पादा |
| ५३ | ३ | रिसति | पिसति |
| ५४ | २७ | धृते | घृते |
| " | २६ | कस्य | कस्य |
| ५६ | २६ | घटा | घडा |
| " | २४ | माहि | मान्हि |

प्रमादस्या तिलर्घयस्त्वेन सूक्ष्म दृष्ट्याऽपि दर्शने शिष्यन्त एवाशुद्धयः
किञ्च यन्त्रालपा घातादि दोषाणां जागरुकता इत्यत इतः परं स्वयमपि
संशोभ्या मत्सरतां विहायेति प्रार्थयते ।

सप्रश्रयप्रणतः



श्राद्धकाशिकास्य विषयाणां निर्घण्टपत्रम् ॥

पृष्ठाङ्काः पङ्क्ताङ्काः

पृष्ठाङ्काः पङ्क्ताङ्काः

| | | |
|--|----|----|
| मङ्गलाचरणम् | १ | १ |
| ग्रन्थकर्तृवंशकीर्तनम् । | १ | ८ |
| अपरपक्षनिर्णयः | १ | १५ |
| कृत्यविशेषशुक्लकृष्ण
निर्णयः । | ३ | ६ |
| पक्षश्राद्धस्यनित्यकाम्यत्वे । | ३ | १३ |
| श्राद्धाधिकरणत्वेनदिनानि | ४ | १२ |
| एकपार्वणादिनिर्णयः । | ५ | ८ |
| पितृपक्षस्यषोडशदिना
लक्षकत्वम् । | ७ | २२ |
| श्राद्धङ्गिन्नामेति । | ८ | १४ |
| प्रतिपदिद्वौहित्यश्राद्धनिर्णयः । | १० | २४ |
| चतुर्थ्युपर्यपरपक्षनिर्णयः । | ११ | १८ |
| ब्राह्मणनिमन्त्रणादिनिर्णयः । | १२ | ११ |
| ब्रह्मचारिनिमन्त्रणेवि० । | १३ | १ |
| पितृपक्षेऋताहाधिक्यम् । | १३ | ६ |
| पितृपक्षेपौर्णमास्यामृत
स्यश्राद्धनिर्णयः । | १३ | २२ |
| निमन्त्रणे दैवपूर्वमुत्तपि
तृपूर्वम् । | १४ | ८ |
| स्नातकनिमन्त्रणे विशेषः । | १४ | २० |
| यतिनोनिमन्त्रणे विशेषः । | १४ | २४ |
| दक्षिणायामनधिकारनि० । | १७ | ५ |
| आश्विनरहितस्यनिमन्त्र
णनिषेधः । | १७ | १० |
| गृहस्थादीन्निमन्त्रयेत् | १७ | १६ |
| साधुब्राह्मणलक्षणम् | १८ | ३ |
| श्रोत्रियलक्षणम् | १८ | ८ |
| वृद्धब्राह्मणस्वरूपम् | १८ | १३ |
| स्वकर्मस्थलक्षणम् | १८ | १८ |
| शिष्यमातुलादीन्पनि-
मन्त्रयेत् । | १८ | ३ |

| | | |
|--|----|----|
| निषिद्धब्राह्मणानाह । | १८ | २० |
| अनिन्द्यामन्त्रेणापक्रमणम् | २० | २१ |
| निमन्त्रितोन्यदन्नगृह
णीयात् । | २१ | १ |
| नापिकुत्रभोक्तव्यम् | २१ | ४ |
| स्नाताचान्तेनभोक्तव्यम् | २१ | १० |
| श्राद्धकर्तृवर्जनम् | २१ | १८ |
| श्राद्धेमण्डलविधिः । | २२ | ११ |
| ब्राह्मणोपवेशनेदिङ्नि
यमः । | २२ | १८ |
| दैर्घ्यपञ्चेब्राह्मणसंख्या | २३ | ११ |
| श्राद्धेब्राह्मणविस्तारनि
षेधः । | २३ | २० |
| मातामहानामपिश्राद्धे
आवश्यकता । | २४ | २० |
| सङ्कल्पवाक्येनामगोत्र
योरावश्यकता । | २५ | १२ |
| वाक्ये विभक्तिनियमः | २५ | २३ |
| अपरपक्षेऽवश्यं श्राद्धंशा
केनापिनपरित्यजेत् । | २७ | १८ |
| श्राद्धेऋतकादिनिर्णयः । | २८ | ७ |
| श्राद्धकर्तृनियमः । | २८ | ४ |
| गृहस्थाएवपाकेऽधिकारः | ३० | १ |
| तिलकेविचारः । | ३० | ११ |
| भोक्तुर्नियमाः । | ३१ | १२ |
| काण्डानुसमयपदार्थानु
समयोर्विचारः । | ३२ | ६ |
| नीवीबन्धनविवेकः । | ३२ | २० |
| कुशानांसमूलनिर्मल्यो
र्विवेकः । | ३४ | ५ |
| ब्राह्मणप्रश्नविचारः । | ३५ | ३ |
| पार्वणानुक्रमणिका । | ३५ | १० |

| पृ० | पं० | पृ० | पं० |
|---|-----|--------------------------------------|-----|
| आधारभेदिप्रक्षणम् । ३५ | १७ | पात्रालम्भनम् ५८ | ३ |
| आसनेषुदर्भास्तरणम् । ३६ | १ | पात्रेष्वङ्गनिर्देशनम् । ६० | १२ |
| आसनदानेस्वधानिषेधः । ३६ | २१ | पात्रे तिलप्रक्षेपनिषेधः । ६० | २० |
| विश्वेदेवावाहनार्घदानेवि० ३७ | ६ | एकहस्तेनपरिवेषणनिषे० ६१ | ५ |
| विश्वेदेवानाह । ३८ | २० | नखच्युतघृतादिनिषेधः । ६१ | १८ |
| पितृणामावाहनार्घदानेवि० ४० | १ | सूक्तपाठादि । ७० | १६ |
| तिलप्रक्षेपमन्त्रे ऊहवि० ४० | १६ | जपेसव्यापसव्यविचारः । ७२ | २१ |
| अर्घपात्रनिर्णयः । ४१ | ८ | भोजनविधिः । ७३ | ३ |
| अर्घपवित्रविचारः । ४२ | १ | विकरविधिः । ७४ | २१ |
| अर्घेतिलयवयोर्वि० । ४३ | १ | विकीर्याचामेत् । ७६ | ८ |
| अर्घपात्राण्याह । ४३ | ११ | चुलुकादिदानजपे० । ७६ | १३ |
| अर्घदानेतन्त्राभावः । ४५ | १ | हस्तिप्रश्नः । ७७ | १ |
| विश्वेदेवार्घविचारः । ४५ | ८ | वमनेपुनः पाकविधिः । ७७ | ७ |
| अर्घेस्वधानिषेधः । ४६ | ३ | शेषान्नप्रश्नम् । ७८ | १८ |
| वैश्वदेवेपादप्रभृतिमूर्द्धा
न्तम् । ४६ | ४ | उलमुकविधिः । ७८ | ४ |
| पैतृकेशिरःप्रभृतिपादान्तम् ४६ | १२ | अवनेजनपिण्डदाने । ७८ | २१ |
| अर्घपात्रन्युद्धीकरणम् । ४६ | १७ | परिवेषणे सव्यापसव्यवि
चारः । ६२ | १० |
| अर्घपात्रे विशेषः । ४७ | ३ | भक्षणीयान्नानि । ६२ | १७ |
| न्युद्धम्यात्रचालनीयम् ४७ | १८ | अन्नदानेतन्त्रातन्त्रविवेकः ६३ | १८ |
| गन्धादिदानेविचारः । ४८ | ४ | सङ्कल्पोदकहस्ते नदेयम् ६४ | १३ |
| अथधूपाः ४८ | १० | मांसप्रशंसा ६५ | ६ |
| निषिद्धधूपाः । ४८ | १७ | आदुधमांसविवेकः । ६५ | २१ |
| अथदीपाः । ४८ | १८ | आदुधातिरिक्तमांसभक्ष
णनिषेधः । ६८ | २० |
| वस्त्राणि । ४८ | १ | कुशास्तरणविधिः । ८१ | २ |
| अथगन्धाः । ४८ | २२ | एकहस्तद्विहस्तविधिः । ८१ | ४ |
| पुष्पाणि । ४८ | २४ | पिण्डान्नशब्दयोर्भेदः ८१ | ६ |
| अग्नौकरणविचारः । ५२ | १ | पिण्डपंक्तिक्रमः । ८१ | १६ |
| अग्नौकरणपाकेविशेषः । ५२ | १७ | पिण्डप्रमाणम् । ८२ | ८ |
| साम्निकेतुविशेषः । ५३ | १४ | कुशैरेवपिण्डप्रदानम् । ८२ | १६ |
| अग्नौक० सव्यापसव्यवि० ५३ | १८ | आचान्तेषुपिण्डदा० । ८२ | २३ |
| श्रीतस्मार्ताग्निविषयेवि० ५४ | १० | लेपभुजांकुतलेपप्रदानम् । ८३ | ४ |
| सांकल्पिकेविशेषः । ५५ | २४ | हस्तेउदकादिप्रदानम् । ८३ | १५ |
| हस्तेग्निकरणम् । ५६ | ५ | तच्चसव्येनकार्यम् । ८४ | १ |
| पात्रेहुतशेषप्रदानम् । ५८ | ३ | आत्तमनसाश्वासानुरोधः । ८४ | ८ |
| परिवेषणविधिः । ५८ | १२ | | |

| पृ० | पं० | पृ० | पं० |
|------------------------------|-----|-----|-------------------------------------|
| अवनेजनेविशेषः । | ८४ | १६ | एकोद्दिष्टे नामान्नविधिः १०१ १० |
| षडञ्जलयः । | ८५ | ३ | आमहेमविधिः । १०१ १२ |
| पिण्डे मूत्रप्रदानम् । | ८५ | ८ | अष्टाङ्गत्वम् । १०१ १८ |
| पिण्डे जलधारादानम् । | ८५ | १७ | स्वधावाचनमीमांसा । १०२ ५ |
| स्तरणकुशानामग्नौ प्रक्षेपः । | ८५ | २४ | क्षयाहे पार्वणौ कोद्दिष्ट |
| अक्षय्योदके तन्त्राभावः । | ८६ | ५ | मीमांसा । १०२ १४ |
| आशोः प्रार्थनम् । | ८६ | ८ | श्राद्धे नित्यकर्मविवेकः । १०५ ११ |
| स्वधावाचनम् । | ८७ | ३ | सपिण्डीकरणम् । १०६ |
| दक्षिणादानविवेकः । | ८८ | ३ | कालनियमः । १०६ १६ |
| दक्षिणादाने सव्यापसव्य | ८८ | १ | आहितानाहिताग्निविष |
| विवेकः | | | ये कालनियमः । १०८ २ |
| पात्रचालनम् । | ८० | १० | हडावपकर्षः । १०८ १७ |
| विसर्जनम् । | ८१ | २ | प्रेतार्घपात्रकरणम् ११० १८ |
| तांबूलादिदानम् । | ८१ | ८ | व्युत्क्रममृतानां सपिण्ड |
| आचमनविधिः । | ८१ | १३ | नविधिः । १११ २४ |
| उच्छिष्टमार्जनम् । | ८१ | २१ | अपुत्रस्य सपिण्डीकरणे । ११२ ११ |
| पिण्डप्रतिपत्तिः । | ८२ | १८ | प्रेतसन्देहः । ११३ ८ |
| विकिरप्रतिपत्तिः । | ८३ | ८ | सहगमने पत्न्या सपिण्ड |
| नित्यश्राद्धम् । | ८३ | १७ | नविधिः । ११४ १२१ |
| शेषभोजनम् | ८४ | ४ | पतिपुत्ररहितायाः |
| श्राद्धकर्तुः नक्तपरगृह | ८५ | ८ | सपिण्डीकरणम् । ११७ ८ |
| भोजननिषेधः । | | | सहगमने पाकविधिः ११७ २३ |
| श्राद्धभोक्तुर्नियमाः । | ८५ | १७ | स्त्रियाः गोत्रविषये विवेकः । ११८ ८ |
| अथैकोद्दिष्टम् । | ८६ | १२ | पत्नीकर्तृक सपिण्डने । ११८ १२ |
| प्रकृतिश्राद्धनियमोप | ८६ | ३ | असंस्कृतपुत्रविषये । ११८ १ |
| देशः । | | | सपिण्डीकृते पुनर्मासिका |
| मघादौ पिण्डनिषेधः । | ८७ | ३ | वृत्तिः । ११८ १५ |
| प्रेतैकोद्दिष्टे विशेषः । | ८७ | १० | षोडशश्राद्धे पार्वणौ को |
| तौर्यश्राद्धम् । | ८८ | ४ | द्दिष्टम् । ११८ १८ |
| विवाहाद्यनन्तरम् पिण्ड | ८८ | १३ | सपिण्डनानन्तरम् प्रेतपि |
| निषेधः । | | | दशब्दविवेकः । १२० १५ |
| महालयादौ प्रतिप्रसवः । | ८८ | १७ | अग्नौ करणमाह । १२० २१ |
| आमश्राद्धमीमांसा । | ८८ | १८ | द्विवर्षपर्यन्तं श्राद्धम् |
| नवश्राद्धम् । | १०० | ३ | शुद्धम् । १२१ ८ |
| पवित्रलक्षणम् । | १०० | १८ | श्राद्धान्नभोक्तुः प्रायश्चि |
| | | | त्तम् । १२१ १३ |

| पृ० | पं० | |
|---|--------|--|
| मृताहनिमासिकाव्दश्रा
दधम् । | १२२ २१ | |
| एकादशाहेविशेषः । | १२३ ५ | |
| षोडशश्राद्धधानाकालम् । | १२३ १८ | |
| आशीचमध्येपिआद्यम् । | १२४ ८ | |
| दशमपिंडेविशेषः । | १२५ १७ | |
| आभ्युदयकश्राद्धम् । | १२६ ४ | |
| वृद्धिश्राद्धनिमित्तानि । | १२६ ८ | |
| वृद्धीश्राद्धतृतेयवि० । | १२७ ७ | |
| मातृश्राद्धमावश्यकम् । | १२७ १८ | |
| मातृणाञ्जमानि । | १२७ २१ | |
| घृतमातृस्थापनम् । | १२८ २० | |
| पूर्वाह्नादिकालः । | १२८ १ | |
| पित्र्यमन्त्रवर्जञ्जपः । | १३० ६ | |
| ऋजवीदर्भाः । | १३१ १ | |
| वृद्धिश्राद्धमदैवं सदैवंवा । | १३१ ७ | |
| यवैस्त्रिलार्थाः । | १३१ २२ | |
| तृप्तिप्रश्नः । | १३३ १४ | |
| आमश्राद्धे पिंडदानादि
प्रकारः । | १३२ २२ | |
| दधिवदराक्षतैः पिंडो । | १३३ १३ | |
| पिंडहीनश्राद्धे । | १३४ ३ | |
| बहुमातृकविषये । | १३५ १ | |
| एकेप्रपितामहानुपूर्वम् । | १३५ ८ | |
| लेखाकरणे पिंडपातेविशे० । | १३५ २१ | |
| नान्दीमुखपेतावाहनम् । | १३६ २२ | |
| नान्दीमुखत्वेनकीर्तनम् । | १३७ ८ | |
| जीवन्मातृपितृविषये । | १३७ २१ | |
| जीवत्पितृकादेव वृद्धिश्रा
द्धा वधिकारः । | १३८ १ | |
| अन्नव्यादकेविभक्ति
निर्ण० । | १३८ ८ | |
| वृद्धीनवदैवत्यहादशदैव
त्यंवा । | १४१ १६ | |
| स्वधावाचननिषेधः । | १४१ १६ | |

| पृ० | पं० | |
|---|--------|--|
| युग्मानाशयेत् । | १४२ २ | |
| दक्षिणायांविशेषः । | १४२ २० | |
| जीवत्पितृकविषयेसगदे
हनिरासः । | १४३ २२ | |
| द्वितीयविवाहेस्वकर्तृक
नान्दीश्राद्धम् । | १४४ ११ | |
| अथतृप्तिविचारः । | १४५ १० | |
| धान्यादिभिर्मासन्तृप्तिः । | १४५ १६ | |
| अश्राद्धार्हाणिधान्यादीनि । | १४६ २४ | |
| ग्राम्याभवेन्नारण्याभिः । | १४८ ८ | |
| शकादिभिर्वा । | १४८ १८ | |
| सर्वाभवेन्नृद्धिः । | १४८ ११ | |
| निषिद्धफलानि । | १४८ १६ | |
| शकानि । | १४८ २१ | |
| रागखांडवलक्षणम् । | १५१ २ | |
| फलानि । | १५१ १२ | |
| निषिद्धफलानि । | १५४ ४ | |
| संस्कारद्रव्याणि । | १५५ ३ | |
| यागार्थच्छागादिहिंसनम् । | १५७ १ | |
| मत्स्यैर्मासद्वयन्तृप्तिः । | १६० २० | |
| मत्स्यानाह । | १६१ २३ | |
| हारिणेनमासत्रम् । | १६२ १२ | |
| अरण्यमेषमासेनमास
चतुष्टयम् । | १६३ १६ | |
| पक्षिमासेनपञ्चमासम् । | १६४ १० | |
| छागमासेनषाणमासिकम् । | १६६ १४ | |
| सप्तक्रीमेण । | १६६ २१ | |
| वराहमासेनाष्टमासं । | १६७ ४ | |
| नवमेषमासेन । | १६७ १८ | |
| दशमाहिषमासेन । | १६८ ३ | |
| चित्रमृगमासेनैकादश । | १६८ २१ | |
| दशमाहिषमासेन । | १६८ ३ | |
| गव्यपयसासंवत्सरं
प्रायसेनवा । | १७० ८ | |
| वादर्ध्र्निनसमासेनद्वाद
शाब्दः । | १७१ ५ | |

पृष्ठाङ्काः पङ्क्ताङ्काः

पृष्ठाङ्काः पङ्क्ताङ्काः

अथाक्षय्यतृप्तिः १७२ ३

खड्गादिमांसैः । १७३ ८

आद्धे प्रशस्तवस्तूनि १७३ ५

वर्षासुमघाशाद्धविचारः १७३ १३

गजच्छायायोगेशाहभोज
नेचविचारः । १७५ १

पंक्तिपावनब्राह्मणाः । १७६ १

शास्त्राध्यायिनः । १७६ ८

षडङ्गवेदिनः । १७६ १३

ज्येष्ठसामगः । १७७ १

गायत्रीसारमात्रोपे । १७७ ६

पञ्चाग्निलक्षणम् । १७७ १७

स्नातकः । १७८ १

त्रिणाचिकेतः । १७८ १०

त्रिमधुः । १७८ १

त्रिसुपर्णी १७८ ६

धर्मशास्त्रपाठः । १७८ १५

ब्राह्मोठापुत्रः । १७८ १८

व्याकरणवेत्तायाज्ञिकश्च । १८० ८

पूर्वाज्ञाभावे वेदविदमे
कविप्रम् । १८१ १३

अनुकल्पः । १८२

वेदविदांप्रशंसा । १८२ १४

वर्ण्यब्राह्मणाः । १८२ १८

पापरोगिणः । १८४ २१

अथकास्यानि १८४ १४

व्यतीपातलक्षणम् । १८७ २०

प्रतिपदिस्त्रीलाभः । १८८ १४

सन्धासीपुत्रम्पति । १८८ १०

जीवत्पितृकम्पति । १८८ १२

द्वितीयायाङ्गन्यालोभः । १८० १४

तृतीयायांभ्रूवादिना० । १८१ ५

चतुर्थ्यामजादिलाभः । १८१ ८५

मातुः आङ्गमृथक् । १८१ १८

पञ्चम्यापुत्रादिलाभः । १८२ ५

पर्वणिक्षयाहविचा० । १८२ १६

षष्ठाद्यतृप्तिः । १८३ १

सप्तम्यांकाषिः । १८३ १०

वाणिज्यमष्टम्याम् । १८३ १८

सूतकान्तेअपरपक्षे० । १८४ २

नवम्यामेकशफादिला० १८४ ११

जीवत्पितृकस्यमातुः
आहवि० । १८४ १५

दशम्याग्निशफला० । १८६ ५

एकदिनेपार्वणिकोद्दिष्ट
व्यवस्था । १८६ १४

एकपाकनिषेधः । १८७ १

एकादश्यान्दास्यादिला० १८७ ३

अपुत्रादीनामेकोद्दिष्टम् । १८७ ७

द्वादश्यान्धनादिला० । १८८ ३

हयोर्मृताहैक्येपाकवि० १८८ १२

त्रयोदश्यांजातिश्चैष्टम् १८८ २१

अनुगमनमृतानांस्मृता
हे आद्धन्नवेति । १८८ ७

अनेकस्त्रगादिभर्तृसह
गमने २०० १४

शस्त्रहतस्यचतुर्दश्याम् । २०१ १

शस्त्रहतस्यपार्वणिको
द्दिष्टम् । २०१ २०

रणेहतानाञ्चतुर्दश्याम्
प्रतिप्रसवः । २०२ ६

चतुर्दशीआद्धस्यप्रति
प्रसवः । २०२ १५

अमावास्यायांर्वआद्ध
फलानि० । २०४ १

अमावास्यानिरुक्तिः । २०४ ७

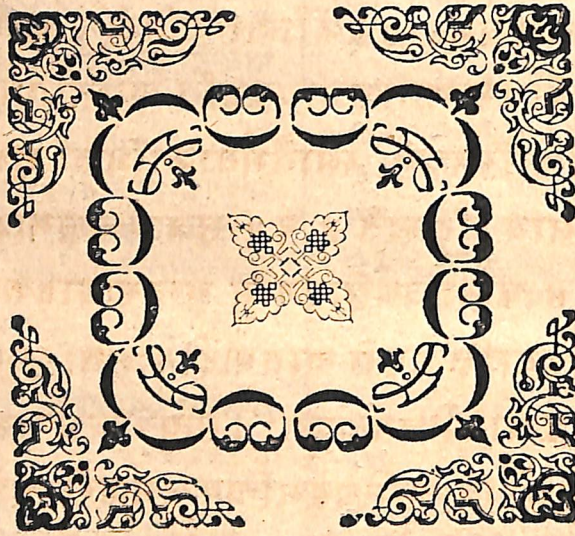
पितृपक्षेनचेद्दीपमालि
कायांदेयम् । २०४ १३

विधवायाःपार्वणिकधिकारः २०४ १६

विधवायाः धवक्षयाहे
पार्वणनिषेधः । २०५ ८

अन्यकर्तुः प्रार्थनापद्या
नीति । शम् २०५ १

इति श्री गौड़वंशावतंसेन घनश्याम शर्मणा मात्मजेन श्री
प्रभुदत्तशर्मणा श्राद्ध काशिकायाः सूचन पत्रं विरच्यमुद्रितम् ।



कात्यायन विरचितं श्राद्धसूत्रम् ।

काशिकाव्याख्यासंवलितम् ।

प्रथमाकण्डिका ।

श्रीगणेशाय नमः ।

यस्य प्रसादपयसा क्रतुपादपास्तं कात्यायनं मुनिवरं शिरसा-
भिवन्दे ॥ सिक्ताःफलन्ति यजुषामिहयाजकानां स्वर्गोद्भवानि वि-
विधानि फलान्यजस्रम् ॥ १ ॥ कर्कोऽव्याख्यदिदं (१) गभीरवचनैः सूत्रं
यतोस्मादभूद्दूर्वोद्धतततोहलायुधद्वति व्याख्यातथाप्यस्फुटम् ॥
भूयोपिप्रतिषेधकारिवचनैः स्मार्तैर्मयाकाशिका सूत्रस्योपरिसंश-
यौघतिमिरध्वंसाय तंतन्यते ॥ २ ॥ सूत्रार्थव्यञ्जनाद्वाक्यैर्विशेषो-
क्तिप्रकाशनात् ॥ अस्यान्वर्थमिदं नाम ग्रन्थस्यश्राद्धकाशिका ॥ ३ ॥
नित्यानन्दद्वतीहयान्निकवरो जातस्तदीयः सुतः स्मार्ताग्नौविदि-
तक्रियोतिमुख इत्याख्योजगत्यद्भुतः ॥ तत्पुत्रोप्यभवत्स्मृतिज्ञचतुरः
शास्त्रेष्वधीतौश्रुतौ विष्णुर्मिश्रद्वमन्निबन्धमकरोत्कृष्णः कृतीतत्सु-
तः ॥ ४ ॥ तत्रपूर्वां पौर्णमासीमुत्तरांबोपवसेदित्यादिना श्रौत-
कर्माण्युपदिश्य अथातोऽष्टस्थालीपाकानामित्यादिना स्मा-
र्तान्यथाख्यायावशिष्टम् श्राद्धकर्मवक्तव्यमिति सूत्रमारभते ॥

* अपरपक्षेश्राद्धकुर्वीत ॥ १ ॥

॥ अपरपक्षः । कृष्णपक्षः चांद्रमासेशुक्लकृष्णपक्षयोः पूर्वा-
परत्वसंभवात् ॥ श्राद्धमितिपिंडप्रदानंकर्म । कुर्वीतेतिविधा-

(१) गभीर इति खपुस्तक पाठः निम्नं गभीरं गभीर मित्यमरोक्तिः

यत्कंपदं ननुविपदमिदं सूत्रं तत्रपदत्रयेऽप्येकत्वमनुपपन्नं तथाहि
 प्रौष्ठपद्याअपरपक्षे मासिमासिचैवमिति शौनकः ॥ अनेनवि-
 धिनाश्राद्धं त्रिरब्दस्येहनिर्वपेत् । हेमंतग्रीष्मवर्षासु पांच याज्ञि-
 यमन्वहमिति मनुः ॥ कन्याकुम्भवृषस्येर्के कृष्णपक्षेषु सर्वदेति
 मात्स्यं । यत्तु वचनेसर्वापरपक्षेषु कर्तव्यतोपदेशात् ॥ तथा-
 श्वयुकृष्णपक्षे तु श्राद्धं कुर्याद्विनेदिनइतिवचनात् प्रतिदिनकर्तव्य-
 तथा श्राद्धानीतिवक्तुमुचितत्वात् । ब्राह्मणादि चातुर्वर्ण्यापेक्षया
 कुर्वीरन्निति वक्तुमौचित्याच्चेति अतश्चापरपक्षेषु श्राद्धानिकुर्वीर-
 न्नितिसूत्रम्प्रणेतव्यम् अत्रोच्यते अपरपक्षेष्विति बहुत्वमुपपन्नमि-
 तियदुक्तं तन्न तथासति सर्वसामान्येनास्यापरपक्षस्यैविशिष्ट्या-
 नुपपत्तेः । तथाच पुराणसमुच्चये । पक्षैः शुक्लपदैः षष्ठां षट्पक्षा-
 अपरेस्मृताः । तेषां पुण्यतमः पक्षः आषाढ्याः पंचमस्तु यद्वत्यादि ।
 यदपि श्राद्धानीतिवक्तुमुचितमिति तन्न तथासत्येकोद्दिष्ट पार्वण
 नित्यश्राद्धादीनि प्राप्नुयुस्तन्माभूदिति पार्वणरूपत्वेनैक्यमुक्तम् ॥
 तथाचोक्तम् । कन्यागते सवितरि दिनानि दश पञ्चच ॥ पार्वणे-
 नैवविधिना तत्रश्राद्धंविधीयतइति नन्वेतदैक्ये पार्वणत्वे चतुर्द-
 श्यादौ पार्वणादिनिषेधस्य कागतिरिति चेन्न तस्यश्राद्ध पक्षव्यति-
 रिक्तश्राद्धेषु त्रिभागादिपक्षविभागेषु चतुर्दश्यां पार्वण निषेधस्यप-
 र्यवसानात् मनुरपि कृष्णपक्षे दशस्यादौ वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ।
 श्राद्धे प्रशस्तास्तिथयो यथैतान्तथेतराः । पक्षश्राद्धे तु कृष्णाजिनिः
 नभस्यस्यापरेपक्षे श्राद्धं कार्यं दिनेदिने नैव नन्दादिवर्जं स्यान्नैववर्ज्या
 चतुर्दशीति यदपि चातुर्वर्ण्यापेक्षया कुर्वीरन्निति तदपिन तथास-
 त्युक्तानधिकृतानामधिकारः स्यात्तन्माभूदितिकुर्वीतेत्यधि कारि

विशेषणेनैक्यमुक्तम् । ततश्च सर्वापरपक्षेषु हेमन्तग्रीष्मवर्षापरपक्षा-
 स्तेषु कन्याकुम्भवृषस्थेर्केत्रयः तत्रापि भाद्रपदापरपक्षः पुण्यतमः
 कालस्तत्र पार्वणमधिकारीकुर्यादितिसिद्धम् । एवं सति कालान्तरा
 नुपदेशादमावास्यादौ श्राद्धन्नस्यादिति चेत् । अपरपक्षशब्दस्योप-
 ब्रक्षणतया तत्संग्रहोपपत्तेः । नन्वेवमपि कृष्णपक्षद्वतिवाच्येऽपर-
 पक्षद्वतिगौरवं किमर्थम् ॥ पितृकर्मणि प्रतिज्ञादौ चान्द्रमसोच्चार-
 णज्ञापनार्थमित्यदोषः तथाचोक्तं । आन्दिके पितृकृत्ये च मासश्चा-
 न्द्रः प्रशस्यते । तथा सौरमासो विवाहादौ यज्ञादौ सावनः स्मृतः ।
 पार्वणे चाष्टकाश्राद्धे चान्द्रो मासो महालय इति । बृहस्पतिरपि रवे-
 रभ्युदये मानं चन्द्रस्य पितृकर्मणि । तथा तथैव पितृकृत्यादौ मास-
 श्चान्द्रमसः स्मृतः । अपि च विवाहादौ स्मृतः सौरो यज्ञादौ सावनः
 स्मृतः शेषकर्मसु चान्द्रः स्यादेष मासविधिः स्मृत इति । अत्रैत-
 द्धिन्यते । किम्पक्षश्राद्धं नित्यं काम्यं वेति । तत्र काम्यमित्येके ।
 नाश्रन्ति पितरश्चेति कृत्वामनसियो नरः । पक्षश्राद्धं न कुरुते त-
 स्य रक्तम्पि बन्तिते इत्यकरणे प्रत्यवायश्रवणात् । शाकेनापि नापर-
 पक्षमतिक्रामेदिति सूत्राच्च नित्यमित्यन्ये । नोभयं । पितृगाथा स-
 दैवाव गीयते ब्रह्मवादिभिः ॥ कदानः संततावग्यः सकश्चि
 ज्जविता सुतः । पितृपक्षं सदा श्राद्धं पूर्णपक्षं प्रदास्यतीत्यादिना
 तत्प्रतीक्षामहे सर्वे सुवृष्टिमिव कर्षकः । काम्यदायी भवेत्कश्चि
 त्कुले स्मच्छ्राद्धदोनर इत्यादिना काम्यत्वस्य प्रतीतिः । तस्मादु-
 भयरूपत्वं युक्तम् । तत्र नित्यकाम्ययोः सङ्कटे काम्यस्य बलवत्त्वा-
 न्नित्यस्य सङ्गात् सिध्यतीति न्यायाच्च काम्यानुष्ठानेनैव नित्यस्य अपि-
 सिद्धिः । तथा च सङ्ग्रहकृत् । काम्यं तत्रेण नित्यस्य तत्त्वश्राद्ध-

सा सिध्यतीति । एवं च सतिकाय्ये सर्वांगोपसंहारनियमाङ्गर
 णी मघा युगादि रविवारादि निषिद्धकालेपि पिण्डदानं महा
 लयेभवतीति तथाचपादौ । वारेपातेचसंक्रातौयुगादौचमहालये
 तर्पणेपिण्डदानेच तीर्थेदोषोनविद्यते तर्पणेसिलानांच ब्रह्माण्डेपि
 ऋक्षयोगादिविद्धेपि तद्दिनेपिण्डपातनं प्रचेताअपि । आभ्युद
 यिके संप्राप्ते मघावापित्रयोदशी ॥ क्षयाहेचापिसंप्राप्ते पिण्डनि
 र्वपणंस्मृतं वृद्धमनुरपि महालये चतुर्दश्यां मघायां पुत्रवान-
 पि पिण्डनिर्वपणं कुर्याद्यस्यशस्त्रहतःपिता कृष्णपक्षेचतुर्दश्यां
 मघायुक्तं दिनं यदि पिण्डनिर्वपणंकुर्यात् तृप्त्यर्थं श स्त्रघातिनः ।
 अपिच तीर्थेसांवत्सरेश्राद्धे पितृपक्षे महालये पिण्डदानं प्रकुर्व-
 तियुगादिभरणीमघे ॥ तथा महालयेक्षयाहेच दर्शपुत्रस्यजन्मनि
 तीर्थेषु निर्वपेत् पिण्डान् रविवारादिकेष्वपीति नन्वेवं भरणी म-
 घायुगादि रविवारादिषु पिण्डनिषेधकानि अयने विषुवेचैव
 मघायांच युगादिषु श्राद्धकुर्वीतयत्नेनपिण्डनिर्वपणंविना म-
 घायुगादौ भरण्यामयने विषुवेतथा पिण्डदानन्नकुर्वीत यदीक-
 त्सुतजीवितं यास्यंवापैतृकंवापि पितृपक्षेविशेषतः । तत्संक-
 ल्पनंकुर्यात् पितृणांपुष्टिदःसदा मन्वादिश्च युगादिश्च मघाच-
 भरणीतथा श्राद्धंतत्प्रकुर्वीत पिण्डनिर्वपणंविना तथामघाभर-
 ण्याञ्च त्रयोदश्यांविशेषतः प्रौष्ठपदस्यद्वादश्यां मघार्चं निपतेत्
 यदि । तत्संकल्पनं श्राद्धंपिण्डनिर्वापवर्जितं । मघायुगादौ-
 भरण्याम् संक्रातौ रविवासरे ॥ पिण्डदानम् प्रकुर्वीत यदीक-
 वितान्सुतान् सुतश्च मघायां पिण्डदानेन ज्येष्ठपुत्रोविनश्यति
 कनीयांस्तु त्रयोदश्याम् क्षयाहेभ्युदयाहते । मघायुगादौभरण्यां

श्राद्धं कुर्यादतद्रितः पिण्डदानं न कुर्वीत तच्च स्यात्क्षयवासरे ॥
 वैशाखस्राष्टमीयायां नवम्यां कार्तिकस्य च श्राद्धं संक्रांतिवत् कुर्यात्
 त् पिण्डनिर्वपणम्विना युगादौ पितृनक्षत्रे तथा मन्वन्तरादिषु । अ-
 र्धपिण्डं न कुर्वीत वैष्णवं श्राद्धमाचरेदित्यादीनि वाक्यान्त्यनर्थकानि
 स्युरिति चेत्सत्यं एतानि वाक्यानि तिथिवारनक्षत्रसंक्राति युगादिनि-
 मित्तक्रियमाणेषु काम्यश्राद्धेषु पिण्डदानं निषेधन्ति । न पुनः पक्ष-
 श्राद्धतिथ्याश्रयादिनिमित्तश्राद्धेष्वित्यविरोधः । अन्यथा वारेपाते च
 सङ्क्रान्तावित्यादिभिर्विरोधात् (१) अथ पार्वणेनैव विधिनेत्युक्तं ॥
 तत्रैकम्पार्वणं किं वा द्विपार्वणम् उत चतुःपार्वणञ्चेति पक्षश्राद्धे
 द्विपार्वणे कोहिष्टयोरप्राप्तत्वात् सर्वत्रापि पार्वणधर्मत्वात् त्रयाणां वि-
 हितत्वाच्चेति । तथा ह्येकपार्वणे मात्स्यं । ततः प्रभृतिसंक्रा-
 तावुपरागादिकर्मसु । द्विपिण्डमाचरेत् श्राद्धमेकोहिष्टं स्यते हनि ।
 प्रजापतिरपि । संक्रांतावुपरागे च वर्षोत्सवमहालये निर्वपेत्
 पिण्डवित्तयमिति प्राह प्रजापतिरिति । द्विपार्वणे तु कात्यायनः
 कर्षू समन्वितं मुक्ता तथा द्युश्राद्धं शोडशं प्रत्याब्धिकं विशेषेषु पिण्डा-
 स्युः षडिति स्थितिरिति । चतुः पार्वणे तु कात्यायनः । कुर्याद्वाद-
 शदैवत्यम् प्रेतपक्षे तु सर्वदा । यथा तीर्थंगयायाञ्च एषधर्मः सना-
 तनः । आदौ पिता ततो माता ततो मातामहस्तथा । मातामहस्त-
 तो दद्यात्प्रेतपक्षे तु सर्वदा ॥ सुमंतुः । पितृभ्यः प्रथमं दद्यान्मातृभ्य-

(१) किं श्राद्धं साग्निकस्यैवाधिकारः उत्तनिरग्निकस्यापीत्यत्र कर्त्ताचार्येण निर्णीतं अग्नौ
 करणरूपस्याग्न्याधिकरणत्वात् दुपसंहारेशाग्निकस्यैव शक्तिर्नैतरेषु नपैत्यग्नि-
 योहोमौ लौकिके ग्नौ विधीयत इति निषेधात् तत्र च दारसंग्रहपूर्वकं कर्मावसथाधानं तत्पू-
 र्विकाच्च कर्मान्तरे प्रवृत्तिरित्यतोऽपि नानग्निमतोऽधिकार इति यतूक्तं अग्न्यभावे तु विप्रस्य
 पाणवेवोपपादयेदिति तदप्युक्तावसथाभ्युदयिकविषयं अनग्निमतोऽपि श्राद्धे धि-

स्तदनन्तरम् ॥ ततोमातामहेभ्यश्चतत्पत्नीभास्तथैवच ॥ गया-
याञ्चतथातीर्थेप्रेतपक्षेत्रविशेषतः । कुर्याद्वादशद्वैवत्यमेकोहिष्टमतः
परं । एवंचनविप्रतिपत्तावुच्यते । तत्रैकपार्वणचतुःपार्वणयोर्थ-
थाक्रममाहनवमीविषयत्वेनपरिशेष्या द्विपार्वणमेवपक्षश्चाद्द्वेष्व-
वतिष्ठते । तथाच वृद्धयाज्ञवल्क्यः । पितापितामहश्चैवतथैवप्र-
पितामहः ॥ समीहन्तेषुतान्सर्वमाहपक्षेत्रविशेषतः ॥ भुञ्जन्ति-
विप्रकायेषुपितरोन्तर्हिताःसदा ॥ तस्माद्विप्रान्पितृन्विद्यात्पितृव-
त्तान्प्रपूजयेत् । द्विपार्वणम्प्रकर्त्तव्यंविनाश्राद्धंक्षयेहनि । पितरो-
यत्रपूज्यन्तेतत्रमातामहादयः ॥ अविशेषेणकर्त्तव्यंविशेषान्न-
रकम्प्रजेदितिऋष्यशृङ्गवचनात् । व्यासोपि ॥ पितृमातामहा
श्चैव द्विजश्चाद्देनतर्पयेदिति । पुलस्त्यः । मातुःपितरमारभ्य तयो-
मातामहास्मृताः । तेषांतु पितृवक्त्राद्वाङ्मयुर्दुहितृसूनवद्विति ।
स्कान्दे । पार्वणङ्कुरते यस्तुकेवलम् पितृहेतुतः । मातामह्य
न्नकुरुते पितृहासोपिजायत इति । सूत्रकारोपि । त्रींस्त्रीन्पि-
ण्डानिति । एकचतुःपार्वणेक्षयाहनवमीविषये । तथाचपारा-
शरः ॥ पितुर्गतस्य देवत्वमौरसस्य त्रिपौरुषम् । सर्वत्रानेकगो-
चाणा मेकस्यैवमृतेहनि ॥ नवस्यान्तु वृद्धयोज्ञवल्क्यः । गयायां
पुष्करेचैवतथैवान्वष्टकासुच ॥ पितृमुख्येनकर्त्तव्यम् पार्वणानाञ्च-

कारइत्येवं विधाप्रसिद्धिस्तुइहवटेयक्षो वसतोतिवदननिश्चितेतिनानग्निमतः आह्ना-
धिकारेप्रमाणमिति तदिदमनुपन्नं नित्यंनैमित्तिकेषुहि यथाशक्रुयात्तथाकुर्या-
दितिन्यायात्सर्वांगोपहारा शक्तस्याप्यधिकारात् अग्न्यभावेतुपाणीहोविधानात्
अस्यविधानस्यचोक्तविषयविशेषव्यवस्थायाः प्रमाणशून्यत्वात् संतिचाग्रौकरण-
हितानिआह्नानितेष्वधिकारानिवृत्तेश्च स्त्रीशूद्रानुषनीतानामपिआहोपदेशात्साग्नि-
कानग्निर्कोभयाधिकारेणविहितंआह्नमिति सिद्धम् ॥

तुष्टयमिति । नन्वेवमन्वष्टकासु नवभिः पिण्डैः श्राद्धमुदाह-
 तम् ॥ पित्रादि मातृमध्यन्तु न्ततोमातामहान्तकमित्यादि वच-
 नविहितम् नवदैवत्यम्बिरुच्येत । मैवं । अन्वष्टकास्विति बहुत्व-
 स्यत्तिच्चेपर्यवसानात् साग्निककर्तृकन्नवदैवत्यमन्वष्टकात्वये त-
 द्वचनम्बिहितुमर्हति नापरपक्षनवमीविषयम् । अतोद्वादशदैव-
 त्यमपरपक्षनवमीविषयमिति सिद्धम् ॥ अन्यथा नवदैवत्ये मातृ-
 णां पृथक्त्वेन मातामह्यादौ नामपृथक्त्वेनाङ्गजरातीयापत्तेः ।
 तथाच पुराणसमुच्चये । सर्वासामेवमातृणां श्राद्धं कन्यागते-
 रवौ ॥ नवम्याञ्च प्रदातव्यम् ब्रह्मलब्धवरायतः । पितृमा-
 तृकुलेनार्यो याः काश्चित्प्रसृतास्त्रियः ॥ श्राद्धार्हं मातरो ज्ञेया
 स्तासां श्राद्धम् प्रदापयेत् । दृष्टौ तु मातृपूर्वं हि श्राद्धं कुर्वीत बु-
 धिमान् । अन्वष्टकासु सर्वासु पितृपूर्वं समाचरेत् ॥ तामि-
 स्रपक्षे नवमी यापुण्यातु नभस्यके । चत्वारः पार्वणाः कार्याः पितृ-
 पूर्वामनीषिभिः ॥ पितृणां तु त्रयः पिण्डा मातृपूर्वास्तथावयः ।
 मातामहानामथेवं त्रयोमातामहीषु च । एवं कुर्वन् ततः
 श्राद्धम् मातृणाञ्च न दोषभाक् ॥ भवत्येव नरो विप्रा इति
 ब्रह्मानुशासन इति । कात्यायनोपि । नवानां नवकं दृष्टौ त-
 थैवान्वष्टके विदुः ॥ कुर्याद्वादशदैवत्यम् प्रेते तीर्थे गयासु च ।
 तथा उपस्रवे चन्द्रमसोरवेष्टद्वौ गयायां गमनागमेषु ।
 अन्वष्टकायां च महोत्सवेषु श्राद्धं क्रियाद्वादशदैवताभ्याम् ॥
 दृष्ट्या च वत्स्योपि ॥ गयायां च कुरुक्षेत्रे राहुग्रस्ते दिवा-
 करे ॥ कुर्याद्वादशदैवत्यं पार्वणानां चतुष्टयमिति । ननु दि-
 नानि दशपञ्चचेत्यत्र तिथिषोडशकं प्रति विरोधः । तथाच शा-
 टायनः । नभस्यस्यापरेपक्षे तिथिषोडशकं तु यत् कन्यागतान्वि

तंचेतस्या त्सकालःपितृकर्मसु । ब्रह्माण्डेपि । कन्यागते सवितरि
यान्यहानितु षोडश । क्रतुभिस्तानितुल्यानि तेषुदत्तमथाक्षयं ।
कन्यागतएकदेशेपि । तथाच काष्णार्जिनिः । आदौमध्येवसानेवा
यत्कन्यां ब्रजेद्विः ॥ सप्तःसकलः पूज्यो श्राद्धषोडशकंप्रतीति-
चेत् । उच्यते । द्वादशकपालेष्वष्टाकपालवत् । षोडशदिनेषु पंच-
दशदिनानुवाद इत्यविरोधः । श्राद्धषोडशकैतु सन्देहः । तत्रैके
शुक्लप्रतिपदोसह तिथिषोडशकमाहुः । तथाच देवलः । अहः
षोडशकं यत्तु शुक्लप्रतिपदासह । चन्द्रक्षयाविशेषेण सापिद
र्शात्मिकास्मृतेति । तन्न शुक्लप्रतिपदो दौहित्रकर्तृक माताम-
हश्राद्धविषयत्वात् । तथाच मातृणां नवमीयद्दत्तानां च च-
तुर्दशी तद्वन्मातामहानां च शुक्लेयप्रतिपन्मतेति । अन्येतु ति-
थिवृद्धिविषयं । श्राद्धषोडशकमिति । तदपि न तथासति
वृट्पितृयोः पंचदश सप्तदश श्राद्धसंभवा त्पोडशकविधिवाधा-
पत्तेः । तथाचैवंपठन्ति । तिथयः पंचदशस्युः प्रेतपक्षेतुषोडश ।
अनुमत्यादिकङ्कुर्यात् पितृणां दत्तमक्षयं ॥ नातः पञ्चद-
शेकुर्यात् नातः सप्तदशेतथा । ऊनेतु नरकं यान्ति ह्यधि-
केसराइनक्षय इति । तस्मात्पुटिवृद्धोर भावे षोडशश्राद्धवि-
धिरितिचेत् । तथासति श्राद्धषोडशकस्य कदाचित्कर्तृत्वेन
नित्यत्वानुपपत्तेः । अतः प्रौष्ठपदीमारभ्य वृटौ प्रतिपदमभि-
वाप्य वृद्धौ वहिःकृत्य श्राद्धषोडशकं कर्त्तव्यमितिवावस्था
युक्ता । एवंतर्हि प्रतिपदो दौहित्रविषयत्वमित्युक्ति विरुध्येत ।
तत्पुटिविषयत्वात् तथाषोडशपूरणोपपत्तेः यद्वा एकाहे तिथि
द्वयसंबन्धे श्राद्धद्वयकरणा त्पोडशपूरणम् । ततश्चोभयथा
पि प्रौष्ठपद्यामारम्भः । तथाचसूतः ॥ पूर्णिमाप्रभृति श्राद्धम्

नस्मा त्कुर्याद्विचक्षणः । दिनेदिने यज्ञफलं लभते श्राद्धदीनरः ॥
 ब्रह्मांडेपि ॥ श्राद्धञ्च पूर्णिमायांचकृत्वापूर्णफलं लभेत् । प्रतिपद्य-
 र्थलाभाय द्वितीयायांचापरि ॥ पुराणसमुच्चयेपि । प्रशस्ता पौ-
 णिमा मुख्या स्थितयः षोडशैवताः । यथातिलानांतैलञ्च तुल्यं वै
 श्वेतकृष्णयोः । पौर्णिमाया ममायाञ्च समम्पुण्यफलं द्वयोः ।
 पूर्णपक्षे नभस्यस्थितिः पूर्णाप्रशस्यते । अस्यांदत्ते पितृणांवै
 तृप्तिः सांवत्सरीभवेत् । अमायांश्राद्ध कृच्चैव सर्वान्कामानवाप्नु-
 यात् । पूर्वापराह्वयोः रन्तेयः श्राद्धं कुरुतेनरः । नभस्यस्यद्विजश्रे-
 ष्ठाः पितरस्तेनपुत्रिणः । पौर्वाह्निकी पौर्णिमासीह्यमाचैवापरा-
 ह्निकीति । हृदयाद्वा वक्ष्योपि । कामिकन्तिथिकर्त्तव्यं श्राद्धक-
 र्मद्विजादिभिः । पूर्णिमाश्राद्धदानेन सम्पूर्णं फलमश्नुते । कुर्वन्वै
 प्रतिपच्छ्राद्धं न्यनमानौसमश्नुते । इत्यादिषोडशकम् । वायुपुरा-
 णेपि । पुष्टिं म्रजं स्मृतिं मेधामित्वाद्युपक्रम्य पौर्णिमासरा ह्यमा-
 वासरांतं तिथिषोडशकमुक्तमित्यलं । ननु श्राद्धम् पिंडप्रदानं क-
 र्मेति कथमुक्तं स्मृतिष्वनेकधाश्राद्धशब्दप्रयोगात् तथाहि । श्राद्ध-
 भुगष्टवर्जयेत् । श्राद्धभुक् प्रातरुत्थाय अपिस्थात् सकलेजंतु भोज-
 येद्यस्तुयोगिन इत्यादिनाभोजने । श्राद्धास्ति यत्तत्तच्छ्राद्धम् । प्रज्ञा-
 श्राद्धार्चा वृत्तिभ्योः । श्राद्धादीवते यस्माच्छ्राद्धन्तेन निगद्यतइति
 पाणिन्यादिवचनाच्छ्राद्धयोगे । त्रींस्त्रीग्निपण्डानवनेज्यदद्यात् ।
 नन्दायांभार्गवदिने त्रयोदश्यां विजन्मनि तेषुश्राद्धं नकुर्वीते
 त्यादि वचनात्पिण्डदानेन । अथैतन्मनुः श्राद्धशब्दः कर्मप्रोवा-
 वाचेत्यादिनाकर्मणि । एवंविप्रतिपत्तौ पिण्डदानस्य प्राधा-
 न्यात्तद्दानेशन्तनोर्हस्तोत्थानाच्च गयादौ पिंडदानं श्राद्धम् ।
 ब्राह्मणपरीचायत्नादप्राङ्ग्रेय भोजने दोषश्रवणात् पिंडरा

हित्येऽपि श्राद्धसम्भवाच्च युगादौ ब्राह्मणभोजनमेव श्राद्धं दर्शा-
दौतूभयसमुच्चयः श्राद्धमित्येके तदन्येन च मन्ते । अग्न्या-
प्त्यादि दोषपराहतेः श्रद्धया दीयते इत्यादावग्न्यापकत्वाच्च ।
तदपि न । तथासति हेतुकत्वसंभवे कल्पनागौरवकल्पेः ।
अथैतन्मनुः । श्राद्धशब्दकर्मैति स्मृतित्वैयर्थ्यं । तथाचोक्तं ।
पुराणं मानवो धर्मः सांगो वेदश्चिकित्सितम् । आज्ञासिद्धानि
चत्वारि न हन्त्यानि हेतुभिरिति । तस्मात्सर्वत्र कर्मत्वाविशेषा-
दाग्नायभेदेन कर्मव्यवस्थायुक्ता । तथाच धर्मप्रदीपे यजुषां
पिण्डदानन्तु बहुवृत्त्यां द्विजतर्पणम् । श्राद्धशब्दाभिधेयं स्यादुभयं साम-
वेदिनामिति । आपस्तम्बोऽपि । श्राद्धशब्दः कर्मप्रोवाच पितरो
देवता ब्राह्मणस्त्वाहवनीयार्थमिति । देवतोद्देशेन यथाह-
वनीये होमस्तथापि चुद्देशेन ब्राह्मणे दत्तं श्राद्धमित्यर्थः । ततश्च
कर्मैवोपपन्नमिति । तथाच ब्रह्माण्डे । देशे काले च पात्रे च
श्रद्धया विधानाचयत् । पितॄनुद्दिश्य विप्रेभ्यो दत्तं श्राद्धमु-
दाहृतमिति । मरीचिरपि । प्रेतं पितॄंश्च उद्दिश्य भोज्यं
यत्प्रियमात्मनः । श्रद्धया दीयते यच्च तच्छ्राद्धं संप्रकीर्तित-
मिति । वृद्धयान्न वल्क्योऽपि । पात्रं पत्नी विधिः श्रद्धा देशः कालः
क्षमा दया । एतदेवोच्यते श्राद्धं हविः कर्तृसमन्वितमिति ।
यद्वैकत्र पारिभाषिक मितरत्रौपचारिकम् । तथाच श्रीधर-
पञ्चतौ । होमश्च पिण्डदानं च तथा ब्राह्मणभोजनम् । श्राद्धश-
ब्दाभिधानं स्यादेकस्मिन्नौपचारिकम् । प्रयोगोद्दिश्यते लोके नि-
यमस्तु च ये सतीति । प्राधान्यप्रयोजनं यदकरणेभ्यामवृत्तिः ।
प्रधानस्याक्रियायत्तु सांगतत्क्रियते पुनरिति वचनात् । यदुक्तं
प्रतिपदि दौहितृकर्तृकश्राद्धविषयत्वमिति । तत्राहं जीवत्य-

तृको दौहित्रः उतमृतपितृकइति उभयथाप्रतिक्रमः । तथाच ।
जातमावस्तुदौहित्रौ विद्यमानेपि मातुले । कुर्यान्मातामहश्राद्धं
प्रतिपद्याश्विनेसिते । नन्वेवं त्रिपिण्डं षट्पिण्डं वा उच्यते ।
पित्वादित्रिके जीवति त्रिपिण्डं मृतेतूत्तरमिति । तथाचका-
त्यायनः । मातामहानांदातव्यं प्रतिपद्येवमुख्यकं । त्रिकंहित्वाप्र-
यत्नेन श्राद्धं कुर्यात्त्रिपिण्डकम् । गौतमोपि । मातृपक्षे मृतानाञ्च
देयंभक्त्या तु मुख्यकम् । सर्वेषां पावनं कुर्यात् यथाशक्त्यातु पि-
ण्डदः । जातमावस्तु दौहित्रौ विद्यमानेषु पार्वणम् । कुर्यान्मा-
तामहश्राद्धं प्रतिपदेवसर्वदेति । मृतपित्रादि त्रिकेतु गोभिलः ।
मातामहानां प्रतिपद्दौहित्रः स्वयमाचरेत् । तत्रपित्रे स्वयन्देयं
विशेषात्मीतिरिष्यते । प्रतिपत्यतिपच्छ्राद्धं पित्रइति पितामहा-
दुपलक्षणम् । प्रत्यक्षपितरन्यत्वा ह्यन्यथातु ददातियः । सयाति
नरकं घोरं यावद्भूसागरानगा इति । मृते पित्रादित्रिके पितृ
पङ्क्तिपरित्यागो न । प्रत्यवायजनकत्वात् । पञ्चमीपर्यन्तं श्राद्धका-
लत्वान्च । तथाच यमः । हंसे वर्षासुकन्यस्थे शाकेनापि गृहेब्र-
सन् । पञ्चम्योरन्तरेदद्या दुभयोरपिपक्षयोः ॥ एकादशी चतुर्द-
श्यादि तिथिश्राद्धानि क्षयाहश्राद्धानितूत्तरत्रप्रपञ्चयिष्यन्ते । इह-
त्वपरपक्षादि प्रपञ्चेनालम् । एवंपक्षश्राद्धमुक्त्वा पक्षान्तरमाह ॥

* ऊर्ध्वं वा चतुर्थ्याः ॥ २ ॥

वाशब्दउत्तरोत्तरप्राशस्त्यं सूचयन्मृत्यन्तरोक्तपक्षा न्योतयति ।
ततश्च शक्ततमेन शक्ततरेणशक्तेनचपूर्णिमांपञ्चमीमष्टमी मेका
दशीमारभ्य शेषदिनेषु यथाक्रमं शक्त्याश्राद्धं कर्तव्यमित्यर्थः ।
तथाच ब्राह्मे । अश्वयुक्कृष्णपक्षे तु श्राद्धकुर्याद्दिने दिने ॥ त्रि-

भागहीनम्यक्ष्णं वा विभागं त्वर्धमेव वा विष्णुधर्मोत्तरेपि । उत्तराद-
यनाच्छाद्रे श्रेष्ठस्यादक्षिणायनम् । चातुर्मास्यञ्च तत्रापि प्रसुप्ते
केशवेधिकम् । प्रौष्ठपद्यापरपक्षे स्तत्रादिचविशेषतः । तन्त्रे वंपञ्च
मूर्ध्वं ततोप्यतीत्याष्टमूर्ध्वं ततोप्यतीत्यैकादशीमारभ्य श्राद्ध-
विदधता वाक्येन । कृष्णपक्षे दशम्यादि वर्जयित्वा चतुर्दशीमि-
ति । दशमीप्रभृतिश्राद्धविधायकं मनुवाक्यम् विरुध्येत । पितुः
शस्त्रहतत्वे दशमीप्रभृतिविभागत्वं पक्षस्येतरस्यैकादशीप्रभृतीत्य-
विरोधः । अतएव प्रतिपत्यभृतिष्वेकां वर्जयित्वा चतुर्दशीमिति
चतुर्दश्यां पार्वणनिषेधस्य विभागादिपक्षेष्वावपर्यवसानमित्यु-
क्तम् । तियिविषये पक्षान्तरमाह ।

* यदहःसम्पद्येत तदहर्ब्राह्म
णानामन्वयपूर्वेद्युर्वा ॥ ३ ॥

यदहरिति विभक्त्यर्थोवायौभावे । नपुंसकादन्यतरस्यामिति टञ्-
भावः । क्षत्रियादिप्रतिषेधार्थम् ब्राह्मणानिति । पूर्वैद्यु रिति नि-
पातः । ततश्च यद्दिने मृताहसंज्ञकतिथिरपरपक्षे स्यात्तदहो पू-
र्वाहेवा ब्राह्मणानामन्वयश्राद्धङ्कुर्यादितिशेषः । पूर्वैद्युरसम्भवे
तदहर्निमन्त्रयेदिति वाशब्दार्थः । तथाचक्रमे श्लोभविष्यतिमेश्राद्धम्य
र्वैद्युरभिपूजयेत् । असम्भवे परैद्युर्वा यथोक्त लक्षणैर्युतान् ।
देवलोपि । श्वःकर्त्तास्मीति निश्चित्य दाताविप्रान्निमन्त्रयेत् ।
असम्भवे परैद्युर्वा ब्राह्मणांस्तान्निमन्त्रयेदिति । अथवा वाशब्दो
वावस्यायां । योषित्सज्जनः पूर्वैद्युरितरांस्तदह इत्यर्थः ।
तथाच मार्कण्डेयः । निमन्त्रयेत्पूर्वैद्युः पूर्वोक्तांस्तुद्रिजोत्तमान् ।

अप्राप्तौ तद्दिने वापि हित्वायोषित्प्रसङ्गिनं । काच्यायनोपि ।
नविना ब्रह्मचर्येण ब्राह्मणः श्राद्धमर्हति । ब्रह्मचारी यतिश्चैव
तद्दिनेच निमन्त्रयेदिति । दिनद्वयेपि निमन्त्रयेदिति समुच्चया-
र्थोवा । तथाचष्टद्वयाच्चवल्क्यः । चरणक्षालनादूर्ध्वं पुनर्विप्रनि-
मन्त्रणम् । आसनार्चनसंयुक्तम् मर्षञ्च प्रतिपादयत इति । अ-
र्त्तके । बद्धः सम्पद्येतेति सम्पत्यर्थवाचकत्वाद्बद्ध र्यथो-
क्तद्विजद्रवादि लाभस्तद्वद् एवश्राद्धं नतुमृताहमिति । तन्न ।
तस्यालभायोगत्वेनानिश्चयत्वात् मृताङ्गोवाचनिकत्वात् सदा-
चरितत्वाच्च । नच संयतः पुरुषयत्नसाध्यत्वादन्यपरत्वम्वा ।
तस्मान्मृताह एवसर्वं सम्पाद्य श्राद्धं कर्तव्यमित्युक्तं । अत-
एवगोभितसूत्रे यदहउपपद्येतेतौत्युपपन्नार्थमुक्तं । तथाच
पुराणसमुच्चये । यातिथिर्यस्य मासस्य मृताहेतु प्रवर्त्तते ।
सातिथिः प्रेतपक्षस्य पूजनौयाप्रयत्नतः । तिथिच्छेदोनकर्त्तव्यो
विनाशौचं यदृच्छ्या । पिण्डश्राद्धञ्च दातव्यंविष्कित्तिनैवकारये-
दिति मृताहविषयस्यापि ऋष्यशृङ्गवचनस्यावापि सदाचारेण-
सङ्गतत्वात्तिथिविषयत्वमप्यविरुद्धं । एतच्च पुत्रभ्रातृपत्न्यादि
व्यतिरिक्तविषयं । तेषां मेकादशी द्वादश्योः श्राद्धविधानात् ।
तथाच वायुपुराणे संन्यासिनोप्यादिकादि पुत्रं कुर्याद्यथातिथिः ।
महालयेतु यच्छ्राद्धं द्वादशां पार्वणेनत्विति । पिण्डश्राद्धं च दा-
तव्यमिति निषिद्धदिनेपीत्यर्थः तथाचकात्यायनः । अशक्तः पक्ष-
मध्ये तु करोत्येकदिनेयदि । निषिद्धेपि दिने कुर्यात्पिण्डदानं
यथाविधिरिति । नन्वेवं पौर्णमास्यां मृतस्य कुर्वतिथाविति ।
तत्रामावास्यायामित्येके । तन्न । तिथ्याश्रयाभावात् ॥ दर्शमृ-
तस्यैव तत्रोचितत्वाच्च । अतोभाद्रपद्यामेवयुक्तं तथाच बृहया-

क्षवत्क्यः । पूर्णिमायाममायांवा सदाकन्यागतेरवौ । एकोद्दि-
 ष्तु मातुःस्या त्पितुःपार्वणमुच्यते । नान्यकाले प्रशंसन्ति क्षये-
 हनितु पार्वणमिति पूर्णिमादर्शयोर्मृतस्य कन्यागतेरवौ तयोः ।
 क्षयाहसंचकतिथित्वात् प्रौष्ठपद्यामपरपक्षेच दर्शेच पार्वणं क-
 र्तव्यमित्यर्थः । तथाच प्रौष्ठपद्याममायांच कन्याप्राप्ते रवौस-
 दा । सर्वस्वेनापि कर्तव्यं आङ्गंवा इन्दुलोचनइति । एकोद्दि-
 ष्तु मातुःस्यादित्यैव मुपरिष्ठाद्व्यामइत्युक्तम् । अत्रकेचिद्वैवपूर्वं
 निमंत्रयेदिति । तन्न । पितृपूर्वस्यविहितत्वात् । (१) तथाच देवलः ।
 श्वःकर्त्तास्तीति निश्चित्य दाताविप्रान्निमंत्रयेत् । कृतापसव्यं
 पूर्वद्युः पितृपूर्वनिमंत्रयेत् । प्रचेताअपि । कृतापसव्यः पूर्वद्युः
 पितृपूर्वनिमंत्रयेदिति स्मृत्यन्तरेपि प्रार्थयीतप्रदोषांते भुक्तान-
 शयितान्द्विजान् । अयुःमानपसव्येन पितृपूर्वनिमंत्रयेदिति यत्तु
 गृहस्पतिवचनं । उपवीतीततोभूत्वा देवतार्थं द्विजोत्तमान् ।
 अपसव्येनपित्येच स्वयंशिष्योथवासुत इति । तत्पूर्वं पश्चाद्भावयो
 रश्रवणादस्मिन्नेव क्रमेयोज्यमित्यविरोधः । एतच्च पूर्वद्युर्निमं-
 त्रणं गृहलेपाद्युपलक्षणं । तथाच वाराहे । वस्त्रशौचादि कर्त्त-
 व्यं श्वःकर्त्तास्तीतिजानता । स्थानोपलेपनंभूमेः कृत्वाविप्रान्नि-
 मंत्रयेदित्यादि । एवं निमंत्रा ब्राह्मणानाह ॥

* स्नातकान् ॥ ४ ॥

स्नातकास्त्रिविधास्तान्निमंत्रये दितिशेषः । तथाचयमः ।
 विद्याव्रतोभयस्नातो ब्राह्मणःपंक्तिपावनइति । अयंचापत्नीक-
 निमंत्रणप्रतिषेधप्रसंगः विभार्योद्वेषलीपतिरित्यत्रिणानिषेधात् ।

* एकेयतीन् ॥ ५ ॥

निमंत्रयेयुः नकात्यायनादयइतिविकल्पः ॥ तथाच वायवीये ।

(१) वस्तुतस्तु पितृपूर्वनिमन्त्रणत्वन्वशाखाविषयम् दैवपूर्वं ठ० आङ्गमिति
 वक्ष्यमाणत्वात् ॥

गृहस्थानांसहस्रेण वानप्रस्थशतेनच । ब्रह्मचारीसहस्रेण एकोयो-
गीविशिष्यते । विष्णुरपि । अपिनःस्वकुलेजायाद्भोजयेदास्तुयो-
गिनः । विप्राञ्छाद्वे प्रयत्नेन तेनतृप्यामहेवयमिति । इतरेकात्या-
यनादयोने तग्राहः । तथाच गृह्यसंग्रहः ॥ आचार्यानुमतंवाक्यमे-
कीयंगृह्यतेक्वचित् । शेषाण्येकीयवाक्ये नि आचार्येनप्रशंसति ।
वसिष्ठोपि । श्रुतिस्मृतौअतिक्रम्य यंसमशनातिमूढधीः । नतंदु ।
ब्राह्मणंप्राज्ञः श्राद्धार्थमुपवेशयेत् ॥ योदद्यादन्नमस्माकं तत्सर्वम-
धुनासह ॥ आमिषेणसमायुक्तं शस्तानांमृगपत्रिणां । जा-
तूकर्ण्यः । दारवान्योद्विजःश्राद्धेदद्यान्नोमांसमध्वरे सदुरात्मा
दुराचार्यो वेदमार्गस्यदूषकः । तर्पणंतिलहीनंयच्छाड्यच्च-
निरामिषं । विनादर्भैश्चयामंध्या त्वयंशशविषाणवत् । यत्र मातु-
लजोदाही यत्रवावृषलीपतिः । श्राड्यंधिनोतितर्पिता न्कृतं
यच्चनिरामिषं । विश्वामित्रः । निमंत्रितस्तुयःश्राद्धे यज्ञेवापि-
द्विजाधमः । मांसंनाश्रातिनिरयं यातिवैपशुतांनरः । इत्यादंग-
वाधया यतिपक्षः कात्यायनेन निरस्तइत्येकेइत्युक्तम् । त्रिदण्डि-
नामेवविहितत्वात् । तथाचवायौ । सन्तिवेदविरोधेन केचिद्वि-
ज्ञानमानिनः । अयञ्जयतयोनाम वेदसंतियथारजः । मुग्धान्
जटिलकषायान् श्राद्धेयत्वेनवर्जयेत् । ब्रह्मांडेपि । एभिर्निर्धू-
तदृष्टञ्च श्राड्यंगकृतिदानवान् । शिखिभ्योधातुरक्तेभ्यस्त्रिदण्डि-
भ्यः प्रदापयेदिति । मुग्ढोविशिखः । जटिलोभस्मांगः । श्रुति-
रपि । अशुचिर्वा एषयन्मुंडस्तस्मैतदपिभ्रान्तंयच्छिखेति । उ-
भावप्यज्ञातकुलशीलत्वान्ननिमंत्रयेदित्यन्ये । तथाचकात्यायनः । य-
स्यशीलंनजानीयात् स्थानन्विपुरुषंकुलम् ॥ कन्यादानेतथाश्राद्धे
नवणीयात्कदाचन । मनुः । नस्वगोचेहविर्दद्यात्समानप्रवरे-

तथा । नाविज्ञातकुलेचैव यथाकन्यातथाहविः । पुराणसमुच्चयेपि ।
 येषां न ज्ञायते स्थानं नष्टस्थानाश्च ये द्विजाः । न ज्ञातिज्ञायते येषां
 न संबन्धीनवांधवः ॥ कुधर्माचरणायेतु न तांश्चाङ्गे निवेशयेदिति ।
 तदपि न । विज्ञातकुलशीलादीनां विधानोपपत्ते मांस मधु
 दक्षिणादानपंक्तिभेदादिदोषोपपत्तेः । तस्मादुभयोरप्यातिथि-
 रूपेण भोज्यत्वं न पंक्तौ निवेश इति युक्तं । तथा च वाराहे । वैश्वदेवे नि
 युञ्जीत ब्रह्मचारिं शुचिं सदा । भिक्षुकान् देवतार्थेषु पूजयेदतिथिं
 यथा । अतिथ्यादिबृत्तौ क्वागलियोपि । गंधमाल्यैः फलैश्चैव
 भोजनैः क्षीरसंस्कृतैः । पूजयेदतिथिंश्चाङ्गे पितृणां तुष्टिकारकं ।
 ब्रह्मचारीयतिश्चैव पूजनीयो हि नित्यशः । तत्कृतं मुकृतं यत्स्या त-
 स्य षड्भागमाप्नुयात् । मार्कण्डेयोपि । भिक्षार्थमागतान्वापि ।
 काले संयमिनो यतीन् । भोजयेत्पणिपातादयः प्रसादो दयतमानसः ।
 कल्पतरावपि । पूजयेच्छाङ्गकालेपि यतिं स ब्रह्मचारिणं । गृह्णं
 ति पितरो देवाः स च याति परांगतिम् । तारयंति च दातारं पुत्रान् दा-
 रां पितृंस्तथा । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूजयेदाश्रमागतं । अला-
 भे ध्यानभिक्षूणां पूजयेत् ब्रह्मचारिणं ॥ तदलाभेषु दासीनं गृ-
 हस्थमपि भोजयेत् । विश्वामित्रोपि । यतिर्वा ब्रह्मचारी वा भुञ्जा-
 तानां द्विजन्मनौ । श्राद्धे यत्नं भवेत्साक्षी महालयसमंहितत् ।
 महालये गयायांच यतिधर्मे ष्वविः । पितृर्थं कल्पितं पूर्वं मन्त्रदेवा-
 दिकारणात् । वर्जयेत्तादृशी भिक्षां परवाधाकरीं तथा । यमो-
 पि । भिक्षुको ब्रह्मचारी वा भोजनार्थमुपस्थितः । उपविष्टेषु तु प्राप्तः
 कामंतमपि भोजयेदित्येवमादिवचनपर्यालोचनया यतीनां साक्षि-
 त्वयोरेव प्राप्तिर्न पङ्क्तौ निवेश इति । तथा च स्मृतिः । भुक्तशेषं न भुं-
 जीत पीतशेषं न संपिबेत् । न चैवोपविशेत्पङ्क्तौ यतेर्वा तापसस्य

वेति । यतिस्तुसर्वविप्राणां सर्वेषामग्रमुग्धवेदिति । वायुपुरा-
णोक्तेः । किञ्च यदि बन्त्यप्रेषः स्यात्तदा द्विजेष्वोमांसादिदाने
न तेषां तदभावे पङ्क्तिवैषम्यान्नयुक्तम् । न पङ्क्तौ विषमं दद्यादिति
वाक्यात् । षड्वहारीतोपि । पङ्क्तिभेदी वृथापात्री नरकं प्रतिपद्य-
ते । कामांस्त्रोभाञ्जयाद्वापि यः पङ्क्तिन्दूषयेत् द्विजः । नरकादव-
तीर्णस्तु जायते ग्रामसूकर इति । अपिच । दक्षिणायामपि वै-
प्रस्यं । तथाच विरवामि वः । हेमं वारजतं वापि यतयेन्न ह्यचारिणे ।
यो ददाति ऋते वस्त्रं स भवेद्ब्रह्मघातक इति । अत एक इत्युक्तं त-
त्सूक्तम् बहुैकग्रहणं व्यवस्थितविकल्पार्थं देवश्राद्धे यतयः पित्रे गृ-
हस्था इति । तथाच ऋग्विशिष्टः । चत्वारः आश्रमा पूज्या देवश्राद्धे-
न सर्वदा ॥ चतुराश्रमवाह्येभ्यः श्राद्धं नैव प्रदापयेत् । मार्कण्डे-
योपि । ब्राह्मणानां सहस्रेभ्यो योगित्वग्रासनो यदि ॥ यजमानञ्च-
भोक्तांश्च नौरिवांभसितारयेत् । यमोपि । न ब्राह्मणम्परीक्षेत
दैवे कर्मणि सर्वदा । पितृ कर्मणि संप्राप्ते परीक्षेत प्रयत्नतः । वैश्वदेवे
नियुञ्जीतेति वाराहवाक्याच्चेत्यलः बहुना ।

* गृहस्थान्साधून्वा ॥ ६ ॥

वाशब्दः पाल्निक् यत्निमित्तं वृण निषेधार्थः । तथाच जावालः ।
अश्रुतियेन मांसानि भार्याहीनाश्च ये द्विजाः ॥ ये च मातुलसंबन्धा-
नताञ्ज्वाद्भे निवेशयेत् । ऋषयश्च गोपि । नाश्नातियो द्विजो मांसं य-
स्य नोदार संगृहः तावेतौ मुनिभिः प्रोक्ता वनर्हो मखदूषकाविति ।
ननु । वाशब्दः गृहस्थनिषेधार्थः किं न स्यात् । मैवं साधुशब्देनेव त-
न्निषेधसिद्धेः । नचात्र वाशब्दाभावः शङ्क्यः । शाखांतरे ह्यश्रमान-
त्वात् ॥ तथाच गोभिलः । गृहस्थान्साधून्वेति । वसिष्ठोपि । य-

तीन्गृहस्थान्साधून्वेति । अतश्चगृहं पत्नी तत्सहितागृहस्था-
न्नरान्निमन्त्रयेदित्यर्थः । नचविभार्यनिमन्त्रणमनुज्ञातं ॥ विभ-
र्योवृषलीपतिरित्यत्रिणाप्रतिषेधात् । साधूनाहादितत्पुराणे ।
साधून्वक्ष्यामिसंयतमित्युपक्रम्यगङ्गायमुनयोर्मधोमधोदेशः प्र-
कीर्तितः । ततोत्पन्नाविजायेवैसाधवस्तेप्रशस्यतइति । यद्वादेश-
व्यतिरिक्तदेशस्थाः सद्गुत्ताः स्लेच्छदेशनिवासिनो वर्जयेदिति-
मात्स्योक्तेः ।

* श्रोत्रियान् ॥ ७ ॥

निमन्त्रयेदितिशेषः । श्रोत्रियमाहदेवलः । एकशाखाचस-
कलां षड्विरङ्गैरधीत्यच । षट्कर्णानिरतोधिप्रः श्रोत्रियोन्नाम-
धर्मवित् । जन्मनाब्राह्मणोज्ञेयः संस्कारैर्द्विजउच्यते । विद्यया
यातिविप्रत्वन्लिभिः श्रोत्रियउच्यतइतिवा ।

* वृद्धाननवद्यान् ॥ ८ ॥

विकलेन्द्रियदुराचारादि दोषराहित्यमनवद्यशब्देनोच्य-
ते । ततश्चायः सर्वेषुवेदेषुश्रोत्रियो ब्रह्मविद्युवेति युवत्वेन वृद्ध-
निषेधेवृद्धानिति प्रतिप्रसवः । यद्वायुवृद्धविधिभ्यान्तद्व्यति-
रिक्तस्याल्पवयसस्य भोक्तृनिधमाक्षमस्यनिषेधः । अनवद्यशब्द-
मुत्तरवानुपज्यस्वकर्मस्यद्विजविशेषणं कृत्वा केवलवृद्धशब्देनज्ञान-
वयस्यपोवृद्धांस्त्रिविधानितिहलायुधः ।

* स्वकर्मस्थान् ॥ ९ ॥

स्वजाचमुक्तकर्मानुष्ठानरतान्विप्रानित्यर्थः । अतश्चश्रोत्रिया-
दिवैलक्षण्यमनेनोक्तमित्युपनरुक्तिः । तथाचपुराणसमुच्चये । गृहस्थाः
कुलसम्पन्नाः प्रस्थाताकुलगोवतः । स्वाचारनिरताः शान्ताः

विज्ञेयाः पङ्क्तिपावनाइति । मुख्यकल्पप्रदर्श्यानुकल्पमाह ।

* अभावेपिशिष्यान्स्वाचारान् ॥ १०॥

अपिशब्दः स्मृत्यन्तरोक्तानुकल्पसमुच्चयेततश्चपूर्वोक्तमुख्यकल्पाभावेसहृत्तान् शिष्यादीनपिनिमन्त्रयेदित्यर्थः । तथाचयाज्ञवत्कथं ॥ स्वस्तीयं ऋत्विक्जामातृयाज्यंश्वशुरमातुलाः । त्रिणाचिकेतदौहित्वशिष्यसम्बन्धिवान्धवाइति । अनुकल्पस्त्वयञ्ज्ञेयः सदासद्भिरनुष्ठितः । मातामहम्मातुलञ्च स्वस्तीयंश्वशुरंगुरुं । दौहित्वंविट्पतिवंधुं ऋत्विग्याज्यौचभोजयेदिति-मनुः । आपस्तंबोपि । गुणवदलाभेसौदर्योपमावन्तेवासिनो-ख्याताइति । अयमनुकल्पोदैवएवमपिच्ये । तथाचाचिः । पिता-पितामहोभ्राताशिष्यौवाथसपिंडकः । नपरस्परमर्घ्याः स्युर्नश्राद्धेऋत्विजस्तथा ॥ ऋत्विक्पुत्रादयोह्येतेसकुलप्राब्राह्मणादिजाःवैश्वदेवेनियोक्तव्यायदेतेगुणवत्तराइति । अपिभिन्नक्रमइतिहलायुधः । स्वाचारानित्यनेनाचार्यधनहारित्वाभावउक्तः । तेहिकदाचिधन-हारिणोविहिताःदद्यात्पिंडंहरेद्धनमित्यादिना । अतस्तथात्वेशिष्यदौहित्रादयोनाभिमन्त्रणीयाःपिंडदोशहरइतिपिंडदाहृत्वहरं-सम्भवात् । वज्यानाह ।

* द्विर्नग्नशुक्लविक्लिधःश्यावदन्तविद्वप्रजन-
नव्याधितव्यंगिश्वितिकुष्ठिकुनखिवर्जम् ॥ ११॥

द्विरितिपिबोधिशेविपुरुषंवेदाग्न्याविच्छेदौद्विर्नग्नः । तथाचसुमंतुः । यत्रविपुरुषादासीदुभयोर्गोत्रयोरपि । वेदस्याग्ने-चविच्छेदौद्विर्नग्नःपरिकीर्तितः । दुश्चर्मतिच । शुक्लोतिकपिलांग-

केशः । तथाचकारयायनः ॥ द्विर्नग्नः किलदुश्चर्माशुक्लौतिकपि-
लःसूतः । विवर्चिकादिरवन्दोषौविक्षिधःपरिकीर्तितः सङ्ग्रह-
कारोपि । खसप्राटकश्चदुर्वालः क्षपिलाश्रुण्डएवचेति । विक्षिध-
ओष्ठः भ्रामनावृतदन्तः । तथाच । यस्य तैवाधरोष्ठाभ्यांछाद्य-
तेदगनावली । विक्षिधःसतुविज्ञेयोत्राक्ष्णः पंक्तिदूषकः पूति-
गन्धघ्राणइतिकश्चित् । शयावदन्तः । खभायात्कपिलदन्तः ।
विद्वज्जननः क्षिन्नलिंगचर्मादक्षिणात्प्रेप्रसिद्धः । तथाच कल्पल-
तायां । विद्वज्जननश्चैव कृतंशिश्रविशारवान् । तंहि कामार्थ-
भोगार्थं दक्षिणात्याःप्रकुर्वते । मध्यवीजोवा । मृतापत्यदूत्यन्ये ।
व्याधितोरोमी महारोगोपस्पृष्ट इतिकश्चित् । व्यङ्गी विगतस्त्रि-
विधंवांगंयसेतिसमस्य । हीनांगोधिकान्गश्च । हीनातिरिक्तां
गद्वतिस्मृतेः । शिवस्त्री । श्वेतकुटी । कुटीकुत्सितगलितांगः ।
व्याधितगृहणादेवतन्निषेधेसिद्धे तद्गृहणादोषाधिक्य द्योतनार्थं ।
अजीर्णादाल्परागिदोषाल्पत्वज्ञापनार्थञ्च । कुनखौ स्वभावात्कु-
त्सितनखौ । एतावज्जयित्वा निमन्त्रयेदित्यर्थः । अक्षस्नातकादि
विहितगृहणादेवतत्रनिषेधेसिद्धे द्विर्नग्ननादिनिषेधो मुन्यन्तरोक्त
आंतरालिकाद्विजोपवेशनार्थः । तेचगुंथगौरवान्ने हलिखिताः ।
अन्यथाद्विर्नगनादि वर्जनमनर्थकंस्यात् ।

* अनिन्द्योनामन्त्रितोनापक्रामेत् ॥१२॥

अनिन्द्योनिर्दोषस्तेनामन्त्रितोनापक्रामेत् । तथाचश्रुतिः । (१)
सहोवाचानिर्दोषमा वृषतपसोनिन्द्यै वृत्तोनाशकमपक्रमितुमिति
तस्मादुहानिर्दोस्य वृत्तोनापक्रामेदिति । आग्निवैशरोपि । नैकदापि
परान्नं यो भुङ्क्ते मृदमतिर्हिजः ॥ वत्सराभ्यन्तरे वत्सरं भवेदि-
ति । निर्दोषस्येतिशेषः ।

(१) अग्निष्टोमप्रकरणेऽध्वरकाण्डे

* आमन्त्रितो वा न्यदन्नं प्रतिगृह्णीयात् ॥ १३ ॥

निमन्त्रितो विप्रो न्यदन्नं सिद्धमामन्त्रा परस्परगृह्णीयादित्यर्थः ॥ यद्रान्यस्यात्तमन्यदन्नम् अन्यस्य दगागमश्चान्दसः । वाशब्दो निमन्त्रिते दातृभोक्तोः परस्परत्यागनिषेधं द्योतयति । तथाच यमः । आमन्त्रितश्च यो विप्रो भोक्तुमन्यत्तगच्छति । नरकाणां शतं गत्वा चाण्डालेष्वभिजायते । कैतनं कारयित्वा तु निवारयति दुर्मतिः । ब्रह्महत्यामवाप्नोति शूद्रयो नौ च जायते । आदित्यपुराणे आमन्त्रितश्चिरं नैव कुर्याद्विप्रः कदाचन ॥ देवतानां पितृणां च दातुरन्नस्य चैव हि चिरकारी भवेद्दोगी पच्यते मरकाग्निनेति ॥

* स्नातां कुचीनाचांतान् ॥ १४ ॥

ईदृशानुपवेशय । आङ्गकुर्वीतेति वक्ष्यमाणेन संबधः । स्नानशौचाचमनानि स्मृतिप्राप्तान्येवाक्षसार्धकृत्वेनानुवदति । तेन स्नानशौचाचमनेष्वक्षविशिष्टविधिरित्यर्थः । तथाच देवलः । ततो निवृत्ते मध्याह्ने कृतलोमनखान् द्विजान् । अभिगम्य यथा पूर्वं प्रयच्छेदन्तधावनम् । तैलमुद्वर्तनं स्नानं स्नानीयं च पृथग्विधम् । पात्त्रे (१) उदुम्बरे दद्याद् वैश्वदेवस्य पूर्वकम् । ततः स्नात्वानिवृत्तेभ्यः प्रत्युत्थाय कृतांजलिः । पादमाचमनीयं च संप्रयच्छेद्यथाक्रममिति । अक्षामन्त्रितानां स्निग्ध स्नानं दन्तधावनं विधिर्नक्तुः । तथाच । दन्तधावनतांबूलम् स्निग्धस्नानमभोजनम् । रक्ष्योषधंपरान्नानि आङ्गकृत्स्नवर्जयेदिति । अक्षकेचिदनिषिद्धविधिविषयन्तैलादिप्रेषणमिति । तन्न । आङ्गीयेहि विशिष्टविधित्वात् । तथाच कालायनः । तैलमुद्वर्तनन्देयम् ब्राह्मणेभ्यः प्रयत्नतः । तैरभ्यङ्गः प्रकर्त्तव्यो वर्ज्यकाले चिन्तयेत् । अभ्यङ्गो-

सुरेश्वरोपि । पुत्रजन्मनिसंक्रान्तौ श्राद्धे जन्मदिने तथा नित्यस्नाने च कर्तव्यो तिथिदोषो न विद्यत इति । निषेधस्य मलाप्रकर्षविषयत्वाच्च । एवं व्रणादिव्याधौ रक्तश्रावादौ च सत्यशुद्धत्वाच्छुचौ निति शेषः । तथा च पुराणसम्बन्धे । कृत्वा तु रुधिरश्रावान् विद्वान् श्राद्धमाचरेत् । एकं द्वि त्रीणि वा विद्वान्दिनानि परिवर्जयेत् । वमने वा विरेके वा तद्दिनं परिवर्जयेत् ॥ यथारजस्वतानारौ ह्यशुचिस्तिदिनमभवेत् । रक्तश्रावे तथा नृणां मशुचित्वं प्रजायत इति एवमाचमनेपि विशेषः । तथा च विष्णुपुराणे । उपस्पर्शस्तु कर्तव्यो मण्डलस्योत्तरेदिशि । कर्त्तव्यं वा द्विजैर्वापि विधिवद्भाग्यतैः सदा । मण्डलस्योत्तरे देशे कुर्यादाचमनं द्विजः । सोमपानफलम्याहुर्गर्गकाश्यपगौतमाः । आपस्तम्बोपि । कुर्युराचमनं विप्रा उद्दौ च गामण्डलाद्वहिः । अन्यदिक्षु यदा कुर्यान्निराशाः पितरोगता इति । तथा । विप्रपादोदकस्थाने कुर्यादाचमनं द्विजः । रुधिरन्तर्गते तोयन्निराशाः पितरोगताः । पादोदकोच्छिष्टवारिद्वयोश्चेत्सङ्गतिर्भवेत् । उच्छिष्टाः पितरो यान्ति शुध्यन्ति च गयाशिर इति । मण्डलादिकरणज्ञो मूत्रेणाहमृतिः । गोमूत्रमण्डले कृत्वा दक्षिणे चोत्तरे उभे । श्राद्धौ याह्निसंप्राप्ते रेणुभिर्नजलेन च । गृहकुड्यादिलिपेषु गोमूत्रं रेणुमुच्यते इति ॥

मू० प्राङ्मुखानुपवेश्य देवैर्युग्मानयुग्मान्यथाशक्तिपित्रा एकैकस्योदङ्मुखान् ॥ १५ ॥

यथाशक्तौ एकैकस्येति पदे उभयत्र सम्बध्यते । युग्माद्विचतुरादयः । अयुग्मास्त्रिपञ्चादयः । ततश्चैकैकस्य पित्रा देवैश्चाङ्गे यथाशक्तियुग्मान् प्राङ्मुखान् । पित्रोऽप्येकैकस्य पित्रा देवैर्युग्मान्यथाश-

तुदङ्मन्त्रास्त्रिप्राम्बासकरेणासनंस्पृष्टादक्षिणकरेणद्विजकरं धृ-
त्वा ॐ भूर्भुवः स्वः इदमासनमास्यतामित्यूक्तीपवेश्यश्चाङ्गं कुर्यादि-
तिशेषः । तथाचकाच्यायनः । सस्येनैवासनं धृत्वादक्षिणेदक्षि-
णंकरं । ॐ भूर्भुवः स्वरित्युक्ताआसनेषूपवेश्येदिति । एवञ्चअ-
प्रतिपुरुषं देवश्चाङ्गंभवतीतिचगम्यते । यथाशक्तीत्यस्यानियतवा-
चकत्वात् । अयुगमत्वंच नवभगोर्वाभवेद्यं । नवावरान्भोजयेद्यु-
जोयथोत्साहंवेति । ब्रह्माण्डेपि सामर्थ्येपिनवभगोऽर्वाभोजयीत-
सतिद्विजान् । नोर्ध्यं कर्त्तव्यमित्याहुः केचिद्दोषस्यदर्शनादिति ।
एवंबहुतराप्राप्तौसंख्यामाह ॥

* द्वौवादैवेत्वीन्पित्रौ ॥ १६ ॥

वाशब्दः प्रतिपुरुषंदेवश्चाङ्गंनिषेध्यदैवेद्वौपित्रौचीनितिपितृ-
पक्षौदैवेद्वावेवपित्रौप्रतिपुरुषंत्रिकत्रिकभेदेनवा । एवमुभयवाप्ये-
कादशैवेत्यर्थः । अतएवप्रतिपत्तौदैवश्चाङ्गंनप्रतिपुरुषमितिपूर्वसूत्रा-
पवादः । तथाचदृष्ट्याज्ञवल्क्यः । दशैकंपंचवाविप्रापार्वणोविनि-
योजयेत् । द्वौदैवेप्रागुदक्पित्रौएकैकदशपंचवेति । पंचदया-
वधारणार्थोवाशब्दः । विस्तरनिषेधात् । तथाचसएवद्वौदैवेपितृ-
कृत्येत्वीन्पंचचैवंप्रकल्पयेदिति । मरुरपि सक्त्रियान्देशकालौच-
द्रव्यब्राह्मणसंपदः । पंचैतान्विस्तरौहंतितस्माद्ब्रूहेतविस्तरं । वृ-
हस्पतिरपि । एकैकमथवाद्वौचीन्दैवेपित्रौचभौजयेत् । सत्क्रि-
याकालप्राप्तादिर्नसंपद्येतविस्तरं । ब्राह्मेपि । यस्माद्ब्राह्मणवा-
हुत्यादोषोबहुतरोभवेत् । श्राद्धनाशोमौननाशः श्राद्धतन्त्रस्यवि-
स्मृतिः । उच्छिष्टोच्छिष्टसंसर्गोनिन्दादातृषुभोक्तृषु । वितंडावा-
पवादीवाजल्पन्त्वेतेपृथाग्विधा ॥ * ॥ * ॥

मु० एकैकमुभयत्रवा ॥ १७ ॥

वाशब्दोऽभावे । तत्तच्च देशकालधनाद्यभावेदैवेपितृ चैकैकं ब्राह्मणद्वयमेवोपवेशयेदित्यर्थः । तथाच दृष्ट्यान्नावलम्ब्यः । एकंदैवे तथापित्येधनविप्राद्यभावतः । योजयेत्प्राहदामेवपितृपक्षं न लोपयेदिति । नन्वेवं न त्वेकैकं सर्वेषामिति निषेधो नुपपन्नः । मैवं । तस्य संभवविषयत्वात् । तथाच । ब्राह्मणाविप्रसंपन्नावेकैकत्रयस्त्रयः । एकोवैकस्य भोक्तव्यस्त्रयाणामेक एव वेति । अत्र दैवेपितृ चेत्यनुवृत्तौ उभयत्रेति ग्रहणं सर्वत्र विभागार्थं । समं स्यादश्रुतत्वादिति न्यायात् ॥

मु० मातामहानांचैवम् ॥ १८ ॥

मातामहानामध्ये वं सर्वे पक्षाभवेयुरित्यर्थः । अतश्च मातामहश्चाहमपि पितृश्चाहवन्नित्यमित्युक्तम् । मातामहादिभिर्मातुः सापिंड्य एव मातामहश्चाहन्नित्यमिति विज्ञानेश्वरः । अतएवातिदेशान्नपृथक्कार्यमित्यन्ये । तदेतत्कर्कादिभिरनाहुतमित्युपेक्षितं । तथाच स्कन्दपुराणे । पार्वणं कुरुते यस्तु केवलं पितृहेतुतः मातामहं न कुरुते पितृहाचोपजायते । चकारो न वद्वा दशदैवत्ये मातृमातामह्योरतिदेशार्थः । वैश्वदेवे विशेषमाह ॥

मु० तत्तँव्यवैश्वदेविकम् ॥ १९ ॥

विश्वेदेवाः संत्यजेति वैश्वदेविकं । आह तं च मुभयपक्षयोरैकदेवं भवेदिति शेषः । अत इमिठमौसाधारणं भवेत्तत्त्वमिति वचनात् । अयञ्च पक्षोन्यपक्षे प्रविकल्प्यते । ततश्चैकप्रयोगपूर्वसाधकत्वं भिन्नप्रयोगापूर्वसाधकत्वं च वैश्वदेवश्चाहस्य भवतीत्यर्थः । एतत्काले च मसं पूरयित्वा भिमन्त्रयेत् । तथाच कात्यायनः ॥ कूप्यां डमंत्र

सूक्तेन कुर्यात्तोयाभिमंत्रणम् । अन्नानि प्रोक्षयेत्ते न ते नैव श्राद्धमाचरेदिति । कूष्माण्डमन्त्रा (१) यद्देवादेवेत्यादयस्त्वयः ॥

* श्रद्धान्वितः श्राद्धं कुर्वीति ॥ २० ॥

श्रद्धाधर्मकार्येषु सफलत्वनिश्चयः । तथा च मनुः । प्रत्ययो धर्मकार्येषु सद्भिः श्रद्धेत्युदाहृतेति । सा च स्मृत्युक्तधर्मापलक्षणं । अतस्तद्धर्मयुक्तः श्राद्धं कुर्वीतेत्यर्थः । तथा च विधिहीनमनुष्ठानमन्त्रहीनमदक्षिणं श्रद्धया कृतं दत्तं तद्वै रक्षांसि भुञ्जते । तथा । विभक्तिभिस्तु यत्किंचिद्दीयते पितृ देवते । तत्सर्वं सफलं ह्याहुर्विपरीतं निरर्थकमिति । अत्र श्रद्धास्ति यत्र तच्छ्राद्धमिति श्राद्धग्रहणे नैव तदन्वितत्वे लब्धे श्रद्धान्वितग्रहणं पितृकार्येषु स्मृत्युक्तधर्मादरज्ञापनार्थं । तथा च मनुः । देवकार्याद्द्विजातीनां पितृकार्यं विशिष्यत इति । अतः पितृकार्ये स्मृत्युक्तधर्मादरेण प्रयोगकुशलः स्यादिति । एतदुक्तं भवति संबन्धनामगोत्ररूपाणां यथावत्प्रयोगेण पुत्रादिदत्तं हविः पितृणां तृप्तिकरं भवतीति । तथा च । नामगोत्रं स्वधर्मं प्रापकं हव्यकव्ययोरिति । ज्ञातिश्चैष्ठ्यमवाप्नोति प्रयोग कुशलो नर इति च । नामादिप्रयोगो धर्मप्रदीपे । आवाहनार्घ्यसंकल्पे पिंडदाने तिलोदके । अक्षय्यासनयोः पादौ नामगोत्रे प्रकाशयेत् । अत्र चिंत्यते । संबन्धादिक्रमोऽस्ति न वेति । केचित्तु संबन्धादीनां हविः प्रापकत्वमेव नोच्चारक्रम इति । अथेत्वमुक्तगोत्रात्पितरमुक्तमग्निं क्रम इति । वसुदेवादीन् ध्यानमेव नोच्चार इत्येके । तत्र नाद्यः । स्मृत्युक्तक्रमवैयर्थ्यात् । न द्वितीयः गोत्रप्रयोगस्यादावविहितत्वात् । न तृतीयः । वखाद्युच्चारस्यैवोक्तत्वात् । तथा च । संबन्धमग्र्यम्ब्रूया नामगोत्रे ततः परम् । रूपन्ततो विजानीया देषधर्मः सनातनः । अन्यच्च ।

(१) २० अध्याये । १४ । १५ । १६ । मन्त्राः ।

मृत्तनामसमुच्चार्य तस्यगोत्रमुदीरयेत् । वृहस्पतिरपि । आस-
 नेच्चार्यदानेच पिण्डदानेऽपनेजने । संवन्धनामगोत्राणि यथार्ह-
 मनुकीर्तयेत् । वसुरुद्रस्तथादिस्थः पित्रादिवितयेक्रमात् । माता-
 महादिमात्वादि त्रयेचस्मृतिसहतीति । तथा । वसुरुद्रादित्य-
 रूपा ज्ज्ञाद्वार्थेत्तर्पयेत्पितॄन् । नामगोत्रेसमुच्चार्य तिलैस्तीर्थेषु-
 संयतइति । तीर्थंपितृतीर्थं । ततश्चास्त्रत्पितरमुकशर्मन्नमुकगोत्र-
 वसुरुपेतिप्रयोगः । पाद्येदुविरोधोभासते । विधिनिषेधयोर्दर्शना-
 त् । तथाच । पाद्येनामगोत्रेप्रकाशयेदित्युक्तम् । तथा । आस-
 नावाहनेपाद्ये अन्नदानेति लोदके । अक्षय्येपिण्डदानेचनामगो-
 चे प्रकीर्तयेदिति (१) । मनुस्तु निषेधति । 'हविर्मण्डलभृमौतुगोत्र-
 मुच्चरतेयदि । अकृत्तं तद्भवेदर्धम्पितॄणां नोपतिष्ठतइति । अत्रव्य-
 वस्था । स्वागतार्थेगोत्रादिनिषेधः । पादार्थे'त्तु विधिरित्यविरो-
 धः । अस्तिचस्वागतार्थविधिः पादार्धपूर्वभावी । तथाच वृद्धयान्न-
 लब्धः । दत्त्वार्धंक्षालयेत्पादावाचम्यक्षालयेत्पुनः । पूजयेत्पुनरा-
 चम्पविप्रानभ्यन्तरेनयेत् । पुराणोच्चयेपि । दत्त्वार्धंक्षालयेत्पादौ-
 विष्टरेषु निवेशयेत् । पूर्वयःक्षालयेत्पादौ पादार्धञ्चततो नयेत् । वि-
 प्रपादोदकोद्भूताम् पितॄन्निहन्ति सइति । तस्माद्विप्रानाह्वय-
 सयेन तूष्णींस्वागतार्धं दत्त्वा पादौ प्रक्षाल्याचम्यमण्डले उपवेश्य
 यथाविधि पुनः प्रक्षाल्याचम्य पादार्धंगोत्राद्युच्चार्य दद्यादिति । ना-
 मगोत्रादिकंकया विभक्त्या कुक्षप्रकाशयते त्यत आह । संवन्धेचभवे-
 त्प्रष्टीचतुर्थीसंप्रदानतइति सामान्येन प्रष्टीचतुर्थ्याः प्राप्तयोर्विशेष-
 माहस्मृतिः । अक्षय्यासनयोः प्रष्टीचतुर्थीचैव कल्पने आवाहनेदि-
 तीयाच शेषाः संवुद्धयः स्मृताइति । कल्पने संकल्पे । एतच्चान्नसं-

(१) मध्येपत्नीत्रिषु स्थाने विप्रानाम्पादशौचने । रथस्यारोहणै चैव ऋतुकाले तु मैथुने ।

कल्पादन्यत्र । तथाचब्रह्माण्डपुराणे पितृभ्यश्चततोदद्यादन्नमाम-
न्वणेनतु । अमुकामुकगोत्रैतत्तुभ्यमन्नंस्वधानमद्वति । शांखाय-
नोपि । अन्नं चासावेतत्त इत्युद्दिश्यभोजयेदिति । पठंतिच ।
आमन्त्रणेप्रतिज्ञाया मन्त्रय्येदक्षिणाविधौ । संपूर्णपृष्ठासनयोः ष-
ष्ठींकुर्यात्सदैवहीति । आसनेचतुर्थीविकल्पिता । तथा । पृष्ठाक्ष-
य्यासनेषष्ठी चतुर्थीचासनेमता । अर्वाधनेजनं पिण्ड मन्नं प्रक्षत्रवे-
नेजनं । संवुध्यैतानिकुर्वीत शब्दशास्त्रविशारदः । व्यासोपि । च-
तुर्थीचासनेनित्त्र संकल्पेचविधीयते ॥ प्रथमातर्पणोक्त्या संवुद्धि-
मपरेजगुरिति । देशभेदेनचतुर्थीव्यवस्थितेतिरत्नावलीकारः । य-
त्तुसंग्रहकृद्वाक्यं । अक्षय्यासनयोःषष्ठी द्वितीयावाहनेऽस्मृता । अ-
न्नदानेचतुर्थीस्या च्छेपाःसंवुद्ध्यःस्मृता इत्यन्नदानेचतुर्थी विधा-
यकन्तच्छेपादानविषयं । शेषाःसंकल्पव्यतिरिक्ता ऽर्घदानावने-
जनादयः । संकल्पेचतुर्थीएवविधिः । तथाचधर्मप्रदीपे । गोत्रा-
णामासनेक्ष्ये गोत्रानावाहनेतथाअर्धगोत्रे पितुस्तद्वत्पिण्डदाने-
वनेजने । अन्नसंकल्पनेगोत्र महाशर्माणएवच । क्षत्रागेदानेच-
गोत्रेभ्यो दैवेप्येतदुदाहृतमिति । क्षत्रागेसंकल्पे । दाने । द-
क्षिणायाः । एतदग्रे वक्ष्यामः । अन्यत्स्मृतिभ्योनुसन्धेयमतःश्र-
द्धान्वितइत्युक्तम् ।

मू० शाकेनापिनापरपक्षमतिक्रामेत् ॥२१॥

अनेनावश्यंश्राद्धमपरपक्षेकुर्यादित्यर्थः । तथाचपुराणसमुच्च-
ये । नहिपिण्डप्रदानेन श्राद्धंभवतिकेवलम् । पुष्पपत्रफलन्तोयं
यच्चान्यदपि किंचन । पितृनुद्दिश्यकर्तव्यं श्रद्धयापिहृतत्परैः ।
तत्सर्वंश्राद्धमित्युक्तं श्रद्धयाश्राद्धमुच्यतइति ॥ ननु पक्षश्राद्धं सूत

कादौ कर्तव्यमुतनेति । तत्रैकेनेति । प्रतिज्ञातत्वा त्वर्तव्यमि-
त्यन्ये । अत्रविचार्यते । यदिनेति तदाऽरम्भान्नियमो दोषश्चा-
समाप्तावित्यस्य वैयर्थ्यमुपक्रमभंगः स्यात् । यदिकुर्यात्तदाद्रव्याद्य-
शुद्धौ द्विजभुक्त्यादिवैषम्याद्ये नैवारम्भस्तेनैवसमाप्तिरितिन्यायवा-
धश्चस्यात् । तस्मात्सूतकादिव्यतिरेकेण मयापक्षश्राद्धं कर्तव्य-
मिति प्रतिज्ञातेन सूतकाद्यन्तेर्कर्तव्यम् । अथगृहसाधारणद्रव्येभ्यः
पक्षश्राद्धपर्याप्तद्रव्यमुद्भूतग्राह्यता नियमेनमयाकर्तव्यमेवेति प्रति-
ज्ञातेन सूतकादिमध्ये श्राद्धकर्तव्यमितियुक्तं । यथाहपाराशरः ।
पाकेनिमन्वितेषुचकरणं यथानवरात्रे कृतप्रतिज्ञेन सूतकम-
धेयमि कर्तव्यमेवमिहापीति । तथाच पुराणसमुच्चये । पक्षश्राद्धे-
समारब्धे सूतकन्निपतेद्यदि । समाहृताहिपितरः सूतकांतेवि-
सर्जयेत् । अथवाकेचनेच्छन्ति श्राद्धं तुमृतसूतके । जन्मसूतक-
मासाद्य पञ्चाच्छ्राद्धं समाचरेत् । यद्विनैवन्नरः कुर्यात्सूतकान्तेक्ष-
मापनं । प्राग्दत्तानि ननुष्येण श्राद्धेत्तासुरदृष्टयइति । इदञ्चा-
शौचांते तन्मधेया समापनं । पूर्वोक्तविषयकल्पनेन व्यवस्थेय-
मित्यविरोधः । अवश्यकहेतुमाह ॥

मू० मासिमासिवोशनमिति श्रुतेः ॥२२॥

प्रजापतिः पितृणामाहस्य वोयुष्माकम्यतिमासमशनं दत्तमतोऽप-
रपक्षेऽवश्यमेवकर्तव्यमित्यर्थः । तथाचश्रुतिः । अथैनमपितरः प्राची-
नावीतिनइति अनेनचश्रुत्युक्तहेतुनाऽपरपक्षेऽमावाश्यायामवश्य-
कर्तव्यत्वं युक्तं । तेनावहिः कुर्यादपरपक्षातिक्रमोनेत्यर्थादुक्तं । त-
दतिक्रमेचीभयातिक्रमात् प्रत्यवायस्मृतेः तथाचएतान्येववहिः स-
न्तिपञ्चमं योव्यतिक्रमेत् । तस्मान्नातिक्रमे द्विद्वान्पञ्चमं पैतृमेधिकं ।

एतानिपुत्रायु धनधान्यादिफलानि । पञ्चममपरंपक्षपैतृकं-
श्राद्धकन्तया । ननिर्वपति यःश्राद्धं प्रसीतपिटकोद्विजः । इन्दुच-
येमासिमासि प्रायश्चित्तीयतेतुसः । नियममाह ॥

मू० तदहःशुचिरक्रोधनोऽत्वरितोऽप्रम-
त्तः सत्यवादीस्यादध्वमैथुनश्रमस्वाध्याया-
न्वर्जयेत् ॥२३॥

तदहरितिपूर्ववदृजभावः । श्राद्धदिनेऽमुंसूत्रोक्तानियममनुति-
ष्ठेदित्यर्थः । शुचिःवाह्याभ्यन्तर वमन विरेकरक्तस्रावादशुद्धि-
रहितः । अथवाशुक्लवासःशुचिः शुक्लवासःस्यादितरनेन कषायादे-
र्निषेधात् । तथाचहारीतः । शुचयःशुचिवाससःस्युरिति । शंखोपि ।
शुचिःशुक्लवासा दर्भहस्तःस्वागतमितिब्रूयात् । श्राद्धकृच्छुक्लवासा-
स्यादितिच । पुराणसमुच्चयेपि। एकवासास्तुयः कुर्यात्पिण्डनिर्वनप-
न्नरः । कषायवस्त्रसम्बन्धितः तद्वैरक्षांसिभुंजते । धर्मप्रदीपेपि ।
कषायखण्डवस्त्रं च रक्तवस्त्रं तथैवच । एवंविधानि वस्त्राणि वर्ज-
येच्छ्राद्धकर्मणि । अप्रमत्तः स्मृत्युक्तकालादौ सावधानः । तथा-
च । कालहीनंक्रियाहीनं मन्त्रहेनं व यज्ञवेत् । पात्रहीनंचयच्छ्रा-
द्धं भागन्तरक्षसांविदुरिति । स्वाध्यायः श्राद्धमंत्रजपाद्यतिरिक्तः
पाठः मैथुने पूर्वदिनेपि । शेषंस्पष्टं । नेयंविधिनिषेधेयत्ता अपितुहि-
त्वावम् । अतोऽन्यदपिविधिनिषेधरूपं स्मृत्युक्तं ग्राह्यं ॥ तथाचदा-
तभोक्तोर्नियमाः ॥ नचाशुपातयेज्जातुनशुष्काङ्गिरमौरयेत् । नचो-
द्दीक्षेतभुञ्जानं नचकुर्वीतमत्सरं । नदीनोपिनवाक्रुद्धो नचैवान्यम-
नानरः । एकाग्रमाधायमनः श्राद्धं कुर्यात्सदाबुधइत्यादि । अचचि-
न्यते । विधवापरस्व्यादीनां श्राद्धपाकेकर्तुंश्च तिलकेकिमधिकार-

उतनेति । अत्रैकेसमाचारादधिकारवृत्तिः । तन्म । स्मृतिविरुद्धावा-
 चारस्याप्रामाण्यात् । तथाचव्यासः । गृहिणीचैवसुस्नाता पाकंकु-
 र्यात्प्रयत्नतः । निष्पन्नेषु च पाकेषु पुनः स्नानं समाचरेत् । रजस्व-
 लाञ्छपाखण्डौ पुंश्चलीं पतितौ तथा । त्यजेच्छूद्रांतथाबंध्यां विधवा
 मन्यातथैव च रजस्वलां त्रिदिनादूर्ध्वमनिवृत्तरजस्कां । यत्तु ब्रह्म-
 पुराणे । व्यंगकणीचतुर्थाहस्नातामपिरजस्वलां । वर्जयेद्वाइपाका-
 र्थं समातृपितृवंशजामित्यन्यस्त्रीविधायकं । तत्पत्न्या असंभवविषयं ।
 अतएव पठंति । मोहस्वसावधुः कन्याशूद्राग्नौ च परस्त्रियः । पितृपाक-
 न्नकुर्वीत निराशाः पितरोगताः । तथा । आइस्यपाको विधवा परस्त्री
 नटप्तिमंतः पितरो न देवा इत्यादि । व्यंगकणीं वृटितकणीं । तिलके-
 त्वापस्तंबः । ललाटे पुण्ड्रकं दृष्ट्वा स्कंधे मालांतथैव च निराशाः पितरो यां-
 ति शापं दत्वा सुदारुणमिति । एवं च सकलशिष्टाचारविरोधमालो-
 क्य पुण्ड्रकनिषेधस्य वर्तुलतिलकविषयत्वमिति केचित् । तदन्येन क्षमं-
 तेत्तस्मात्तिर्यक् पुण्ड्रं तथा दृष्ट्वा स्कंधे मालांतथैव च निराशाः पितरो
 यांति दृष्ट्वा च दृष्टलौपतिमिति वाक्यात् । अतो नतिर्यक् पुण्ड्रः । तदपि ना-
 सामान्येन तिलकमात्रनिषेधात् । तथा च पठंति । वामहस्तेषु ये र्भा-
 गृहे रंगवलिस्तथा । ललाटे तिलकं दृष्ट्वा निराशाः पितरोगता इति ।
 रंगवलिश्चतुष्कं । सूच्यंतरं । ललाटे तिलकं दृष्ट्वा स्कंधं मालाङ्कितं-
 तथा । कांस्यपात्रे हविर्दृष्ट्वा निराशाः पितरोगताः । सत्यव्रतोपि ।
 वर्जयेत्तिलकं भालेशाङ्काले कदाचन । तिर्यग्वाप्यूर्ध्वं पुण्ड्रं वा धारय-
 न् आइ कर्मणीति । एवञ्च आइ हेतिलकमात्रनिषेधो युक्तः । प्रयोगे
 पत्राशीः प्रार्थनानन्तरं तिलकविधानात् तथा च दृष्ट्वा च वल्बः । आ-
 चितारश्च नः सन्तु माचर्या च मृकश्च नाततस्तु तिलकं कुर्यान्मन्त्रेणा-
 नेन भक्तितः । नित्यानुष्ठानसन्निष्ठाः सर्वदा यज्ञबुद्धयः । पितृमातृप-

राः सन्तः सन्तः सन्तः सन्तः सन्तः सन्तः सन्तः सन्तः सन्तः सन्तः । न वा नालोचितपरम्परानुष्ठा-
नं ग्राह्यं । चतुर्विंशतिमतेपि । अतिर्वेदविरोधेन परिचयो ज्ञायथा
भवेत् । तथैव लौकिकस्वास्थ्यं स्मृतिबाध्यं परिचयजेत् । पठन्ति च ।
दुर्ध्वं पुण्ड्रं न्विपुण्ड्रं स्वाचन्द्राकारमथापि वा । आङ्कर्तान्कर्तव्यं
यावत्पिण्डान्निर्वपेदिति । यच्च भस्मीभवति तत्सर्वमूर्ध्वं पुण्ड्रं स्मि-
नाकृतमिति । तत्संख्यादिकर्मविषयतिलकपरमित्यविरोधः ॥

* आवाहनादिवाग्यतश्चौपस्यशनात् ॥ २३ ॥

आउपस्यशनादिति छेदः ॥ ततश्चावाहनमारभ्यचतुर्दशानपर्यंतं स्म-
न्त्ववर्जं आङ्कर्तृमौनमाचरेदित्यर्थः । तस्मिन्नेतुवैष्णवं मन्त्रजपोवि-
ष्णुस्मरणस्वाप्नायश्चित्तम् ॥

मू० आमन्त्रिताश्चैवम् ॥ २४ ॥ १॥

तेष्वेवमक्रोधादिस्मृत्युक्तविधिनिषेधानाचरेयुर्नित्यर्थः । तथा च शंखः ।
ऊंकारेणापियो ब्रूयादस्ताद्वापि गुणान्वदेत् । भूतलाच्चोद्वरेत्पा-
वं मुंचेदस्तेन वापितत् । प्रौढपादो वह्निः कच्छो वह्निर्जानु करोष्यथा
अंगुष्ठेन विनाशनातिमुखशब्देन वा पुनः । पीतावशिष्टं तोयादि पु-
नरुद्धृत्य वापिवेत् । खादितार्धं पुनः खादेन्मोदकानि फलानि च ।
मुखेन वा धमेदन्त्रं निष्टौवद्भोजनेपि वा ॥ इत्यमग्नं द्विजः आङ्गे-
दत्वागच्छत्यधोगतिम् । पवित्रपाणयः सर्वं ते च मौनव्रतान्विताः ॥
उच्छिष्टोच्छिष्टं संगं वर्जयंतः परस्परं । न स्पृशेद्वामहस्तेन भुञ्जा-
नोन्नङ्गदाचन । पादयोर्न शिरोन्यस्तिनपदाभाजनं स्पृशेदित्यादि ।
एवमित्यतिदेशेन भोक्तृणामपि कर्तव्यं लोच्यारेप्राप्ते तन्निषेधा-
दग्नौकरणादिकुरुष्वेत्यादिप्रतिवचनमननुज्ञातम् ॥

इति श्री आडकाशिकायां प्रथमाकण्डिका समाप्ता ।
इदानीम्प्रयोगमुपक्रममाणः परिभाषते

* दैवपूर्व७श्राद्धम् ॥ १ ॥

परिभाषेयमपवादव्यतिरिक्तेष्ववतिष्ठते ॥ श्राद्धमितिपितृङ्गर्म ॥
दैवपूर्वमितिपदार्थानुसमयोक्तिः । ननुऋत्यन्तरोक्त काण्डानुसमयो
नर्थकः स्यादितिचेत् ॥ पदार्थानुसमयानुक्तिविषयत्वेन सार्थक-
त्वात् । आह च । सकलोगुणकाण्डश्चेदेकैकस्यप्रयुज्यते । सहत्वा
प्रापकोनैव प्रयोगवचनोभवेदिति । अतश्चापवादवर्जम्पादप्रक्षा-
लनादिसर्वकर्मदैवपूर्वभवतीत्यर्थः । तथा । दैवपूर्वभवेच्छ्राद्धवर्ज-
यित्वा विसर्जनम् । प्रश्नञ्चदक्षिणांचैव भुक्तेवाचमनम्बिना ॥ तथा
हस्तोच्छिष्टापनयनमाह्वानञ्चविसर्जनम् । दक्षिणासौमनस्य-
ञ्च विनान्यदैवपूर्वकम् । धर्मप्रदीपे पि । विसर्गश्चुलुकश्चाग्नौ
करणम्पङ्क्तिवारणम् । करशुद्धिरपोशानम्पितृपूर्वाणिषट्सदेति ।
देवलोपि । दत्तयत्क्रियते कर्म पैतृकं ब्राह्मणान्प्रति । तत्सर्वंतव
कर्तव्यम्बैश्वदेवस्यपूर्वकमिति ।

मू० पिण्डपितृयज्ञवदुपचारःपित्रो ॥२॥

पितरोदेवतास्येतिपित्रो ॥ वायष्टुपितृषसोयदिति (१) यत्प्रत्ययः ।
ततश्चपितृकर्मपिण्डयज्ञवत्कार्यमित्यर्थः । अनेनापसव्यं दक्षिणाभिमु-
खवामजानुपाताद्यतिदिष्टं ॥ अतोनीविवंधनादिपिण्डोत्थापनांतं
पिण्डपितृयज्ञधर्माभवंति । अत्रसंदेहः । किंनीविवंधनंवामभागे
दक्षिणेवेति । तत्रोभयथाचारदर्शनाद्यथामंप्रदायंव्यवस्थेतिपारि-

जातः । तत्रविचार्य । किंनोविदैर्वंकर्मपितृवेति । आद्ये पिण्डपि
तृषण्णुष्ठानविरोधः । अथ्ये उपवीतिवदपसव्यांगउपनीतेति । त-
थाचमनुः । प्राचीनावीतिनासम्यगपसव्यमतं द्विणा । पित्रामानि-
धनात्कार्यविधिवद्भर्माणिनेति । अत्रप्राचीनावीतिनेत्यपसव्ये-
प्राप्तेऽपसव्यग्रहणीवीबंधनं वामजानुपातादिप्राप्तार्थं । किंच
सर्वकर्मपसव्ये नदक्षिणादानवर्जमिति स्मृतिः । पिण्डपितृयज्ञ
वदित्यतिदेशोपि । यत्तुकात्यायनवाक्यं । नीवीकार्यादशागुप्ति
वर्मकुक्षौकुशैः सदापितृकर्मणिचैवोक्ता वेदवेदांगवेदिभिरिति ।
तदाभ्युदयिकविषयं । पठंतिच । दशा संगोपनं नीवीसाचार्ये मा-
नुषीस्मृता । पितृणांदक्षिणे पार्श्वे विपरीताचदैविके । वृद्धयाज्ञ
वत्क्योपि । दक्षिणे कटिदेशेतु तिलैः सहकुशत्रयं । तर्जयंतीहदै-
त्यानां यथानृणांयमस्तथेति नन्वेवंनीवीकार्येति वीक्ये सदाशब्दा-
न्नैवंविषयइति चेत् । नीवीबंधनस्य रक्षोघ्नत्वाद्दैवपितृमानुषक-
र्मसुयथोचितं । दशागोपनस्य विहितत्वेन सदाशब्दस्यैव मर्थत्वात् ।
तथाचश्रुतिः । दक्षिणतद्ववहियन्तीविरितिलिंगं । लिङ्गादपिवि-
धिर्ज्ञेयइतिवाक्यात् । नचश्रुतिविरुद्धास्मृतिः प्रमाणं श्रुतिस्मृति-
विरोधेतुश्रुतिरेवबलीयसीतिवाक्यात् । तस्माद्दक्षिणाङ्गएवनीवि-
बंधः । पिण्डब्राह्मणभाष्येपि । अथनीविमुद्गृह्य नमस्करोतीति
कण्डिकाव्याख्याने नाभेर्दक्षिणतएवनीविस्थानमुक्तम् । तद्वन्मन्त्रः
पराशरोक्तः । यथा । निहन्मिसर्वयदमे ध्यक्तुंवेदताश्चसर्वेश्वरदा-
नवामया । यच्चाश्चरक्षांसिपिशाचगुह्यका हतामयायातुधाना-
श्चसर्वे ॥

मू० द्विगुणास्तुदर्भाः ॥ ३ ॥

सामग्र्यपत्रक्षणमिदम् । तथाचपुराणे । उपमूलसकृत्तलूनकु-

शांस्तत्रोपकल्पयेत् । यवांस्तिलान्दसौकांश्चमयः शुद्धौसमाहृताः ।
 पार्श्वराजतताम्राणि पात्राणिस्थुः समिन्मद्युः । पुष्पधूपसुगन्धादि
 क्षौभमूलञ्चमेक्षणमिति । दृष्टौ रासनानि एतदाहरणमाह । उद-
 पात्रं चकाशञ्चमेक्षणं सुक्खुवादिनां आहरेदपसव्येन सर्वदक्षि-
 णतः शनैरिति दर्भाः । समूलकुशाः । तथाचवमः । समूलास्तु भवेद्द-
 र्भाः पितृणां श्राद्धकर्मणि मूलेन लोकान्चयति शक्रस्य तु महात्म-
 नः । हारौ तोपि । दक्षिणदिशातः समूलकुशानाहरेदिति । तु शब्दो-
 विशेषार्थः । तेन पिण्डाधस्तनकुशवर्जं स-ल्लाङ्घिगुणाः पिच्ये ।
 दैवमेतथाद्योस्तु नृजवोभवन्तीत्यर्थः तथाच श्रुतिः ॥ अथ सकृदा-
 क्षिन्नाग्युपमूल(१)न्दिनानि भवन्ति । स्मृतिरपि । उपमूलं सकृ-
 क्षिन्ने वहिः पिण्डपुशस्यते । कात्यायनोपि । सपिण्डीकरणं याव-
 द्दजुर्दर्भैः पितृक्रिया ॥ सपिण्डीकरणादूर्ध्वं द्विगुणैर्विधिवद्भवेत् ।
 देशानामृजवोदर्भाः पितृणां द्विगुणाः स्मृता इति ॥

मू० पवित्तपाणिर्दद्यादासीनः सर्वत्र ॥ ४ ॥

पवित्तमुपगृहीतलक्षणं । सर्वत्र द्वैत्रेऽप्येव । तेनोभयत्र प-
 वित्तोपग्रहपाणिं रासीनश्च दद्यादित्यर्थः । तथाच मनुः । पिच्य-
 मानिधनात्कार्यं विधिवद्दर्भपाणिनेति । अथवा पवित्तपाणित्वमा-
 सीनत्वञ्च स्मृतिप्राप्तमेवात्र सार्धकत्वेनानुवदति । तेन वामहस्ते कु-
 शादानत्वमावाहने चासीनत्वं निषेधतौत्यर्थः । तथाच पठन्ति । वा-
 महस्ते गदादर्भा गृहे रङ्गवलीस्तथा । ललाटे तिलकं दृष्ट्वा निराशाः
 पितरोगता इति । किञ्चावाहनेनागच्छत्सु पितृषु कर्त्तुं रासीनत्वं
 न युक्तं तथाच पिण्डदाने पुराणोक्तं लिङ्गं । अथ प्राञ्जलिरुपस्थाय स्थि-
 त्वा चावाहयेत्पितृनि । मन्त्रार्थानुगृहोपि । आयन्तु नः पितरः

(१) सकृदक्षिणानि । एकयत्ने न कदा निर्वाह्यं । कुतश्च दितानि । उपमूलं दि-
 नानि भवन्ति उपमूलसमीपे दिनानि केदितानीत्यर्थः । दातुं केदनेनैव यम् ॥

सोम्यामोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैरिति । किञ्चासौनोदद्या-
दिति दानेऽसौनत्वं न पुनरावाहनादुपस्थाने पीतिसूत्रार्थः ॥

प्रश्नेषुपङ्क्तिमूर्द्धन्यं पृच्छतिसर्वान्वा ॥ ५ ॥

पङ्क्तिमूर्द्धन्यः पित्र्ये प्रथमोविप्रः । लिङ्घ्येऽलङ् । वाशब्दोऽयव-
स्थितविकल्पस्तुल्य विकल्पस्याष्टदोषत्वात् । पृच्छास्याशौः प्रार्थ-
नादिषु सर्वेऽयवपङ्क्तिमूर्द्धन्यइत्यर्थः । तथाचपुराणे । दौहस्तौयु-
ग्मतः कृत्वाजानुष्यामन्तरेस्थितौ । सप्रश्नयश्चोपविष्टः सर्वान्पृच्छ-
द्विजोत्तमानिति । तुल्यविकल्पोयमिति कर्कादयः । नचप्रश्नेषु प-
ङ्क्तिमूर्द्धन्यं सर्वान्वैतावतिवाच्येष्ट्यतीति गौरवंस्मृत्यन्तरोक्तमवि-
ध्यर्थम् । प्रश्नेनैवतत्सिद्धेः । तथाचष्टदशान्नवत्स्यः । पृच्छादशान्नम-
र्षपूरणमत आवाहनार्थक्रमो न्युजंवाचनभोजनाग्निहवनं शेषो-
जपःकल्पनम् । दत्त्वान्नं जपतृप्तिपिण्डयजने सुप्रोक्षिताक्षय्यके
आशौःपुण्ड्रकवाचनार्थं चक्षुनन्दानं विसर्गस्तुतिरिति । आदिना दे-
शकालगोवादिस्मरणविकिरादि पिण्डार्चनान्तंगृहीतम् । अवा-
न्योपिस्मृत्युक्तःक्रमः । तथाच । आहारन्नेगयांध्यात्वा ध्यात्वादे-
वञ्चनार्दनम् । स्वपितृन्मनसाध्यात्वाततःश्राद्धं समारभेत् । अग्नि-
ष्वात्ताःपितृगणाः प्राचीरक्षन्तु मेदिशम् । तथावर्हस्पदःपान्तु या-
म्यायेपितरस्थिताः । प्रतोचीमाज्यपास्तव दुदौचीमपिसोमपाः ।
ऊर्ध्वतस्तव्यभारक्षे तक्षव्यवालो नलोप्यधः । रक्षोभूतपिशाचेभ्य
स्तथेवासुरदूषकः । सर्वतश्चाधिपस्तेषां यमोरक्षाङ्करोतुमे । प्राणा-
यामन्ततःकुर्या ज्ञायच्याःस्मरणन्तथा । श्राद्धकर्तास्मौतिवदे दि-
प्रैर्वाच्यङ्कुरुष्वथ । देवताभ्यःपितृभाषेत्यादे रादिमध्यावसानेषुजपः
आदिमध्यावसानेषु विराट्क्षुपेद्दुष इतिवाक्यात् । एवंपरिभाष्य
कर्मोपक्रमते ॥

मू० आसनेषु दर्भानास्तीर्य ॥ ६ ॥

पादासनन्दौपोपलक्षणम् । तथाचकारथायनः । विष्टरार्थकृ-
 शान्दया द्विप्राणाम्यादमृततः । ब्राह्म्यञ्च । पृथक्पृथक्त्वासनेषु
 तिलतैलेनदौपकाः । अविच्छिन्नाचिषोदेया स्तेवरक्षाद्विजोत्तमै-
 रिति । आसनान्याहस्मृतिः । शमीकार्थं शङ्खीस्र कदम्बोदार-
 णस्तथा । पञ्चासनानि शस्तानि आर्चयेद्देवार्चने तथा ॥ श्रीपर्णीवा-
 रुणक्षीरोजम्बूकामृकदम्बजम् । सप्तमं वाकुलं पौठं पितृणां दत्तसज्ज-
 यमिति । ततश्च सदौपासनेषु पादासनं दत्त्वासनेषु दर्भान्दद्यादि-
 त्यर्थः । द्वितीयमेतदास्तरणमतोऽस्मात्पूर्वं अपि दर्भानास्तीर्योपवेश-
 येदिति । तथा देवीपुसणे । कुशोत्तरे तिलास्तीर्णं आसने लोहव-
 र्जिते । दाता च स्वासने पूते विमानावेशयेत् सुधीरिति । नग्वास्तृतेषु
 पुनरास्तरणं कुतः । पूर्वास्तरणस्य धर्ममात्रत्वादित्येके विप्रानुत्था-
 योत्थाय कर्तव्यमित्यन्ये द्वितीये उपवेशितानामुत्थानानुपपत्तिः ।
 तच्चात्पूर्वमास्तरणमात्रमिह तद्दानमित्यपौनरुक्त्यं । अतश्चास्ती-
 र्यदत्त्वे त्तार्थः । संकल्पत्वात् । तथाच साम्बपुराणे । कृताङ्गिः शौचा-
 नाचम्य सूपविष्टान्यथाविधिः । दद्याद्दर्भासनं तेभ्यो वैश्वदेवत्यपूर्-
 वकं आसनेष्विति । हस्ते कुशान्नदद्यादिति सप्तम्यर्थः । दर्भाश्चैवा-
 सने दद्यान्तु पाणीकदाचनेत्युक्तेः । एतद्देवेदक्षिणतः पित्येवाम-
 तः । पितृणामासनं दद्यात् वामपार्श्वे कुशान्सुधीः । दक्षिणे चैव-
 देवानां सर्वदा आदकर्मणीति वाक्यात् । अत्रैक आसनदाने स्वधा-
 प्रयुजंति । स्वधाशब्दप्राप्तेः तन्न तस्यासनादौ निषेधात् । तथाच-
 हेमाद्रिप्रवृत्तौ । पितृभ्यो निखिलं दद्यात् स्वधाकारेण धर्मवित् । अ-
 क्षय्यमासनं चैव वर्जयित्वा धर्ममेव च । धर्मप्रदीपेऽपि । आसनाह्वा-

नयोरर्थे तथाक्षय्येवनेजने । क्षयोस्वाहास्वधावाणीं नकुर्याद्व्र-
वीन्मनुः । तेनाग्निमित्पितुरमुकशर्मणोमुकसगोत्रस्य वसुरूपस्येदमा-
सनमस्त्वितिप्रयोगः । केचि त्दकारवर्जं गोत्रमुच्चरन्ते । तन्नतत्स-
हितस्यैवोक्तत्वात् । तथा । सकारेणहिवक्तव्यं गोत्रं सर्वत्रधीमता ।
सकारःकुतपोज्ञेय स्तस्मादग्रत्वेनतस्मदेदिति ॥

* विश्वान्देवानावाहयिष्यद्भूतिपृच्छति॥७॥

स्पष्टं । यवानादायोक्तव्यनिरंगुष्ठं द्विजस्तं धृत्वेदं कार्यं । तद्वाचय-
मः । यवहस्तस्ततो देवा न्विच्छाप्यावाहनं प्रति । शाकटायनोपि ।
आवाहनञ्च कर्तव्यं द्विजर्चीकारपूर्वकं । गोभिलोपि । यवाना-
दायोकारं कृत्वेति । अंगुष्ठंगृहीत्वावाहयंत्येके । तन्न । निर-
ङ्गुष्ठंगृहीत्वा तु विश्वान्देवान्समाह्वयेदिति ब्रह्मांडोक्तेः । ततः
सव्योदङ्मुखं दक्षिणञ्जान्वाच्य ऋजुकुशानादायोमित्युक्त्वा पु-
रुषार्द्रवादिप्रयोगंकुर्यादित्यर्थाः । नन्वर्घान्पूरयित्वा वाहयेदु-
तावात्पूरयेदिति । उभयथावाक्यदृष्टेः । तथाहि । उमामहे-
श्वरसंवादे । कुशां वुनाभ्राक्ष्यगृहं दत्त्वासनमनुक्रमात् । निवेश्य-
तवविप्रान्वै कुर्यादर्घ्याभिपूरणम् । शन्नो देव्यापयः क्षिप्त्वा यवोसी-
तियवानपि । गंधंपुष्पंचतूष्णिंस्या दयदेवान्समाह्वयेदिति । पुरा-
णोच्चयेष्वर्घं सम्पूर्यावाहनमुक्तम् । याज्ञवल्क्यास्त्वावात्पूर-
यति । पाणिप्रक्षालनन्दत्वा विष्टरार्थान्कुशानपि । आवाहदे-
त्यनुज्ञातो विश्वेदेवासहचर्युवा ॥ यवैरन्ववकौर्घ्याय भाजने सप्रवि-
त्ये । शन्नो देव्यापयः क्षिप्त्वा यवोसीतियवांस्तथेति । यादिव्याह-
तिमन्त्रेण हस्तेष्वर्घ्यं विनिक्षिपेत् । अपसव्यं ततः कृत्वेत्यादिसूत्रका-
रोप्यावात्पूरयति । अत्रविरोधः स्मृतिपुराणयोः । स्मृतेः प्राव-

ल्या तसूत्रोक्तत्वाच्चा वात्स्यापूरणमिच्छयेके । नेत्यन्ये । स्मृतावेवार्धपू-
 रणस्य पूर्वमुक्तत्वात् । तथाचक्रमपरा वृद्धयाज्ञवल्क्यस्मृतिः । पृच्छा-
 द्यासनमधपूरण मतश्चावाहनार्धक्रमवृत्तिः । एवंसति दर्भानास्तौर्य
 विश्वान्देवानावाहयिष्यद्वितिसूत्रमता याज्ञवल्क्यवचनेनैकवाक्यता
 मुनिनाऽसनार्धदानांतं याज्ञवल्क्योक्तकांडानुसमयस्याहता ऽन्य-
 पदार्थानुसमयइतिज्ञापितम् । अन्यथा वाजसनेपि परयावृद्धयाज्ञव-
 ल्क्य स्मृत्यासूत्रम्विरुध्येत । तथाचासनन्दत्वा वृद्धयाज्ञवल्क्यः । अ-
 र्धपावंसमानौय कुशहयसमन्वितं । शन्नोदेत्यापयःक्षित्वा यवोसी-
 तियवान्क्षिपेत् । गन्धपुष्पादिसंपूज्य पृक्षांकुर्याद्विचक्षणः । पूर्ण-
 मस्तिवतितैरुक्ते विश्वेदेवान्समाह्वयेत् । ततस्तुक्रमयोगेन पितृ-
 र्धन्तु निवेदयेत् । कुशांशुतिलसंयुक्तं तिलोसीतितिलान्क्षिपेत् ।
 शन्नोदेत्यापयःक्षिपत्वा शेषपूर्वववदाचरेत् । स्वनामशर्मणोर्वैस्तु
 उशन्तमवेतिवैततः । आवाहयेत्पिण्डं भक्त्याजपेदायंतुनः पुनरि-
 ति । ततश्चासनन्दत्वा र्धं संपूय संपूर्णं पृक्षांकृत्वा वात्स्या र्धदत्त्वे-
 ति वैश्वदेवकांडं कृत्वाऽऽ समादिपितृकांडंकुर्यादितिक्रमः । वैज-
 वापीयनोष्यर्धानंतरं पदार्थानुसमयमाह । तस्योपरिकुशान्दत्त्वा
 प्रदद्याद्वैवपूर्वकं । गन्धपुष्पाणि धूपं च दीपवस्त्रोपवीतकमिति ।
 अन्यथा कथन्दैः पूर्वमिति पदार्थानुसमयमुपक्रम्य विश्वान्देवाना-
 हयिष्यद्वत्यादिना तमेवपुरावक्ष्यदित्यालंबहुना । अथपदार्थानुस-
 मयकाण्डानुसमयोर्विकल्पः । विश्वेदेवानाहादित्यपुराणे ।
 विश्वेदेवौ क्रतुर्दत्तः सर्वास्विष्टिपुकोर्तितौ । नित्यन्नादीमुखयाद्वे
 वसु सत्यौ च पैतृके । नवान्नलभने देवौ कालकामौ सदैवहि ।
 अपिकान्यागतेसूर्ये आद्वे च धुरिलोचनौ । पुरूरवार्द्रवौ चैव विश्वे
 देवौ च पार्वणे । नवान्नलक्षणे पैतृकेनवान्ननिमित्ते आद्वे । क-

ग्वागतेसूर्पइति केवलमाप्यध्याप्रियमाणे । उभयबुधयाकृतेतु
पुरुषार्थार्थवावेव । (१) गोरोहणेनपशुकामस्येतिवन्नित्यकर्माश्रयणे
नगुणकृद्विधेरितिपारिजातः ॥

* आवाहयेत्यनुज्ञातो विश्वेदेवासऽआ
गतेत्यनयावाच्यावकीर्य विश्वेदेवाःशृणुतेम
मितिजपित्वा ॥ ८ ॥

आवाहयेतिद्विजैराज्ञतो विश्वेदेवासऽआगतेत्यनयार्चावा-
च्यावकीर्य विश्वेदेवाः शृणुतेममित्यृचंजपेदित्यर्थः । अतावकी-
र्येति यद्यपि द्रव्यमंत्रयोरनुपदेशस्तथापियवै रोषधयः समवदंते-
तिमंत्रेणच प्रदक्षिणमुदङ्मुखेनार्वाकिरणं द्रष्टव्यं । तपायनः ।
यवहस्तस्ततोदेवा न्विज्ञायावाहनं प्रति । आवाहयेदनुज्ञातो वि-
श्वेदेवासइत्यृचा । विश्वेदेवाः शृणुतेममितिजपत्वा ततोच्चतान् ।
ओषधयइतिमंत्रेण विकिरेत्ताग्रप्रदक्षिणमिति । अवावाच्याववा-
ग्विकिरन् ततो जपइतिक्रमः । उदङ्मुखस्तुदेवानां पितृणां द-
क्षिणामुखः । प्रदक्षिणं तुदेवानां पितृणामग्रदक्षिणमितिच । न-
न्वपहताइति तिलानवकीर्यैत्ववकिरणेऽपहतेतिमंत्रस्य विहित
त्वात् कथमोषधइति । न । विश्वदेवस्य स्वतएवरजोध्नत्वादपहता
इत्यस्यैवैथर्यात् ॥ तथाच गोभिलसूत्रं । ओषधयः समवदंतेति ।
अथवा मंत्रानुपदेशा तूष्णीमेवावकिरणं । तथाचखादिरगृह्यं ।
तूष्णीं यवानवकीर्येति ॥

(१) आहविशेषे विश्वेदेवानामज्ञानेहहस्तातिः

उपतिन्नामचेतेषां त्रिविदुर्भेदिजातयः अयमुच्चारणीयस्तेर्मन्त्रप्रज्ञासमन्विते आगच्छ-
न्तु महाभागा विश्वेदेवामहावलाः येयत्तु विहिताः आहोसावधाना भवन्तु ते

*पितृनावाहयिष्यद्वतिपृच्छत्यावाहयेत्य-
नुज्ञातऽउशन्तस्त्वेत्यनयावाह्यावकीर्यायन्तु
नद्वतिजपित्वा ॥

पितृनावाहयिष्यद्वतिपृष्ट्वा वाहयेति द्विजैराज्ञप्त उशन्तस्त्वे-
त्यनयर्चावाह्यापहतद्वति तिलानप्रदक्षिणमवकीर्यायन्तुनद्वत्यृ-
चन्तिष्ठन्नवकीर्यजपित्वा । पितृनिति मातामहोपलक्षकम् । तत-
श्चापसव्येन दक्षिणामुखो द्विगुणकुशतिलानादाय वामजानुं-
पातयन्नोमित्युक्त्वाऽस्मत्पितृपितामहप्रपितामहानमुकशर्मांमुक-
सगोत्वान्वस्वादिरूपानावाहयिष्यद्वति पृष्ट्वावाहयेत्ति द्विजैराज्ञप्त
उशन्तस्त्वेत्यनयावाह्यापहता इति तिलानवकीर्यायन्तुनद्वत्यृच-
तिष्ठन्जपेदित्यर्थः । नन्वत्रापितृणीमोषधयद्वतिमन्त्रेण चावकि-
किरणमिति । न । रक्षोघ्नत्वादवकिरणेऽपहतेत्यस्यैवयुक्तत्वात् ।
अत्रोदकस्पर्शः राक्षसत्वात् । अत्रैकेविवहुत्वेप्रतिद्विजमेकवचन-
प्रयोगेणपित्वादीनावाहयन्ति । तत्पितृनावाहयिष्यद्वति सूत्रो-
पदेशात्पितृहविषेअत्तवद्वति मन्त्रलिङ्गाच्चोपेक्ष्यं । ननुमातामह-
श्राद्धे मन्त्रोहोस्तिनवेति ॥ अत्रैकेपितृभ्यः स्वधायिभ्यः अत्रपि-
तरः आयन्तुनः पितरद्वत्यादि । एवंप्रदक्षिणावृत्कोट्टद्वौनान्दी-
मुखाग्निपितृन् । स्वपितृभ्यः पितादद्या नमस्येहंपितृच्छ्राद्धे
इत्यादिश्रुतिस्मृतिवाक्येषुपितृशब्दस्यैवप्रयोगान्मातामहश्राद्धेपि
पितृशब्दप्रयोगएवमन्त्रोहद्वति । इदं विचार्यं । यदिश्रुत्यादिवा-
क्यस्यपितृशब्दप्रयोगेणैव सिद्धिस्तर्ह्यस्मन्मातरस्मन्मातामहेत्यादि
प्रयोगेष्वपिपितृशब्दोक्तिरेवास्तु । अथमन्त्रेष्वन्यथावृत्तिनिषेधो-
नैतेषुप्रयोगेष्वितितर्हिमन्त्रोह प्रतिपादकवाक्यानावैयर्थ्यस्यान्म-
न्त्राणांवा यथाप्रयुक्तिरित्युभयथापि यथाविहितमन्त्रोहः सिद्ध-

इति । तथाच कात्यायनः । यथार्थमूहश्चोदिते । न प्रकृतावपूर्वत्वा
दुद्विर्वचनादिति । विष्णु रपि । आवाहनेस्वधाकारे मन्वाजह्या
विसर्जने । अन्यकर्मण्यनूह्यास्युरेषश्चाद्विधिः स्मृतः सातामह्या-
नामप्येवं श्राद्धङ्कुर्याद्विचक्षणः । मन्वोहेनयथान्यायं शेषाणांम-
न्ववर्जित मिति । अपिचैकोद्दिष्टेऽपि स एव । एकवन्मन्वानूहेनैको
द्दिष्टइति शेषाणांमन्ववर्जित मिति । पितृमातृमातामहव्यति-
रिक्तं पितृव्यभावादीनामूह्यं मन्ववर्जितमित्यर्थः ॥

मू० यज्ञियवृक्ष चमसेषु पवित्रान्तर्हितेष्वेकै
कस्मिन्नप आसिञ्चति शन्नोदेवीरिति ॥१०॥

यज्ञमर्हन्ति यज्ञियाः पालाशादयः । यज्ञत्विर्गभ्यांघखजावि-
ति घप्रत्ययः । तथाच श्रुतिः । ते वै पालाशास्युरित्युपक्रम्य यदि-
पालाशान्नविन्दे दथोऽपि वैकङ्कतास्यु र्यद्वैकङ्कतान्नविन्दे दथो-
ऽपि कार्ष्ण्यमथास्युः यदि कार्ष्ण्यमयान्नविन्दे दथोऽपि वैल्वास्यु
रथोऽखदिरा अथोदुम्बरा एते हि वृक्षा यज्ञिया इति ब्रह्मपुराणे ।
पालाशाश्वत्थ न्यग्रोध प्लक्षवैकङ्कतोद्भवाः । कार्ष्ण्योदुम्बरो-
धिल्लश्चन्दनः सूरलस्तथा शालश्च देवदारुश्च खादिरश्चैति यज्ञि-
याः । चमसपात्रमभ्य प्रमाणमेक प्रयोजनापेक्षं । अर्थात् परिमा-
णमिति परिभाषातः धातुमयपरिमाणं वाहीन निषेधात् । पवि-
त्राण्यनन्तर्गभिणं साग्रमिति कात्यायनोक्तानि । पवित्रान्तर्हि-
तेति अर्घपात्रे पवित्रं निधातोदकं क्षिपेदिति ज्ञापयति । कुशं
विनोदकस्याप्रयत्नात् । तथाच श्रुतिः । बृहो ह वा इदं सर्वं बृत्वा शि-
खइत्तारुपक्रम्य तदेव सामतीभ्यां पवित्राभ्यामपहन्तीत्युपसंहारः
एकैकास्मिन्निति मन्वावृत्तिदर्शकं । ततश्च पालाशादि दारुपा-

दे पुयथादैवतसंख्ये पु दैवेप्रागग्रे सव्यादिना प्रागग्रपवित्रद्वयं पि-
त्रो दक्षिणाग्रेषु दक्षिणासंख्ये ष्वपसव्यादिना पवित्रत्रयं दक्षिणाग्र
निधाय शन्नवृत्तिमन्त्रेण प्रतिचमसंमंत्राष्टत्याग्न्यगन्तेऽपञ्चासिञ्चे-
दित्यर्थः । तथाचविष्णुः । दक्षिणाग्रेषु दक्षिणासंख्येषु चमसेष्वप-
ञ्चासिञ्चेच्छन्नइति । अत्रैकेपवित्रकरणमनुपदेशात्तूष्णीमिति ।
तन्न । मन्त्रेणविधानात् । तथाच योगियाज्ञबलक्यः । पवित्रे-
स्यइतिमन्त्रेण द्वेपवित्रेचकारयेत् । नांतर्गर्भं कुशच्छिन्ने कौशेप्रा-
देशसम्मिते । अत्रैकेपवित्रेस्यइति मन्त्रलिंगस्यपवित्रेकरोति
कुशैःसमा वप्रशीर्णाग्नौ कुशैश्छिनत्ति पवित्राभ्यामुत्पुनातीत्या-
दिवाक्यानांच पवित्रत्रये वैयर्थ्यात्पवित्रद्वयमेवपित्रोपीति । तन्न ।
अथोपित्रीणिसुरिति श्रुत्यैवस्थलांतरे पवित्रत्रयस्योक्तत्वात् ।
चतुर्विंशतिमतेपि । द्वे द्वे शलाके देवानांतिस्त्रिस्त्रिस्तुपार्वणे । ए-
कोद्विष्टे शलाकौका आद्वे ष्वर्घेषु निक्षिपेत् । यत्तु माध्यंदिनानां
द्वे द्वे तु पवित्रे पितृकर्मणीति तन्मन्त्रेण पवित्रद्वयकेदनपरं । नत्व-
र्घेपवित्रनिधानपरं । अतश्चपवित्रेस्यइत्यनेनपवित्रेकुशैश्छित्वा-
न्यतृतीयेन सहार्धनिधानमिति सिद्धम् । तथाच हेमाद्रिपद्धतौ ।
पवित्रेस्यइति छिन्नमगर्भयत्कुशद्वयम् । कुशरूपेण प्रादेश मात्र न्त-
त्स्यात्पवित्रकमिति । अत्रविशेषोयज्ञपार्ष्वे । ओषधीमन्तरेक-
त्वा अंगुष्ठांगुलिपार्वणे । छिंद्यात्प्रादेशमात्रं तु पवित्रं विष्णुदे-
वतमिति ॥

मू० एकैकस्मिन्नेव तिलानावपति
तिलोसीति ॥ ११ ॥

तिलानिति गंगादापलणं । एकैकस्मिन्निति प्रतिपादं ति-

लोसीत्यनेनतिलानावपेदित्यर्थः । अत्रयवानुपदेशा त्तिलक्षेपो देव-
पात्रेपोत्तिकर्कः । नन्वेकैकस्मिन्नित्यनुवर्तमाने पुनरेकैकस्मिन्निति
किमर्थं उच्यते । तिलोसोतिमन्त्रे पिपितृन्प्रोणाहीतिबहुवचना
न्तेन पितृशब्देनैकद्रव्यत्वादनूहित सञ्ज्ञकत्वाप्राप्त्यर्थं । तथाच ।
शन्नोदेव्यापयः क्षिप्वा तिलोसीत्यावपेत्तिलान् । आष्टत्तिः प्र-
तिपात्रं स्वान्मन्त्रस्य लोहदृश्यते । अतश्चमन्त्रोहोपि स्यादिति । नि-
श्चितमेतदित्येवशब्दार्थः । ननुगन्धादिप्रक्षेपोपिमन्त्रेण न गन्ध-
पुष्पंच तूष्णीमितिवाक्यात् । अतोमन्त्रस्यस्वाहांतत्वात्पित्रोऽपि
स्वाहाप्रयोगः । एवमभिन्नदारुपात्राण्युक्त्वा भिन्नप्रतिप्रसवार्थं
पिधातुमयपात्राण्यह ॥

मू० सौवर्णराजतौदुस्वरखड्गमणिमया

नांपात्राणामन्यतमेषु ॥ १२ ॥

मणिमयानि शंखशुक्लादीनि । एषामध्येषु केषुचिदित्यर्थः
तथाचब्रह्मपुराणे । सौवर्णरौप्यताम्राणां स्फाटिकंशङ्खशुक्तयः ।
भिन्नान्यपिनियोज्यानि पात्राणिपितृकर्मणि । हारीतोपि ।
काञ्चनेनतुपात्रेण राजतौदुस्वरेणवा दत्तमक्षयतां याति खड्गे-
नार्यकृतेनतु । आर्यास्त्रैवर्णिकाः । परिमाणं स्मृतौ । अष्टांगु-
लम्भवेत्पात्रं पितृणांरजतंशुभं । दशांगुलन्तुदेवानां सौवर्णन्ता-
म्रमेवचेति । औदुस्वरन्ताम्रं । धातुसन्निधेःतदुक्तं । प्रसिद्धार्थस्य-
सान्निध्ये योऽप्रसिद्धार्थउच्यते । तत्सन्निधानसामर्थ्या तज्जातो
योनुगम्यतइति । वार्त्तास्यतुयज्ञियत्वेनैवसिद्धेः । सुवर्णादिभ्यो
मयङ्प्रकारे । राजतंतुपित्रो एव । तथाचवायौ । तथावर्षपिण्ड
भोज्येषु पितृणांरजतंमतं । अमंगल्यंतुयत्वेन देवकार्येषुवर्जयेत् ॥

* यानिवाविद्यन्ते ॥ १३ ॥

वाशब्दः सौवर्णाद्यभावविकल्पो । सौवर्णादिविहिताभावो विहित
प्रतिषिद्धकांस्याश्मसृग्मयादीनीत्यर्थः । तेषां यानिवाविद्यन्त इति
सानुशयमभ्यनुज्ञानात् । विहितप्रतिषिद्धत्वं तेषां स्मृत्युक्तं । तथा च
ब्रह्मपुराणे कांस्यभाण्डानिवर्ज्यानि पितृदेवतकर्मणि । पैठौनसिः
लोहसौस कांस्यपाषाणहीनपात्राणि भग्नपात्राणि च वर्जयेदिति ।
कांस्यरजतपर्णताम्रपात्राणि भोजनार्थयोश्चोपकल्पाणि । वैजवापो-
पि अथश्मसृग्मयानि स्युरपि पर्णमयांस्तथा । यानिवाविद्यन्त इति प्र-
तिषिद्धेतराणीति वा । विहितप्रतिषिद्धानि पूर्वपक्ष्यसिद्धान्तमाह ॥

मू० पलाशपत्रपुटेषु वा ॥ १४ ॥

वाशब्दः प्रागुक्तविहितप्रतिषिद्धनिषेधार्थः ॥ तथा च वृद्धयाज्ञव-
ल्क्यः । मृदृशस्रनौ तथा कांस्यमारकूटादिसंभवं । त्वपु सौसकलो-
हाना मर्षपात्रम्विवर्जयेदिति । धर्मप्रदीपेपि । मृत्पात्रगतमर्षं च
मृत्तिकागंधलेपनं । छतधूपञ्चयोदद्यान् निराशोः पितरोगतोः-
कात्त्रायनोपि । आंसुरेणुपात्रेण यस्तुदद्यात्तिलोदकं । पित्त-
रस्तस्य न्नश्नन्ति दशवर्षाणि पञ्चचेति । अतो विहितप्रतिषिद्धे भाः
पत्रपुटा एव श्रेयस्करा इत्यर्थः । कर्कस्यार्षमृन्मयस्वीकारस्तु हस्तव-
टितविषयः । कुलालचक्रनिष्पन्नमांसुरं मृन्मयं स्मृतं । तदेव हस्त
वटितं स्यात्वादिद्वैविकं भवेदिति वाक्यात् ॥

मू० एकैकस्यैकेन ददातिसपवित्रेषु- हस्तेषु यादिव्या इति ॥ १५ ॥

एकैकस्येति विवादिनिर्देशः । एकैकेनेति एकैकस्येत्येतावद्-

क्तिरेकेनेषार्घेण तयाणान्दाननिषेधार्था । अत एकैकस्यैकेनेति
नतन्त्वमित्यर्थः । तथाच कात्यायनः । अर्घेन्नय्योदकेचैर्वापि गृहदाने
वनेजने । तन्त्वस्य विनिवृत्तिः स्यात्स्ववावाचनिकेजपे । एवञ्च तया-
णामेकद्विजोपवेशने ऽर्घपात्राणि चोक्त्येव न द्विजसंख्येत्युक्तं । तथा-
च स्मृतिः । अर्घस्यार्घ्यहेतुत्वाद् दातुः स्वपितृसंख्यया । पूरये-
दर्घपात्राणि न विप्राणाञ्च संख्यया ॥ वैजवापोपि । त्रित्वात्पितृ-
णां चोक्त्येव कुर्यात् पात्राणि धर्मवित् । एकस्मिन्वावज्जपुवा ब्राह्म-
णेषु यथाविधीति । स्तोत्रार्घपविवादिकमिति शेषः । अत्र सन्देहः ।
वैश्वदेवे एक एवार्घ किंवा द्वौ । उभयथावाक्यदृष्टेः । तथाहि । यच्च
यष्टक्षत्रमसे सपवित् कद्रुतिशाट्यायनेनैव सुक्तम् । याज्ञवल्क्योपि ।
यवैरन्ववकीर्याथ भाजने सपवित् कद्रुत्येकमेव । मात्स्ये । विश्वा-
न्देवान्यवैः पुष्पैरभ्यर्च्य सनपूर्वकं । पूरयेत्पात्रयुग्मन्तु स्थापयेद्-
दर्मपवित्कमिति । प्रचेतसापि । एकैकस्य तु विप्रस्य अर्घपात्रे-
विनिक्षिपेत् । यवोसीतियवान्कीर्यगन्धपुष्पैः सुपूजितमिति द्वय-
मेव । कर्कादयस्तु एकदेवताकत्वादेकमेव पात्रन्दैवमिति ॥ मा-
तामहश्चाङ्गे वैश्वदेवस्य पृथक्पात्रद्वयमित्तरान्ये । इदम्विचार्यम् ।
किमत्र विकल्पः किम्बाव्यवस्येति । व्यवस्येति ब्रूमः । तथाहि ।
वैश्वदेवश्चाङ्गे पक्षद्वयमुक्तम् । तन्त्वपक्षोभेदपक्षश्चेति । तत्र यदि-
भिन्नपक्षे एकमित्तराच्येत तदामात्यवाक्यं व्यर्थं स्यात् । अत्र तत्र-
पक्षे एकमिति तदोभयवाक्यसार्थक्यात् । ततस्तन्त्वपक्षे एकस्मि-
न्नपक्षे द्वयमिति व्यवस्थया न ग्रन्थविरोध इति सिद्धम् । सपवित् पवि-
त्तार्घपवित्राण्येवोच्यन्ते । हस्तपवित्राणां तु पवित्रप्राणयः सर्व इति-
स्मृतेरेव सिद्धेः ॥

मू० असावेपतेर्घः ॥ १५ ॥

असावितिसंवर्धयतनामादुपलक्षणम् । एषतेर्घवृत्तिप्रयोगदर्शनात्स्वधानिषेधोच्चायते एतच्चोक्तमासनदाने । ततश्चयथाविहितं सव्यादिनाग्रामहस्तेऽर्घपात्रं गृहीत्वा प्राग्गुपवित्ते देवद्विजकरेदत्वा (१) पादप्रभृतिमूर्धान्तप्रदक्षिणस्पृजां कृत्वा यादिव्याद्वृत्तिमन्त्रेण पुरुरवार्द्रवसनामानौ विश्वेदेवा एषत्रोर्घइत्यर्घन्दक्षिणहस्तेन देवतीर्थेन दत्त्वा । एवं पितृपिदक्षिणाग्रपवित्राणि द्विजकरेदत्वा शिरःप्रभृतिपादान्तमप्रदक्षिणं संपूज्य । यादिव्याद्वृत्तग्रनेनार्धपितृतीर्थेन संवन्धनामादिभिः पितरंसम्बोधा दक्षिणहस्तेनैषतेर्घोऽस्त्वित्यर्घदद्यादित्यर्थः । तथाच प्रचेताः । दत्त्वाहस्तेपवित्रन्तु कृत्वा पूजांचपादतः । पादप्रभृतिमूर्धान्तं देवानां पुष्पपूजनम् । यादिव्याद्वृत्तिमन्त्रेण हस्तेष्वर्घं स्विनक्षिपेत् । ततो वामेन हस्तेन गृहीत्वा चमसान्कमात् । शिरःप्रभृतिपादांतम् नमोवद्वृत्तिपैतृके ॥ पितृतीर्थेन तत्तोयन्दद्याद्दक्षिणपाणिनेति । अत्रैक एकद्रव्यत्वाद्वर्घदानकर्मावृत्तौ सकृन्मन्त्रइति । तत्ककीचार्यैर्निरस्तमितुप्रपेक्षितं ॥

मू० प्रथमेपात्रे स० संस्रवांस्समवनीयपितृभ्यः स्थानमसीति न्युजं पात्रं निदधाति ॥ १६ ॥

प्रथमं पात्रं पितृभ्यः नद्वैवं । तथाच स्मृतिः । प्रथमे पितृपात्रे तु सर्वान्सम्भृत्य संस्रवान् । पितृभ्यः स्थानमित्युक्त्वा कुर्याद्भूमग्रामधोमुखम् । दैवपात्रमित्येके । तन्न । पितृपात्रइति विशेषात् । कात्यायनोपि । पितृपात्रं नदुत्तानं कृत्वा विप्रान्विसर्जयेदिति । संस्रवाः

(१) शङ्खः सयवंपुष्प आदाय चरणादिशिरोन्तकम् ॥ अर्चतेत्यर्चनङ्कुर्यादन्तरि-

चोदकन्तथा ।

पात्रसंलग्ना अविशिष्टोदकादयः । तथा वश्रुतिः सः श्रवो ह्येव खलु-
परिशिष्टो भवतीति । बहुत्वङ्कुशातिलाद्यपेक्षम् । अत्रैके देवन्दे-
वेभ्यस्थानमसीत्युत्तानं विधाय पितृन्युजं विधेयमिति । पितृमि-
त्यन्ये । विचार्यमिदम् किं प्रतिश्राद्धं पात्रकरणमुत पितृश्राद्ध इति ।
यदि प्रतिश्राद्धं तदा द्वादशदेवत्ये पात्रपञ्चकम् मन्त्रविरोधश्च स्यात् ।
अथ मन्त्रो हेनाविरोध इति तर्हि पितृपात्रविध्यनर्थक्यात् । यत्तु प्रथ-
मं पितृकम्पात्रं न तस्मिन्पैतामहं न्यसेत् । प्रपितामहन्ततो न्यस्य नोद्धरे
न्न विचालयेदिति यमवाक्ये पात्रतृयस्यैवैकीकरणं तन्मातामह श्रा-
द्धपक्षे बोध्यं दृश्यते च शाखाभेदे तच्छ्राद्धम् । तथाच विष्णुपुराणे ।
प्राङ्मुखान् भोजयेद्विप्रा न्देवानामुभयात्मकान् । पितृमातामहानाञ्च
भोजयेच्चैदुदङ्मुखान् । पृथक्त्वायैके चिदाहुः श्राद्धस्य करणं नृप । एक-
तृकेन पाकेन वदत्यन्ये महर्षय इति । तदेतच्छाखाभेदाभिप्रायम् ।
तस्मात्पितृश्राद्ध एव सर्वसंस्त्रवशब्दस्यासङ्कोचेन प्रवृत्तत्वात्पितृभ्यः
स्थानमसीति पितृशब्दस्य सर्वपितृविषयत्वाच्च पितृपात्रमेकमेव न्यु-
जमिति सिद्धम् । ततश्च पितृपात्रे देवादिसर्वपात्र संस्त्रवान्नि-
क्षिप्य पितृद्विजवामतः पवित्रोपर्यधोमुखं निदध्यादित्यर्थः । तथा
च वृद्धयाज्ञवल्क्यः । सपवित्रं पितुः पात्रं दक्षिणाधोमुखं न्यसेत् ।
कात्यायनोपि । कुशवत्यां भूमावधोमुखं कुर्यात्तस्योपरिचकुशा-
निति । शौनकोपि । नोद्धहेत्यथमं पात्रम् पितृणां यच्च पातितम् ।
श्राद्धत्वास्तवतिष्ठन्ति पितरः शौनको ब्रवीदिति । उद्धरेद्यदितत्पात्रं
ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः । अभोज्यन्तद्भवेच्छ्राद्धम् कुड्मे पितृगणे गत इ-
ति । मात्स्ये । पितृपात्रं निवायाय न्युजमुत्तरतो न्यसेत् । अथोत्त-
र इत्युत्तरस्यान्दिशीतिकल्पतरुः । उत्तरशब्दस्य वामवाचकत्वात् ।
तथाच लिङ्गम् । उत्तरत आयातनाहिस्तीति । कात्यायनश्च कृत्वा-

न्युञ्जन्तिलैर्युक्तं न्दक्षिणाग्रमतःपरं । पितृपात्रं निदध्यात्तु देवपि-
त्रोश्चमधायतइति ॥ उशनाः । गन्धादिभिःपूजयेत्तन्युञ्जम्पात्रम् ।
वैजवापोपि तस्योपरिकुशान्दत्तेति ॥

* अत्रगंधपुष्पधूपदीपवाससाञ्चप्रदानम् १७.

तानिसुगन्धीनिकण्टकिञ्चान्यपिदद्यादिति जपादिकुसुमंभिं-
टीरूपिका सकुरण्टिकाः । पुष्पाणिवर्जनीयानि आङ्गिकर्मणिनि-
त्यशः । जपा ओङ्गपुष्पम् । आदिशब्दच्छिल्प्यादिरक्तानि । रूपि-
कार्कवर्णः । कुरन्टकःपीताम्लानः । स्मृतिमंजूषायां । शिरीष विल्व
धत्तूर काञ्चनाराटरूपकं । (१) अर्कचपारिभद्रञ्चपीतजातींचवर्जये
त् । धूपोगुग्गुलादिः । तथाविष्णुधर्मीत्तरे । धूपोगुग्गुलकोदेयस्तथा-
चन्दनसारजः । अगुरुश्चसकर्पूरस्तुरुष्कत्वक्त्वक्त्वक् । तुरुष्कःसि-
हकः । त्वग्लवंगं । मरीचिः । चन्दनागुरुणीचोभेतमालोसीरप-
द्मकं । घृताक्तंमधुनाक्तंचगुग्गुलंधूपमेवच । तथा । तुरुष्कंगुग्गुलंचै-
वघृताक्तंयुगपद्दहेत् । घृतंनकेवलंदद्याद्दुष्टंवातृणगुग्गुलम् । तृण-
गुग्गुलः । सर्जरसः । धर्मप्रदीपेपि । घृतधूपञ्चयोदद्यान्निराशः
पितरोगताः । कात्यायनः । आङ्गे धूपंप्रयत्नेन दशांगंमधुमिश्रितम् ।
दद्यादगुरुजंचापि पद्मकन्देवदारुजमिति । वर्ज्यमाहविष्णुः ।
जीवजंसर्वत्रधूपार्थइति । जीवजंकस्तूर्यादि । दीपोघृतादिद्रवे-
ण । तथामरीचिः । घृताद्वातिलतैलाद्वा नान्यद्रव्यात्तुदीपकम् ।
नान्येतिवसादिनिषेधो नकुसुंभादितैलानां । घृतेनदीपोदा-
तव्य स्त्वयवाप्योषधोरसेः । वसामेदोद्भवन्दीपम् प्रयत्नेनविवर्ज-

(१) तुलसीनिषेधोभविष्ये केतकीतुलसीपत्रविल्वपत्रञ्चवर्जयेत् द्रोणंचकरवीरं-
चधत्तूरंकिंशुकन्तथाअन्यच्च कुन्दंशम्भौचनोदयान्नोन्मत्तङ्गरुडध्वजं पिण्डंजातोचनो-
दयद्देवीमर्कं एनाचयेत् ॥

येदितिवाक्यात् । वासः । कार्पासादि । तथाकौशेयंक्षौमकार्पासं
दुकूलमहतन्तथा । श्राद्धे ह्येतानियोदया त्कामानापनोतिपुष्क-
लान् । चकारो यज्ञोपवीत तुलस्यादि समुच्चायकः । तथा ।
चंपकंशतपत्रं च भृंगराजं च बालकं । तुलसीमालतीपद्मं पितृणा-
न्नुष्टिकारकं । तुलसीनिषेधे स्मृत्यर्थसारः । अर्घ्यपिण्डयोर्विधिनि-
षेधावित्तरविरोधा इतिकश्चित् । प्रेतश्राद्धशार्काविषयो निषेधइ-
त्तान्यः । दीपवस्त्रोपवीतकमित्युक्तम् वस्त्रालाभेयज्ञोपवीतकमि-
तिखादिरं । बृहद्ग्राह्यवत्कथोपि । तुलसीभृङ्गराजञ्च अपामार्गं
शमींतथा । पितृमूर्धनि योदया तस्यातिपरमांगतिमिति । अव-
संशयः । किंगन्धादिदानं तन्त्रेणोतप्रतिपुरुषमिति । उभयवा-
क्यदृष्टेः । तथाहि शाकलायनः । एषतेगन्धः एततेपुष्प मेषते-
धूप एतत्ते आच्छादनम् । विष्णुरपि । नमोविश्वेभ्योदेवेभ्यइ-
त्येवमादौ प्राङ्मुखेभ्यो निवेद्यपित्वादिविध्यो नामगोत्रेभ्य उद-
ङ्मुखेभाइति । ब्राह्मेतु । इदंशससाञ्चप्रदानम् । अत्रेत्यवस-
रार्थइति कर्कादयः तन्न । तस्यपाठादेवलब्धेः । तस्मादत्रेति-
प्रात्ने इत्यन्ये । तदपिकर्कादिभिरनाहुतम् । अर्घोत्तरंविप्रपूजा-
विधेः । तथाचष्टहद्याज्ञवल्क्यः । दत्त्वाधर्म्यजयेच्छक्त्यागन्धधूपानु-
लेपनैः । मात्स्येपि । यादिव्येत्यर्घ्यमुत्सृज्यदद्याद्गन्धादिकन्ततइति ।
तस्मादत्रेतिकाण्डानुसमयंसंमूच्य । गन्धादिदानेपदार्थानुसमयो-
द्योतितः । अतोत्रगन्धादिदानं दैवपूर्वमित्यर्थः । तथावैजवापः ।
तस्योपरिकुशान्दत्त्वा प्रदद्याद्दैवपूर्वकम् । गन्धपुष्पञ्चधूपञ्चदीपं
वस्त्रोपवीतकमिति । गन्धश्चंदनादिः । तथा । चंदनागरुकर्पूरपद्मकं
कुंकुमन्तथा । कस्तूरिकादयोगन्धाः पितृणान्नुष्टिकारकाः पुष्पाणि
मल्लिकादीनि तथास्मृतिचन्द्रिकायाम् । मल्लिकामालतीश्वेतयूधि-

काचम्पकं शुभम् । पिण्डीतकङ्कुमञ्च पद्मानिजलजान्यपि । उत्प-
 लादौनि देयानिवर्णगन्धयुतानिच । मल्लिका । चित्रकिलः । पिण्डी
 तकोमखकः । मार्कण्डेयः । जात्यश्वसर्वादातव्या मल्लिकाश्वेत
 यूथिका । वनोज्ज्वानि सर्वाणि कुङ्कुमानिच चम्पकमिति । ब्रह्मा-
 ङेपि । गुक्ताः सुमनसः श्रेष्ठास्तथापद्मीत्यलानिच । गन्धरूपो-
 पपन्नानि यानिचान्यानि कृतस्रशः । जातीविषयेविरोधः जात्य-
 श्वसर्वा दातव्याइति । तथा । आह्ने जात्यः प्रशस्तास्य मल्लिकाश्वेत-
 यूथिकाः । तगरं मातुलिङ्गञ्च पिष्टणान्दत्तमक्षयम् । क्रतुस्तुनिषे-
 धति । असुराणाङ्गुलेजातो जातीपूर्वपरिग्रहे । तस्यादर्शनमात्रेण
 निराशाः पितरोगताः । अङ्गिराअग्नि । नजातीकुसुमार्जन नकद-
 लीप्रचमिति । विकल्पमेके । विप्रपूजादौविधिः । पिंडपूजनेनि-
 षेधः । पीतजातीविषयो निषेधइत्यस्यन्यतम् । तथाट्टहद्याङ्ग-
 वल्यः । कुन्दं गन्धोस्तनोदद्यान्तोन्मत्तङ्गरुडध्वजे । पिण्डे जाति-
 ञ्चनोदद्या देवीञ्चाकौणोयजेत् । जातीपुष्पन्तथाकैवा किंशुकं-
 करवीरकं । पितृमूर्धनियोदद्या त्सएवपितृवातकइति । मातस्ये
 वज्यानि । पद्मविल्वार्कधत्तूर पारिभट्टः टरूषकाः । नदेयः पितृका
 यैष्विति । पारिभट्टोनिम्बः । अटरूषोवासकः । शङ्खोपि । उग्रगन्धी-
 न्यगन्धीनि चैत्रयट्टजोद्भवानिच । पुष्पाणि वर्जनीयानि रक्तवर्णा-
 नयानिच रक्तानिजलजव्यतिरिक्तानि । जलोद्भवानिदेयानि रक्ता
 न्यपिविशेष तद्वतितस्यैवोक्तेः । विष्णुः । वर्जयेद्गृगन्धीनि तानिक-
 ण्डकिजान्यपि वः पुष्पमित्युक्त्वा पुष्पाणिचनिवेदयेत् । अयस्वीधूप
 इत्युक्त्वा हृदयन्दौपन्निवेदयेत् । अनङ्गुलग्नं यद्वस्त्वभिभवेसति
 तदुगं । शङ्खोपि । इदस्वीज्योतिरित्युक्त्वा दौपन्तेषाम्प्रदर्शयेत् ।
 नोज्योतिरस्तुतैः सर्वैर्वक्तव्यन्तदनन्तरमिति । काच्यायनेनार्वाक्ष-

व्योदकादि व्यतिरिक्तगन्धादौ तन्त्रमेवोक्तम् । एवंविप्रतिपत्ता-
वेकं सूत्रोक्तत्वादयं बोधूपद्विति वःशब्दनिर्देशाच्च गन्धादौ तन्त्रप्र-
तीतिरस्मत्प्रतिपितामहप्रपितामहाः असुकशर्मण एतेषांगन्धा-
दौनां तृतीयस्तृतीयोऽस्तेभ्यः स्वधेतिप्रयोगइति । अन्येतु । पित्रा-
दीनामग्नौषोमादिव न्मिलितानान्देवतात्वा इत्यादीनांच प्रत्ये-
कन्दानस्यविधानाच्च नेदंयुक्तम् । तस्मादस्मत्प्रतिपतरसुकशर्म न्मस्म-
त्प्रितामहास्मत्प्रपितामह इत्येवङ्गीर्वादाच्चार्य एषवोगन्धःस्व-
धेति प्रयोगइत्याहुः । विचार्यमिदम् । यदाग्नौषोमवन्मिलित
देवतात्वाभावात्पृथक्स्वत्वदानमित्युच्येत तदार्धादिव्यतिरिक्तप-
दार्थेषु तन्त्रविधेर्गोत्राणामासनेप्रोक्तमित्यादि वाक्यानाञ्चवैयर्थ्य-
स्यात् । अयासनादिदानेषु तन्त्रविधेर्गंधादिदानेपि तद्युक्तिस्तर्हि-
शाच्यायनादुक्त पृथग्विधेर्वैयर्थ्य मित्युभयथापि संदेहःस्यात् ।
तस्मादावग्यायसूत्रविधानं तत्र तन्त्रं यवपार्थक्यं तत्रतथैवेत्युभ-
यविध्योःसिद्धिः । गंधादिषूभयविधेर्दृश्यमानत्वादुभयानुष्ठानं ।
गंधाद्व्यतिरिक्तेतु तन्त्रमिति युक्तम् । अतश्चोस्मत्प्रतिपतरसुकशर्म-
न्मस्मत्प्रितामहास्मत्प्रपितामहेतिनामादुच्चारणेन पृथगुद्दिश्य-
वाक्यान्ते एषवोगंध स्वधेत्युभयथावाकां युक्तमित्यभाति । गंधा-
देयाद्व्याह कात्यायनः । गन्धान्ब्राह्मणसां कृत्वा पुष्यायतुभ-
वानिच । धूपञ्चैवानुपूर्वेण अग्नौकुर्यादतःपरम् । एवंगंधादिद-
त्त्वाऽऽचम्य संपूर्णपृष्ठांश्च संपूज्योदकेन पुत्रादिकामो मुखं-
प्रमाष्टि । तथाकात्यायनः । श्राद्धारंभेवसानेच पादशौचे तथा-
र्चने विक्ररेपिंडदानेच षट्सुवाचमनंस्मृतम् । कात्यायनः । संपू-
वाग्नमवनीय पुत्रकामोमुखमनकीति ।

इति श्री श्राद्धकाशिकायां द्वितीयाकण्डिकासमाप्ता ॥

*उद्धृत्यघृताक्तमग्नं पृच्छत्यग्नौ करिष्यद्भूतिः ।

घृतोपादानम् शाकादिव्यं पुननिवृत्यर्धम् । तथा । हविष्यं-
व्यं जनक्षार रहितं ह्यपसव्यवदिति । घृताक्तमग्नमुद्धृत्येत्यन्वयो-
भिवारणं रंधनपात्र एवाभिषार्य दक्षिणत उद्वासेति पिण्डपितृ-
यज्ञसूत्रादितिकेचित् । तन्न । तस्यापसव्यादि विधिना साग्ने-
श्वरश्रपणविषयत्वात् । अतश्चोद्धृत्ता घृताक्तं कृत्वा न्नं पंक्तिमूर्धन्य
मग्नौ करिष्यद्भूतिः पृच्छेदित्यन्वयः । पृच्छेद्विकर्मकत्वात् । एवं च पा-
त्रांतरे भिवारः सूचितः । तथा कात्यायनः । अग्नौ करणस्याग्नेवे
मधुसूक्तं जपेत्ततः । शेषमाज्येनाभिषार्य भाजनानि विशोध्येदिति ।
ननु दत्त्वा पात्राणि विप्रे भोजपेदोदनभाजने । आप्यायस्व स-
मेव तद्भूतिपात्रे सुपाचिते ॥ क्षिपेदन्नन्तु सघृतंततो ग्नौ करणं भवे
दिति पुराणवाक्यात्कथं मधुसूक्तमिति । उच्यते । आप्यायस्वे
त्यस्य रन्धनपात्रजप विषयत्वात् । ततश्च रंधनपात्रे आप्यायस्वे-
ति जप्त्वा पात्रांतरे उद्धृत्य घृतेनाषार्योद्धारणपात्रे मधुसूक्तं जपे
दित्यर्थः । अपसव्ये नाग्नौ करिष्यद्भूतिः पृच्छेदित्येके । तन्न । सव्ये
नैव तु पृष्ठान्नमपसव्येन होमयेत् । पितृपंक्तिमूर्धन्यं तस्य पाणा-
वनग्निमानिति पैठौनसिवाक्यात् । अत्र संशयः । किं श्राद्धार्थं पृष्ट-
कं पाकउतैक एव । तत्र देवपितृमनुष्याद्यर्थमेक एवेति कर्कादयः ।
पृथगित्यन्ये । तद्विचार्यम् । यदेक एव तदा सर्वसामान्येन श्राद्ध-
पाकस्य वैशिष्ट्यानुपपत्तिरिष्टादियत्नविधायकवाक्यवैयर्थ्यं च स्या
त् । अथ पृथक् तदा वैशिष्ट्यं प्रच्छन्नादिपरिश्रितादि यत्नविधा-
यकवाक्यं च सार्थकं स्यात् । तस्मात्पृथगित्युक्तं । तथा वायौ । पि
तृणां निर्वपेद्भूमौ कूचं वादर्भसंस्कृते । व्यासोपि । चांडालः श्वपचो

वज्रोनिर्वापेसमुपस्थिते । लौगाक्षिरपि । पितृर्धनं निर्वपेत्पार्कवैश्व-
देवार्धमेव च । वैश्वदेवं नपि त्र्यर्धं नदार्शं वैश्वदेविकं । देवलोपि ।
तथैत्र्यं त्रितोदाता स्नात्वा प्रातः सहांबरः । आरभेत न वैभीषणै-
रग्न्यारभस्तुवांघ्रवैः । तिलानाविकिरेत्तत्र सर्वतो बंधयेदजान् । आ-
सुरोपहतं सर्वं द्रव्यं शुध्यत्यजेन च । ततो न्नं बहु संस्कारा न्नैकव्यं
ज भक्ष्यवत् । चोष्यपेयसमृद्धञ्च यथाशक्त्युपकल्पयेदिति । मार्क-
ण्डेयोपि । पृथक्पाकेनैत्यन्ये केचिदिच्छन्ति पूर्ववत् । नित्यश्राद्ध-
मृथक्पाकेनैत्येके । श्राद्धपाकादेवेत्यन्ये । किञ्च । मातामहपृ-
थक् श्राद्धपक्षे पैठोनसिः । विधिहीने यतः श्राद्धे नाश्रंति पितृदेव-
ताः पृथक्पाकेनैव तस्माच्छ्राद्धमातामहस्येवेदिति । तस्मात्पृ-
थक्पाकः ।

मू० कुरुष्वेत्यनुज्ञातः पिण्डपितृयज्ञवद्भुत्वा ॥२॥

द्विजैः कुरुष्वेत्यनुज्ञातः पिण्डपितृवज्जुहुयादित्यर्थः । अत्र-
पिण्डपितृयज्ञवदुपचार इति प्रागुक्ते पिण्डपितृयज्ञवदिति पुनरु-
क्तिः परिसंख्यानार्था । तेन साग्नेयं यथा पिण्डपितृयज्ञे परिस्तरणा-
दितथा श्राद्धे न भवति किञ्चपसव्यादिनापयुज्य मेक्षणेनाहुतिद्वय
साहिताग्नेर्दक्षिणाग्नौ समातीग्ने रौपासने यद्योपदेशं भवतीत्यर्थः ।
अत्र केचित् । अग्नौ करणहोमश्च कर्तव्य उपवीतिना । प्राङ्मुखे
नैव देवेभ्यो जुहोतीति श्रुतिः श्रुतेः । अपसव्येन वा कार्यं दक्षिणा
भिमुखेन च । निरुध्य हविरनयस्मा अन्यस्मै न हि हूयत इति कात्या-
यनवाक्यात् सव्ये न जुहुयादग्नौ वग्नौ करण आहुती इति वृहदाज्ञव-
त्क्योक्तेः शोभयवाक्यदृष्टेः साग्निः सव्येनेतरोऽपसव्ये वेति । तन्न ।
सजघनेन गार्हपत्यं प्राचीनावितीति श्रुत्या पिण्डपितृयज्ञवदिति-

सूत्राच्चोभयोरपसव्ये नैवविधेः । उपवीतिनेत्यस्य पूर्वपक्षत्वा दप-
 सव्ये नेत्यस्य वसिष्ठान्तत्वा दपसव्ये नैवसर्वेषामित्यन्ये । नेदम-
 पि । अथातो गोभिले क्ताना मन्येषांचैव कर्मणामितिकात्यायन-
 प्रतिज्ञायाः सामगानांसव्ये न यजुषामपसव्ये नेति वाक्यद्वयाव्यव-
 स्थितेः । अतएवातज्ज्वं प्राचीनावीतिना कर्तव्यमिति गोभिलेना-
 ग्नौकरणानन्तरमपसव्यमुक्तं । तस्मात्सामगानांसव्ये न यजुषाम-
 पसव्ये नेतिसिद्धं । तथा कात्यायनः । स्वाहास्वधानमःसव्य मपस-
 व्यन्तथैव च । आहुतीनां यथासंख्या साचगम्यास्वमूततः । वृद्ध्या-
 च्छावतक्यः । कन्दोगाजुहुयुःसव्ये ना पसव्ये न याजुषा इति । अत्र सं-
 शयः । किं साग्निरग्नौ किं वाहस्तेग्नौकरणं कुर्यादिति । उभयवि-
 धवाक्यदृष्टेः । तथा मार्कण्डेयः । आहिताग्निस्तु जुहुयाद् दक्षिणा-
 ग्नौ समाहितः । औपसदेनाहिताग्नि रग्न्यभावे द्विजेषु चेति । अत्र-
 तु शब्दद्वयं सर्वाधानार्धाधानपक्षौ सूचयति तेनाहिताग्निः सर्वाधाने
 दक्षिणाग्नावेवाधाधाने औपासन एव जुहुयादित्यर्थः औपसदे गृह्या-
 ग्नौ । अग्न्यभावो वक्ष्यमाणः । तथा । हस्तेग्नौकरणं कुर्याद्ग्नौ वा-
 साग्निको द्विज इति । अत्राग्नेः सन्निधानाद्यभावे हस्ते लौकिका-
 ग्नौ वाग्नौकरणं साग्निः कुर्यादिति माधवस्मृतिचन्द्रिकाकारादयः ।
 उदाहरन्ति च । आहुत्यदक्षिणाग्निस्तु होमार्थं वैप्रयत्नतः । अग्न्य-
 र्थं लौकिके वापि जुहुयात्कर्मसिद्धये । अग्न्यर्थं सोपासनाग्निकार्यार्थं
 लौकिकाग्नौ होमद्रव्ये लौकिके कल्पतरुकारादयस्तु लौकिकमा-
 वसय्याग्निमाहुः । विचार्यमेतत् । यद्यग्नेः सन्निधानाद्यभावे सा-
 ग्नेलौकिकाग्निस्वीकारस्तदानपैतृयज्ञियो होमो लौकिकाग्नौ-
 विधीयत इति मनुवाक्यमनर्थकम् । अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणावे-
 वोपपादयेदिति नियमभङ्गश्च स्यात् । अथाग्नौकरणमिति यौगि-

कत्वाद्दत्तजलादिभ्यो लौकिकाग्नौविशिष्टत्वाच्च साग्नेलौकिके-
एवेतितदा प्रासङ्गिकतीर्थादावपि श्राद्धप्राप्तौलौकिकेऽग्नौकरण-
मतिप्रसज्येत । लौकिकाग्नेः सुसम्पादकत्वादग्न्यभावएव नस-
म्भवतीत्यग्न्यभावेतु विप्रस्येत्यस्यासङ्गतेऽपि । तस्माल्लौकिकश्राव-
सथ्याग्निः । ततश्चहस्तेऽग्नौकरणद्वुर्यादग्नौवासाग्निकोद्विज-
इत्यत्रवाशब्दोव्यवस्थितविकल्पे । तेनविद्यमानेश्चातेस्मार्तेवाग्नौ
तत्रहीमस्तदभावेहस्तेन लौकिकइत्यर्थः । अग्न्यभावः पञ्चधा ।
प्रागभावः प्रध्वंसः सन्निहिताभावो धिकाराभावोऽत्यन्ताभाव-
श्चेति । विवाहात्प्राक्प्रागभावः । तदूर्ध्वमाहृताग्नेः प्रमादादि-
नानाशे पुनराधानात्प्राक्प्रध्वंसः । देशभ्रंशादावरणिसमारो-
पादौक्यते सन्निध्यभावः । अशुद्धद्रव्यादिस्पृष्टेऽग्नौप्रायश्चित्तस्वि-
नाधिकाराभावः । नैष्ठिकब्रह्मचर्येस्वयभावेनात्यन्ताभावइति ।
यच्चग्न्यभावः स्मृतस्तावदप्रावज्ञार्यान्नविन्दतीत्यभावउक्तः । सोय-
मप्येकोऽभावइति पृथग्दर्शनार्थः । नत्वयमेवाभावइतिनियमार्थः ।
पूर्वोक्तविभागव्याघातात् । प्रागभावात्यन्ताभावस्थलेऽग्न्यभावादे-
वाग्नौहीमाभावः । प्रध्वंसाधिकाराभावयो रावश्यकविधौसां-
कल्पिकमेवश्राद्धम् । अग्नौकरणम् अरणिसमारोपादौसान्नि-
ध्याभावस्यावश्यश्राद्धेसाग्नेरपि द्विजहस्तएवहीमइति । तथाव्या-
सः । च्यक्ताग्नेःपार्वणन्नास्ति नैकोद्विष्टं सपिण्डनम् । अत्यक्ताग्ने-
स्तुपिण्डोक्तिस्तस्मात्संकल्प्यभोजयेत् । आलस्येन नास्तिश्रादिना
वायोग्नित्यजति तस्यैकोद्विष्टं पार्वणसपिण्डीकरणादि सर्वश्राद्धे-
ष्वनधिकारोक्तः संकल्प्यभोजयेत् । तद्व्यतिरिक्तस्थानग्ने रग्न्यस-
न्निधानेपि सांगपिण्डश्राद्धे धिकारइत्यर्थः । ततश्च हस्तेऽग्नौकरणं ।
संकल्पेत् । संकल्पश्चयदाकुर्यान्नकुर्या पात्रपूरणम् । नावाहना-

ग्नौकरणे पिण्डांश्चैव न दापयेत् । संकल्प्येतु यदा श्राद्धे न कुर्यात्पा-
 तपूरणम् । विकरश्च न दातव्य इति स्पष्टमिहोदितमिति । तस्मा-
 न्नलौकिके ग्नाविति सिद्धं । अथवा विधुरादीना मग्नौकरणस्ये-
 ध्माधानाज्यभागपूर्वकस्य विधानात्तस्य बहस्तेन उपयुक्तत्वात्तद्विषयो
 लौकिकाग्निस्वीकारः । यदुक्तं हस्ते होम इति तत्किन्देव-
 द्विजकरे किंवापित्यइति । उभयथाप्यनेकवाक्यदृष्टेः । तथायमः
 नाग्नौकरणवत्तत्र होमौद्वैकरो भवेत् । पर्यस्तदर्भानास्तीर्य यतो-
 ह्यग्निः समो द्विजइति । कात्यायनापि । मातामहस्य भेदेऽपि कुर्या-
 त्तन्वस्य साग्निकः । भेदेऽप्यथैव देव श्राद्धे तन्वे च साग्निके । मा-
 तामहस्यापि मातामहद्विजकरेऽग्नौकरणं कुर्यादिति पितृकरे-
 ष्वर्थादुक्तम् । तथा । अनग्निकस्य विप्रस्य हस्ते ग्नौकरणं भवेत् ।
 दैवपूर्वाहितं तत्कुर्यात् पितृभ्यस्तदनन्तरम् । अन्यच्च । अनग्निकस्तु-
 यो विप्रः श्राद्धं कुर्वीत पार्वणम् । दैवपाणौ हि हुत्वा दौ शेषं दद्यात्तु-
 पैतृके । यमोऽपि । दैवविप्रकरेऽनग्निः कृत्वा ऽग्नौकरणं द्विजइति ।
 एवं विवादे दैवपितृकरयोर्विकल्पइत्येके । साग्निकः पितृकरे निर-
 ग्निर्देवइत्यन्ये । इयमपि विचार्य । आद्ये साग्नेरग्निसन्निध्यादौ ।
 पितृद्विजहस्तएवानुकल्पत्वेन विधानात् । द्वितीये तु श्राद्धविशेषा-
 न्ये बहस्ते होमस्य वावस्थितत्वेनासार्वत्रिकत्वात् । पिण्डपितृय-
 ज्ञवदित्यतिदेशेन प्राचीनावीतादिप्राप्तौ देवद्विजकरे तद्वर्मानुप-
 पत्तेश्च । तस्मात्साग्नौ रग्न्यसन्निध्यादौ काम्यादिचतुःश्राद्धेषु पि-
 तृद्विजहस्ते । इतरत्वाग्नौ वितिसिद्धम् । तथा गृह्यम् । अन्वष्टक्या-
 च पूर्वदुर्मासि मास्यपार्वणम् । काम्यमभुगदयेऽष्टम्यां मेकोदिष्ट-
 मथाष्टमम् । अतुष्णीदेऽपुसाग्नीनां बन्धौ होमो विधीयते । पितृब्रा-
 ह्मणहस्तेऽस्या दुत्तरेषु चतुर्ध्वपीति । अन्वष्टक्यां न वसी श्राद्धम् । पूर्व-

दुःसप्तमीश्राद्धम् । मासिमासिकृष्णपक्षश्राद्धम् पार्वणममायांका-
 म्यं । कृत्तिकादिनक्षत्रवारादौ । अभ्युदयो दृष्टिश्राद्धं । अष्ट-
 म्यामष्टकाश्राद्धं । एकोद्दिष्टं सपिण्डो करणलक्षकम् । तस्मादाहिता-
 ग्नौः सर्वाधानपक्षे दक्षिणाग्नौ अर्धाधाने औपासने स्मार्त्ताग्नेः सत्त-
 ग्नौ तद्वच । उभयोरप्यग्न्यसन्निधावावश्यकश्राद्धे सन्निहितेऽप्यग्नौ-
 काम्यादि चतुःश्राद्धेषु च पित्रद्विजहस्तएव । निरग्निवाजसनेयि
 प्रभृतीनां पिण्डपितृयज्ञातिदेशादपसव्यादिनापित्रद्विजहस्तएव ।
 साग्निसामगादीनामग्न्यसन्निधौ सव्यादिनादैवपित्राकरयोर्विक-
 लपः । निरग्नीनान्ते प्रमप सव्यादिनादैवद्विजकरएवेतिसिद्धम् ।
 यत्तु पितृयः पङ्क्तिमूर्द्धन्यस्तस्य पाणावनग्निमानिति कात्यायन-
 वाक्यम् । तस्य सामगपरत्वेऽयमर्थः । पित्रादेव पितृमातामहश्राद्धे
 यः पङ्क्तिमूर्द्धन्यः प्रथमोपश्रितदैवद्विजद्व्युत्तर्यः । शाखांतरे तु पैठी-
 नसिः । पितृपङ्क्तिमूर्द्धन्यस्तस्य पाणावनग्निमानिति प्राग्दर्शितं ।
 नन्वग्नौकरणम् किंप्रतिश्राद्धं किंवैकमिति । तदुक्तम् । दैवपू-
 र्वंहितत्कुर्यात्पितृभ्यस्तदनन्तरम् । कात्यायनोपि । मातामहस्य-
 भेदेपि कुर्यात्तै नैवसाग्निकद्व्युत्तर्यः । अथार्थः पूर्वमुक्तः । माधवीये दैव-
 द्विजकरपक्षे मातामहपङ्क्तावपि पृथग्द्वितीयमग्नौकरणमिति पा-
 रिजाते तु । मातामहपृथक्श्राद्धपक्षे तत्पङ्क्तावग्नौकरणं । अग्नि-
 सन्निधौ साग्निकः कुर्यादिति । एतदाचाराभावाच्चिन्त्यं । आशु-
 लायनविषयं वा होमद्वयम् । वाजसनेयिनां चैकएव होमः ।
 तथा । वैश्वदेवेयदैकस्मिन् भवेयुर्द्वादयः द्विजाः । तदैकपाणौ हो-
 तव्यं स्याद्विधिविदितस्तर्वात् वाक्ये वैश्वदेवद्व्युत्तर्यस्य पितृगोपलक्ष-
 णत्वे नैकपाणावेव न होमद्वयमिति । तथाऽहह्याह्वाक्यः । मा-
 तामहपृथोदद्यादग्नौकरणमाहुती । निराशाः पितरस्तस्य पैशा-

चंश्राद्धमुच्यतइति । यद्वासाग्नेरुभयत्र निरग्नेरेकत्रेतिव्यवस्थे-
त्ताविरोधः ।

**मू० हुतशेषन्दत्वा पात्रमालभ्य जपति
पृथिवीतइति ॥ ३ ॥**

पात्रमित्युद्देश्य गत मेकत्वमविवक्षितम् । ज्योतिष्टोमे दशा-
पवित्रेण ग्रहसंमार्ष्टीतिवत् । अतःसर्वपात्रालम्भः । १ कांश्यपा-
त्रपरिमाणं स्मृतौ । पञ्चाशत्पलिकं कं स्यंद्वाधिकम्भोजनायवै । गृ-
हस्थैस्तु सदाकार्यं सभावेहेमरूपयोरिति । आलभ्यजपतीति नम-
न्वान्तर आलम्भः । अत्रसंशयः । किं हुतशेषमात्रन्दत्वा पात्रालम्भ
उतसर्वान्नंपरिविष्येति । उभयवाक्यदृष्टेः । तथा । स्कान्दे । विप्र-
पात्रे पृथिवीतइति चान्नाभिमन्त्रणम् । इदमन्त्रं च साङ्गुष्टं ततो-
न्तपरिवेषणम् । याज्ञवल्क्योपि । हुतशेषम्प्रदद्यात्तु भाजनेषु समा-
हितः । यथा लाभोपपन्नेषु रौप्येषु तु विशेषतः । दत्त्वा न्नस्पृथिवी-
पात्रमिति पात्राभिमन्त्रणमिति । साग्निः पूर्वम्परिविष्य हुतशेष-
न्दत्वा पात्रमालभेत निरग्निस्तु हुतशेषन्दत्वा न्नंपरिविष्य पात्र-
मालभेत । अन्नेषुपरिष्टेषु हुतशेषन्ददत्यथेतिवचनादित्येके ।
तन्न । साग्निर्हुतशेषंदत्त्वैवपरिवेषयेदितिक्रमस्य शौनकीकृत्वात् ।
तथा । हुत्वाग्नींपरिविष्टन्तु पितृपात्रेष्वनन्तरम् । निवेद्यैवापस-
व्येन परिवेषणमाचरेदिति । हुतशेषमपसव्येन निवेद्येत्यन्वयः ।
यदुक्तं निरग्निर्हुतशेषंदत्त्वान्नम्परिविष्य पात्रमालभेतेतितन्न ।
अन्नेषुपरिविष्टे ष्विति वचनस्य वैयर्थ्यापत्तेः । ततश्च साग्निर्हुतशे-
षंदत्त्वा न्नम्परिविष्य व्यक्तपात्राणि पात्रमालभेत । निरग्निं रन्-

(१) भोजनपात्रे पलाश पत्रम् अथपण बर्जितम् हेमाद्रौ पलाशेभ्यो विनानस्युः
पणं पात्राणि भोजने अपि वाकांस्पपात्रे जुदेवै पत्रो च वाहविः ॥

परिविध्य हुतशेषन्दत्वा तथैवपात्रमालभेतेत्यर्थः । विप्रपात्रे पृथि-
वीतद्वतिवाक्ये एतत्तेनप्रविषणमित्यवान्नशब्दो योगेनव्यञ्जन-
परस्तेननान्नपरिवेषणस्य पात्रालम्भानानन्तर्यविरोधः । तथापु-
राणसमुच्चये । भाजनालम्भनङ्कुर्याद्वत्वाचान्नंयथाविधीति । १ अ-
स्तपाणित्वं पात्रे । दक्षिणान्तुकरं कृत्वा वासोपरिनिधाय च । दैवंपा-
त्रमयालभ्यपृथिवीतेपालमुच्चरेत् । २ दक्षिणोपरिवामञ्चपितृपाल-
स्यलम्भनमिति । अत्र के हुतशेषन्देवपात्रे नपुनर्देयमिति । तथायमः ।
अग्नौकरणशेषन्तुपितृपिप्रतिपादयेत्प्रतिपादयितृणान्तुनदद्या-
द्देवदेविके । शौनकोपि । हुत्वाग्नौपरिशिष्टं त्विति प्रागुक्तं वायुपु-
राणेपि । हुत्वादेवकरेणाग्निं शेषंपितृभ्यो निवेदयेत् । नहिस्मृताः शे-
षभाजोऽश्वेदेवाः पुराणगै रिति । अन्ये वविशेषाः सर्वेऽर्थादेयमि-
ति । सूत्रकारोपि । दैवपूर्वं ग्राह्यमिति । अतो यते । आदेयदुक्तं न देय-
मिति तन्न । वाक्यार्थानवबोधात् । तथाहि । अग्नौकरणशेषन्तु-
पितृपिप्रतिपादयेत्पितृपात्रेऽर्थादेयमिति । पितृपात्रेऽर्थादेयमिति ।
देवेनदद्यात्किन्तुपात्रेदेवे ततःपि यदुक्तं त्र्यंशं पितृभ्यो । यदुक्तं हुत्वा-
ग्नावितिवाक्यं तस्माग्निविषयम् । यदुक्तं हुत्वादेवकरेद्विति
तत्रदेवेहुत्वाशेषम् पितृभ्यो दद्यान्नतुवैपरीत्येत्यर्थः । अतीर्थानव-
बोधादित्युक्तम् । नेतरः । उक्तहेतोः साग्निनिरग्नेर्विशेषावगतेः ।
न बोधयवाकेयसत्यविशेषोयुक्तः । कुत्रचिद्विषयान्तरस्यादृष्टेः । तत-
श्चसाग्नेरग्निहोमोत्तरं हुतशेषदानं पितृपात्रेऽर्थादेव । निरग्नेर्देव-
करहोमे पितृपात्रेऽर्थादेव पितृकरहोमेतु निरग्नेर्देवादिसर्वपात्रेषु

(१) प्रचेताः उत्तानंदक्षिणं सव्यं नोचम्यात्राण्युपस्पृशेत् ॥

(२) पितृभ्योऽर्थादेयः उत्तानेनतुर्हस्तं नकुर्वीदन्नावगाहनं ॥ असुरंतद्भवेत्तद्वि-
मपितृणां च । िठतेरिति विष्णुः ॥

हुतशेषदानमिति सिद्धम् । तथा शाकलायनः । हुतशेषं प्राग् वेदत्वा
पश्चात्पित्रा इति । कात्यायनोपि । विप्रपाणौ ततो हुत्वा दद्याच्छे-
षं पृथक् पृथक् । देवानामादितः कृत्वा पितृपात्रेषु च क्रमात् । वृद्ध-
मनुः । देवपूर्वयतः श्राद्धं तस्माद् दद्यात्प्रत्यक्षतः । अग्नौ करणशेषञ्च
देवानामादितः क्रमात् । वैश्वदेवादितः सर्वं विकरं पिण्डवर्जितं ।
अग्नौ करणशेषं यत्प्रदद्याद् वैश्वदेविके । धर्मप्रदोपेपि । कुशेषू-
त्तानप्राणिस्तु जुह्याद् वै हुतस्रुतं । शेषं देवाय दातव्यं पितृभ्यस्तद-
न्तरमिति । सग्निर्देवपूर्वं दद्याद् न्निरग्निर्नेत्यविरोध इत्येके ।
एवं दत्त्वा पिण्डार्थमवशेषयेत् । तथा हारीतः । ऊतोच्छिष्टं ब्राह्म-
णभ्यः पिण्डार्थमवशेषयेत् । धर्मप्रदोपेपि । अग्न्यभावे तु विप्रस्य
हस्ते ज्ञत्वा तु दक्षिणे । शेषयेत्पितृविप्रार्थं पिण्डार्थं शेषयेत्तथेति ।

मू० वैष्णव्यर्चा यजुषा वांगुष्ठमन्नेव गा-
ह्यापहता इति तिलानवकीर्येति ॥ ४ ॥

वाशब्दो समुच्चये । (१) वैष्णवी ऋग्दिदं विष्णुरित्यादिका । (२) य-
जुश्च विष्णोर्हव्यं रक्षेति ततो रेकतरेणानखं द्विजांगुष्ठमन्ने निवे-
श्यापहता इत्यनेन तिलान्पात्रसमन्तात् प्रदक्षिणादिक्रमेण विक-
रेदित्यर्थः । निरङ्गुष्ठं हि पितृणान्नोपतिष्ठत इति वाक्यात् ।
नोपतिष्ठत इत्यसुरं भवतीत्यर्थः । तथायमः । निरङ्गुष्ठं यच्छ्राद्धं
वहिर्जानुवयङ्मुतं । वहिर्जानुवयङ्मुतं सर्वमेवासुरस्मर्त्तवेदिति ।
अत्रैके तिलान्नपात्रेष्वेवावकिरति तन्न । तिलान्सर्वानि-
क्षिप्य पितृपात्रेषु वर्जयेत् । पितृपात्रं तिलान् दद्याद् निराशाः पित-
रोगता इति वक्तव्यम् । पराशरोपि । सर्वदा च तिलाग्राह्याः श्राद्ध-

(१) नयत्तत्तत्पादावसाना ऋक् ॥

(२) अनियत्तत्तत्त्वम् अपादावसानत्वं यजुः ॥

कालेविशेषतः । पात्रेषुप्रतितान् दृष्ट्वा निरायाः पितरोगतादिति ।
यत्तु ततोमधुष्टताकृत्तु सोष्णभनन्तिलान्वितं । गृहीत्वा देवती-
येन प्रणवेनेतत्तपुजः । एतद्वोच्यमिच्छुक्ता विश्वेदेवास्तुभोजये-
दित्तात् तिलान्वितत्वमन्नस्योक्तं तद्वैश्वदेवविषयं वा । तथामा-
त्ये । उभाभ्यामपि हस्ताभ्यामाहत्तापरिवेषयेत् । प्रशांतचित्तः
सतिलं दर्भगाणिरशेषत इति । सतिलमन्त्रहस्तद्वयेन परिवेष-
येन्नैकेनेत्यर्थः । तथा एकेनपाणिनादत्तं शूद्रदन्नं न भक्षयेत् ।
पुराणोपि । नापवित्तेण हस्तेन नैकेन विनाकुशान् । नायसेनायसे-
नैव श्राद्धे तु परिवेषयेदिति । आदयायसे सप्तमी । तत्पात्रेन्नं न धा-
र्यमित्यर्थः । सौवर्णराजताभ्याश्च खड्गेनौदुम्बरेण वा । दत्तम-
क्षयतां याति फलुपात्रेण वा न्यथेति वाक्यात् । फलु उदुम्बरः ।
पत्रिषेणेति सप्तत्रिंशत्करः स्वयम्परिविषयेदित्यर्थः । फलस्यानन्ता-
तापोक्ता स्वयन्तुपरिवेषणे इति वायुवाक्यात् । यत्तु परिवेषणं
प्रशस्तं हि भार्ययापितृतृप्तये । पितृदेवमनुष्याणां स्त्रीसहायायतः
स्मृतेति । तदन्त्यापेक्षया स्त्रीस्तौ वावेदितव्यं । न विनाकुशानिति
केवलनिषेधः । हस्ते दत्त्वा तु यः स्नेहं व्यञ्जनं लवणादिकं । दाता-
रो नोपतिष्ठन्ते भोक्ता भुङ्क्ते तु किलिषं । घृतं व यदि वा तैलं विप्रो दद्या-
न्न खच्युतम् । यमस्तदशुचिं प्राह तुल्यं गोमांसभक्षणमिति वाक्यो-
त् । कात्यायनोपि । द्रव्यादेयं दद्यान्नञ्च समस्तव्यञ्जनानि च ।
अपक्वं स्नेहपक्वं वा न तु द्रव्याकदाचन । स्नेहाक्तञ्च तथाऽपक्वम् ।
द्रव्यायादातुमिच्छति । सभूणहामुरापश्च सस्त्रीयौगुस्तत्पगः ।
यमोपि । चतुः श्रोतसमायुक्तो हस्तेनोन्मार्जयेद्घृतम् । उभाव-
धो ब्रजयाताम् दाताभोक्तानसंशयः । उन्मार्जनं गोधनम् । स्मृतं-
न वै श्वतुर्भिश्च यो दद्यात्पाणिना घृतम् । दाता पुण्यं न वाप्नोति भो-

क्तापापशतवृजेदिति । अपहता इति पितृ एव न देवे तत एव रजो-
 घृत्वादितिकर्कः । तूष्णीं यवान्यिकरेदित्यन्ये । अत्र यदप्रयन्नादि
 कल्पनं नोक्तं तथापीदमग्नं मिमात्राप इदमाज्यमिदं हव्यमित्य-
 न्नादिकल्पनं कार्यं सा तथा कात्यायनः । उभाभ्यामपि हस्ताभ्यां पातं-
 धृत्वा तु तन्हुडम् । शीघ्रे दक्षिणं हस्तमग्नस्तत्कल्पयेत्तदा । तथा ।
 स्पर्शनान्ते स्पृशेदग्नम् न कल्पान्ते वलिं हरेदिति । अत्र कव्यादि
 नोच्चरेदिति कश्चित्तन्न । विष्णो हव्यञ्च कव्यञ्च ब्रूयादत्रेति वैक-
 मादिति मनूक्तेः । पुराणसमुच्चये । हव्यं देवे समुच्चार्य पितृणां क-
 व्यमेव च । कव्यस्योच्चारणादेव प्राप्नुयुस्तृप्तिमुत्तमां । कव्यादापित-
 रः प्रोक्तास्तस्मात्कव्यमकीर्तयेदिति । ननु किंपरिवेषणे सव्य-
 पसव्यविधिरस्ति न वेति । तत्रास्तीत्येके । तन्न । उभयत्र सव्ये न
 विधेः । तथा काष्णीजिनिः । अपसव्ये न कर्तव्यं पितृगृह्यस्विशेषतः
 अग्नदानाहुते सव्यमेवं मातामहेष्वपि । भुजवजोपि । सर्वकर्मा-
 पसव्ये न पितृकर्मणि कुर्वता । अग्नदानाहुते कार्यं तद्वद्विषविसर्ज-
 नमिति । तथा । एकपंत्युपविष्टानाम् विप्राणां श्रद्धाकर्मणि ।
 भयं भोज्यासनन्ददरा द्विपरीतनुनिःफलम् ॥

मू० उणा० स्विष्टमन्नं दद्यात् ॥ ५ ॥

उणामिति पर्युपितापृपादिनिवृत्त्यर्थम् । तेन स्मृत्युक्तमपि प-
 र्युपितमपृपादि श्राद्धे न दद्यादित्यर्थः । तद्विधश्च । यवगोधूमजंसवं
 पायसञ्चैव विक्रियात्तत्पर्युपितमयदं स्नेहाक्तञ्चैव यज्ञवेदित्यादि ।
 पर्युपितमयशुक्तं देयमित्येके । तथायमः । अपृपाश्च करस्माश्च ।
 धानावटकसक्तवः । शाकस्मांसमपूपञ्च घृतकेसरमेव च । यवागुः पा-
 यसञ्चैव यज्ञन्यत्स्नेहसंयुतम् । पूर्वे पर्युपितमोज्यं भुक्तञ्चेत्परिव-
 र्जयेत् । देवलोपि । अभोज्यं प्राङ्महारां शुक्तं पर्युपितञ्च यत् ।

अवब्रीह्यादिषु अपूपमज्जायं पुनरूपोक्तिः । शङ्कोपि । दधिभ-
 द्यञ्चशुक्तेषु सर्वस्रदधिसंभवम् । ऋचीसपक्वभक्ष्यंस्या त्सर्पियुक्त-
 मिति स्थितिरिति । तन्न । अभुक्तपर्युषितस्य दृष्टादिदोषोपहतत्वेन
 नित्यभोजनविषयत्वात् । तेषामप्युष्णानामेव श्राद्धोपयोगात् ।
 तथाआदित्ये । विविधम्पायसंदद्या इन्द्रियाणिसुवह्निच । लेह्यं
 चोष्यं तथापेयं मुष्णमेवफलंविना । वायौ । भक्ष्याण्येवकर-
 म्भाश्च दृष्टकावृतपूरिकाः । कृशरामधुसर्पिश्च पयःपायसमेवच ।
 स्निग्धोष्णानिचयोद्दद्या दग्निष्टोमफलंलभेदिति । करम्भादधि-
 सक्तवः । दृष्टकाः कासारखण्डाः । कृशरस्तिलकल्कयुक्तौदनः ।
 स्विष्टमिति सुशब्देनैर्मल्यं विविधत्वञ्च दर्शयति । तथायमः ।
 ततोविशदमन्नाद्यं भोजयेत्पयतोहिजान् । अन्नं सूपं घृतं शाकं मां-
 सन्दधिपयोमधु । धानाश्चमधुसंयुक्ता इक्षूंश्चैवसगोरमान् । शर्करां-
 फलमूलञ्चसर्वन्दद्यादमत्सरीति । मयुरपि । भक्ष्यंभोज्यञ्चविविधं
 मृलानिचफलानिच । देयानिचैवमांसानि पानानि मुरभीणिच ।
 विविधमित्येकान्ननिषेधः । ततोन्नवहसंस्कारं नैकव्यञ्जनभक्ष्य-
 वत् । चोष्यंपेयसमृद्धन्तु यथाशक्त्युपकल्पयेदितिवाक्यात् । अन्न-
 मित्तादनीयम् । अन्नमितिपक्वसंज्ञावा सस्यंक्षेत्रगतप्राज्ञः सतुषं-
 धान्यमुच्यते । आमान्नं सतुषंक्षेत्रपक्वमन्नमुदाहृतमितिवाक्यात् ।
 तेनसंभवेसत्तगामान्नादिक न्नदेयमित्यर्थः । दद्यादिति यथोक्त-
 संकल्पवाक्यं न्दर्शयति । अत्रैके । अर्धेक्षय्योदकेचैवेति कात्तग-
 यनेनान्नदाने तन्नस्य दर्शित्वा दद्यात्पितृपितामहप्रपितामहा-
 मुकशर्माण इत्तगादुच्चार्यतृतीयस्तृतीयोंशं स्तेभ्य स्वधेत्तिमं-
 वेणदद्यादिति । अन्येत्वन्नं वासावेतत्तद्वच्चुद्दिश्य भोजयेदि-
 तिशांखायनीक्ते रमुक्रामुकगोत्रैतत्तुभ्यमन्नंस्वधानम इतिब्राह्मो-

क्तेश्च । पृथग्गृहिष्यदद्याद्भतन्त्रेणेति । एवं सत्यस्मत्पितरमुकशर्म-
 न्नस्मत्पितामहास्मत्पितामहेत्यादि पृथक्पृथग्गृहिष्य वाक्यान्ते
 इदमन्नसंघृतादि वःस्वधानमदत्तुमद्यथा वाक्यमुचितमित्तया-
 भाति । तन्त्रपार्थक्ययोरुपदेशात् । अथच ब्राह्मणावित्तसंपत्ता वे-
 कौकस्यापितेत्ययः । एकोवैकसुभोक्तव्य स्वयाणामेकएववेतिवाक्या
 त्पृथग्द्विजपक्षेपृथगुपदेशः । त्रयाणामेकद्विजपक्षे तन्त्रेणेत्यविरो-
 धः । अत्रैके इदमन्नं वःस्वधेति संकल्पे नममेतित्यागं न कुर्वन्ति-
 तन्न । स्वसत्तानि वृत्ते हृत्तत्वात् । तथा अत्रिः । हस्तेन मुक्तमन्नाद्य-
 मिदमन्नमुदीरेत् । स्वाहेति च ततः कुर्यात्स्वसत्ताविनिवर्त्तनं ।
 सस्वध्वगोत्रनामानि इमन्नन्ततः स्वधा । पितृक्रमादुदीर्यन्ते स्व-
 सत्ताविनिवर्त्तयेत् । धर्मप्रदीपेपि । ततोन्नं पितृदेवेभ्यः संकल्प-
 चयथाविधिः । दत्तं यद्दास्यमानं तत् आहृतेर्नममेति च । एतत्सं-
 कल्पोदकं हस्ते नदेयम् । तथा धर्मप्रदीपेपि । सिद्धान्तस्य संकल्पो
 भूमावेव प्रदीयते । हस्तेषु दीयमानं यत्पितृणां नोपतिष्ठते । भूमि-
 र्जनिनी सर्वेषां भूतानां च विशेषतः । तत्रोपतिष्ठते न तु न च हस्ते-
 कदाचन । स्मृतिमंजरीकारोपि । दीपमन्नं च पिण्डञ्च भूमौ दद्या-
 द्विचक्षणः । पूर्वदानानि विप्राणां करे दद्याच्च दक्षिणे । तथा । ति-
 लदर्भसमायुक्तं तोयं भूमौ प्रदापयेत् । पात्रस्य सन्निधौ पितरौ देवेयद-
 ममन्वितं । वैश्वदेवस्य वामोरु पितृपात्रस्य दक्षिणे । संकल्पोदक-
 द नस्यानियथा इयथाविधीति । अकृते न्नसङ्कल्पे न्नं द्विजानस्पृशे-
 युः । पात्रञ्च नोदरेयुः । तथा अत्रिः असङ्कल्पितमन्नाद्यम्पाणिभ्यां यदु-
 पस्पृशेत् । अभोज्यत इवेदत्तं पितृणां नोपतिष्ठते । अकृते त्वं न सङ्क-
 ल्पेय पात्रञ्चोदरे द्विजः । दृष्ट्या इमवाप्नोति दाता च नरकं व्रजेदि-
 ति । सङ्कल्पोत्तरमपोशाना त्प्रागं न न गृह्णीयात् । तथा तत्रैव ।

अन्नं दत्तं न गृह्णीयाद्यावत्तोयं न सम्पिबेत् । अपीत्वामर्दितं चानं भुं-
जने किल राजसाः । तथा हस्तेनान्नं न गृह्णीयाद्यावत्तोयं न सम्पि-
बेत् । अपीत्वामर्दयेदन्नं निराशाः पितरोगताः ॥

मू० शक्तावा ॥ ६ ॥

वाग्ज्योऽभावविकल्पे । स्थिष्टाभावे यथाशक्तिदद्यादित्यर्थः । अ-
वाप्यशक्तौ मांसगोधूमादे रात्रश्च कृतवन्बोधयं । तथास्कान्दे । आङ्-
मांसं न यो दद्यान्न गच्छति कुतश्चतः । नरकाह्नीषुभौ श्रौतस्मार्त-
कर्मत्रिलोपनात् । दृष्ट्याज्ञयत्यपि । विनामांसेन यच्छ्राद्धं कृत-
मयकृतम्भवेत् । क्रव्यादाः पितरो यस्मादलामेपायसादयः । जात-
कण्योपि । दारवान्यो द्विजः श्राद्धे दद्यान्लोमांसमध्वरे । सदुरात्मा
दुरावासे वेदमार्गस्य दूषकः । स्कन्दसंवादे । रोमाणि कूर्मपृष्ठे च
वृणान्तेच्छ कर्तुं संभवः । व्योमश्चेन्मुष्टिना वातः सास्थि र्देहकृत्पाव-
पुः तदे गतिठते स्कन्दः तं श्राद्धं निरामिषम् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्रा-
द्धं देयं हि सामिषम् । अभोज्यं विप्रान्नं श्राद्धे मांसमन्यासु वर्जयेत् ।
सयमश्नाति बामृढः सयाति नरकं ध्रुवम् । अचिः । अगोधूमञ्च-
यच्छ्राद्धं कृतमयकृतं भवेदिति । अत्र । फलमृत्लाशने मेधैर्मुन्य-
नानाञ्चभीजनैः । न तत्फलमवाप्नोति यन्मांसपरिवर्जनादिति म-
नूक्तेः । सुन्यन्तम्राह्मणस्योक्तं मांसं क्षत्रियवैश्ययोः । मधुप्रधानं द्र-
व्यं सर्वं ग्रामविरोधियदिति पुलस्त्याद्युक्तं च । सुन्यन्तप्राधान्यावगमा-
न्मांसं क्षत्रियविद्धिप्रयम् । न विप्रस्येत्येके । क्रव्यादिलभ्यमांसेन श्रा-
द्धम् न प्राणिहिंसापूर्वकमिति । तथामनुः । नाकृत्वा प्राणिनां हिं-
सां मांसं मुत्पयते क्वचित् । न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विव-
र्जयेत् । समुत्पत्तिश्च मांसस्य ब्रधवन्धौ च देहिनाम् । प्रसमीक्ष्य नि-
वर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणम् । भारतेनौ सोपि । न हि मांसं नृणा-

त्काष्ठा दुपलाद्वापिजायते । हत्वाजंतून्भवे न्मांसं तस्मात्तत्परि-
 वर्जयेत् । एकस्यक्षणिकादृप्ति रन्यः प्राणैर्वियुज्यते । अहीमांस-
 स्यदौराक्त्यं प्रत्यक्षमिहदृश्यते । किञ्च । यूपज्जित्वापशुंहत्वा
 कृत्वासधिरकर्दमं । यदेवमस्यतेस्वर्गं नरकैकेनगम्यतदुत्थये ।
 कलिविषयोमांसनिषेधो विधिस्त्वन्यविषयइति । तथा अन्नतागो
 पशुश्चैवश्राद्धे मांसन्तथामधु । देवरेणसुतोत्पत्तिः कलौऽञ्जविवर्ज-
 येदित्यपरे । देशविषयोनिषेधइत्यन्ये । तस्माच्छ्राद्धे मांसनिषेध-
 इति । अत्रोच्यते । यदुक्तंमुन्यन्नं ब्राह्मणस्येति प्रधान्यान्मांसं
 क्षत्रियविद्विषयं नब्राह्मणस्येति । तन्न । मांसादुक्तवत्स्वभावएव-
 मुन्यन्नादिप्राधान्योपपत्तेः । तथाअत्रेयः । सुन्यन्नामिषमाध्वीकौ
 विप्रद्विजजघन्यजाः । श्राद्धंविदधुरसति द्रव्येयसतिवापरैः । मा-
 ध्वीकमधु । द्विजौक्षत्रविशौ । जघन्यजाः शूद्राः सांसादिद्रव्ये-
 ऽसति सुन्यन्नादिभिः क्रमादिप्रादयःश्राद्धं कुर्युः सतितुमांसादौ-
 तेनैव । तथाऽवशातातपः । सुन्यन्नामिषमध्वाज्यै रभावेप्रोक्त-
 वस्तुनः । क्रमादिप्रादिभिर्वर्णै विधेयमितिशुश्रुमः । परमान्ते-
 नमांसेनयाकौ र्मधुवृतादिभिः । सर्ववर्णैः प्रकर्तव्यं श्राद्धं वैचित्तया-
 ठातः । वृद्धमनुरपि । मुन्यन्नैर्ब्राह्मणाःश्राद्धं सामिषैर्वाहुसम्भवाः
 उरव्यामधुनाकुर्युः शूद्राःमूलफलादिना । असम्भवेप्रकर्तव्यं सेतैरे-
 वहिकेवलम् । सर्ववर्णैस्तु कर्तव्यं सामिषंसतिसम्भवइति । यच्चाप्युक्तं
 प्राणिहिंसापूर्वक एवश्राद्धे मांसनिषेधइति । तदपिन । सामान्य-
 हिंसाया अग्नौषोमीय पशुहिंसाविधिवद्विहितहिंसयाबाधोपप-
 त्तेः । तथाजावालः । हिनस्तयःपशुन्श्राद्धं मुद्दिश्यैवसपाप्रभाक्
 श्राद्धापदेशतोहिंसा मपिश्राद्धेनदुष्यति । स्कांदेपि । अर्थेदेवप्रिशृ-
 नांहि योहिनस्तिपशुन्द्विजः । सयज्ञफलमाप्नोति तेचयान्तिपरा-

कृतिम् । स्वार्थमन्नम्चेद्यत्तु योहिनिस्तिष्ठथापशून् । एकाकौसि-
ष्टमन्नाति त्रयस्तेयान्तिरौरवम् । भीष्मोपि योहिंसकानिभूतानि
हिनस्त्यात्मसुखेच्छया । कृष्णद्वैपायनः प्राह स्वावरत्वंसगच्छति ।
अत्रिरपि । मधुपर्कैव सोमेव दैवेपितोवकर्मणि । अत्रैवपशवो
हिंस्या नान्यत्रेतिकथञ्चन तथा । यज्ञार्थम्पशवोवध्याः पुत्रार्थ-
परयोषितइत्यादिवाक्यात् । यदपिकलिविषयोनिषेध इतितद-
पिन । कलिविषयविधायकवाक्यैस्तद्वचनस्यवाधात् । तथाजा-
तृकृत्यः । मांसयुगेषु सर्वेषु यज्ञश्राद्धार्थमाहृतम् । श्राद्धोपयमनेय-
ज्ञे कलौतच्चविशिष्यते । सुमन्तुरपि । कुतर्कोपहताविप्राः कलौचे-
त्यान्निरामिषम् । तस्मिन्नेच्छन्तिपितरस्तस्यश्राद्धे कदाचन । पैठौन-
सिः । परमांनं कालशाकं मधुमांसंष्टतम्पयः सुन्नान्नानिति लाविप्राः
प्रकृत्याहविरष्टधा । शस्तान्यष्टौतु सर्वेषांयुगेषुमुनिसत्तमाः । पितृ-
णां देवतानाञ्च दुर्लभानि कलावधीति । निवस्थान्तरेचैतद्वाक्य
निर्मलत्वप्रतिपत्तेश्च । तथा । गोमेधोनरमेधश्च अक्षतागोपशुस्तथा ।
देवराच्चमुतोत्पत्तिः कलौपञ्चविवर्जयेत्इति पराशरोक्तेः । यत्तु
देशविषयोनिषेध इतितदपिन । मध्यदेशादौ जिह्वालुतया ऽवि-
हित मांसमन्नणोपलब्धेः । नचदेशविषयः शक्यतेवक्तुं । देशभेद
विषयस्यनिरासात् । तथा वृद्धप्रचेताः । नयुगानांनदेशानां
नविप्राणां द्विजोत्तमाः धर्मशास्त्रेषुवैभेदो दृश्यतेमांसमन्नणे । देश-
देशभेदे श्राद्धे दृश्यमाणत्वाच्च । तस्माद्विहित हिंसादौ श्राद्धादि-
कर्ममुच मांसमन्नणविधिर्नंतरत्रेतिसिद्धं । तथामनुः । प्रोक्षित-
मन्नचयेन्मांसं ब्राह्मणस्यच काम्यया । यथाविधिनियुक्तस्य प्राणाना-
मेवचात्यये । याज्ञवल्क्योपि । प्राणात्यये तथाश्राद्धे प्रोक्षितन्दि-
जकाम्ययेति । भक्ष्यञ्छागादिविहितमांसं । देवलः । पञ्चपञ्च-

नखाभल्या धर्मतः परिकीर्तिताः । गोधाकूर्मः शशोविश्व शङ्ख-
 कश्चेतितेऽस्मृताः । धर्मतइतिप्रोक्षितादौ । नचायमपूर्वविधिः ।
 रागप्राप्तेः । नापिनियमः पक्षेऽप्राप्तेः । अतोऽत्रगोधादि पञ्चका-
 तिरिक्त पञ्चनखनिषेधाधिका परिसंख्येति । तथारामायणे ।
 शशकः शङ्खको गोधा सेधाकूर्मश्चपञ्चमः । पञ्चपञ्चनखाभल्या ।
 नभल्यावानरानराइति । एतच्च श्वादुःपलक्षणम् । ननु किम्प्रो-
 क्षितादौ नियमः परिसंख्येति । परिसंख्येतिब्रूमः । पक्षप्राप्तौ-
 नियमविधानात् । यत्तु स्वरुच्य क्रियमाणेतु यत्रावश्यङ्क्षिण्याभ-
 वेत् । नियमः सोऽत्रविज्ञेयः श्राद्धे मांसाशनं यद्येत्यत्रनियमोङ्गी-
 कृत सशब्दार्थरूपनिवृत्तिफलकत्वा देकरूपत्वमेव तयोरित्यवि-
 रोधः । अतोऽत्रश्राद्धशब्दस्योपलक्षणत्वे प्राणात्ययादिचतुष्टये परि-
 संख्यैवयुक्ता । तथाट्टहस्यतिः । रोगीनियुक्तविधिवद्भुतम् विप्रहृ-
 तस्तथा । मांसमदराच्चतुर्द्वेषा परिसंख्याप्रकीर्तिता । अतोऽन्यथा-
 तुयोऽप्रीया द्विधिंहित्वापिशाचतां । यावन्तिपशुरोमाणि तावत्प्रा-
 णोतिमानवइति । रोगीतिप्राणाऽत्ययोपलक्षितः । नियुक्तश्राद्धे
 विधिवद्भुतम् प्रोक्षितादि । विप्रहृतो द्विजकामनयाऽभ्यर्चितः ।
 परिसंख्येत्यमक्षणसंकल्पव्यावृत्तिः । तेन यथोक्तकृताभक्षणं निद-
 मस्यापि निवृत्तिरित्यर्थः । तथा । यथानिधिनियुक्तश्च मांसं नाश्ना-
 तिमानवः । सप्रेक्ष्यपशुतांयाति सम्भवानेकविंशतिमिति वा-
 क्यात् । सङ्कल्पश्च । श्राद्धवर्जपयोमांसम् नभोक्तव्यङ्गदाचन ।
 त्वज्जेदितिसन्ध्याय पर्यापातनंभवेदिति कार्ष्णाजिन्युक्तेः ।
 ईश्वरसम्वादेऽपि । ब्रह्मचारीयतिर्मांसं स त्वज्जेत्स्त्रीपतिंविना ।
 श्राद्धवर्जमथान्योऽपि सन्त्यजेत्तपसःकृते इति । तस्माच्छ्राद्धादौ मां-
 संभक्ष्यमेवेत्युक्तं । यत्तु प्रोक्षिताभुक्षितस्मांसं तथाब्राह्मणकाम्य-

या । अल्पदोषमिति ज्ञेयम् विपरीते तु लियत इति महाभारत-
वाक्यम् । तदेव विधिना कुर्यात् स्वर्गप्राप्तिमानव इत्यपि तत्र ।
हवियमोक्षितमन्त्रैः प्रोक्षिताभ्याक्षितभुवि । वेदोक्तेन प्रकारेण
पितृणाम्प्रक्रियासुच । पितृदेवतयज्ञेषु प्रोक्षितं हविरुच्यते । वि-
धिनावेददृष्टेन तदुक्तान्येन दुष्यतीति यमवाक्यं । सर्वेषामेव मां-
सानां महान्दोषास्तु भक्षणं । निर्वर्तने महापुण्य मिति माह प्रजा-
पतिरिति । यच्च भारतवाक्यम् भक्षणं महापुण्यं दोषो निवृत्त्या-
पुण्यमुच्यते इति तदुभयमपिश्रद्धादे रन्यत्र जिह्वालतया भक्षण-
विषयं । तथा स्कन्दपुराणे । यत्र यत्र निषेधो हि श्रूयते मांसभक्षणं ।
जिह्वालान्प्रतिसृज्यो तत्तूक्तविधिना श्रुतां । तथा । प्रयान्ति न-
रकंधोरं मांसमश्नन्ति येनराः जिह्वालान्प्रतिदोषोयं न दोषो वि-
धिना श्रुतामिति । यच्च वृहस्पतिवाक्यम् । रोगार्तो भर्षितो-
वापि मांसं नाश्नन्त्यलोलुपः । फलमप्राप्त्ययत्नेन सोऽश्वमेधफल-
स्य चेति तच्छ्राद्धे ब्रह्मचारिविषयम् । तथामनुः । व्रतवद्द्वैवदैवत्ये
पित्रो कर्तव्यमर्षिवत् । प्रकाममर्थितोऽग्नीया इतमस्य न लुप्यत इत्ये-
कमभिधायं व्रतवद्विषयवद्दर्शनस्य विधानात् । अलोलुप इत्यनेन
तद्विषयावगमाच्च तथा । सतर्पाति तपो जस्रम् यजते च ददाति-
च । मधुमांसं निवृत्तोयः प्रोवाचेदं वृहस्पतिः । जैमिनिरपि । ब्रह्म-
चर्यमुपास्यैव ये कृत्वा दारसङ्ग्रहम् । सन्यसेन्नाधिकारस्या न्मांसं वि-
धिवन्त्यत इति । अन्यत इति दारसंग्रहादूर्ध्वम् विधिवन्मांसभक्ष-
णाधिकार इत्यर्थः । तथामनुः । न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मै-
थुने । प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफलेति । मांसमदनैथुनेषु
विहितेषु भक्ष्यभोज्यान्नपानाभिगमनै र्भूतप्रवृत्तिश्चान्नदोषः ।
निवृत्तिस्तु महाफलप्रापिकेत्यर्थः । महती च सा च फलाचेति व्युत्प-

ते । न ववञ्च्यत्यत्ति न ताधुः । फलाफलशब्दयोः परयोरुभयथापि
 महच्छब्दस्याकारादेः स्व वक्ष्यमाणत्वात् । तथावृहस्पतिः । अभू-
 न्मांसपुरोडाशे भक्षणं मृगपक्षिणाम् । पुराणेष्वेवयज्ञेषु ब्रह्मक्ष-
 तसवेषु च । सौदामण्यांतथामदं श्रुतौ भक्षमुदाहृतम् । ऋतौ च-
 मैथुनस्यर्मम् पुत्रोत्पत्तिनिमित्ततः । स्वर्गप्राप्तेति न वंतु प्रत्यवायेन यु-
 ज्यतइति । तस्मात्प्रोक्षितादिचतुर्षु स्मृत्युक्तसंकल्पेन मांसतथा-
 गिनामपि गृहस्थानाम् भक्ष्यमेव मांसमिति न दोषः । अविहित-
 संकल्पेन तत्र यागिनास्तु पाच्यादिभक्षणं व्यदोषः । रोगार्ताना-
 मभ्यर्थितानां च ब्रह्मचारिणाम् आह्वादिष्वपि भक्षणं महान्दोष ए-
 वेति । अतस्तत्तन्मांसादेरपि आह्वेभक्षणमेवोचितमित्युक्तम् ।
 तथाचोयना । नियुक्तश्चैव यः आह्वे यत्किञ्चित्परिवर्जयेत् । पि-
 तरस्तस्य तन्मांसम् नैराश्र्यं प्रतिपेदिरे । देवलोपि । नियुक्तस्तु य-
 दि आह्वे देवे मांसं समुत्सृजेत् । आवर्तिपशुरोमाणि तावन्निरयमृ-
 क्कति । स्कंदे खरसंवादेपि । निवेशितस्तु यः आह्वे यज्ञे वापि द्विजा-
 धमः । मांसं नाश्नाति निरयम् । याति वै पशुतां न रइत्यलं स्वहुना ॥
 एवमन्नसंकल्प्यापोशनम् दत्तौ कारव्याहृतिपूर्वगायत्र्यादि जपे-
 त् । तथा च याज्ञवल्क्यः । सव्याहृतिकां गायत्रीं मधुवाता इति तृ-
 चम् । जप्त्वा यथासुखं वाच्यं भुंजीरं स्तेपि वाग्यताः केचित्तु मधुम-
 ध्वितिर्विर्जपं वारिधारां च न कुर्वन्ति । तन्न । उभयोरपि विधानात् ।
 तथा च प्रचेताः । आपोशानं प्रदायाथ सांतीति जपेदथ । मधु-
 व्याता इत्तु वस्मध्वित्येतत्त्रिकन्तथा । स्कंदेपि । आपोशानमथोदत्त्वा
 वारिधारां क्षिपेद्बुधः । नमो देवे भ्य इति च सव्यं नोदद्भुवो द्विजः ।
 अपसव्यं म्पितृभ्यस्तुष्टत धारां वदेत्स्वधामिति । एवं जप्त्वाऽद्वि-
 करणं कृत्वा ये देवासः ये च हेत्यादि पठित्वा यथासुखममृतं जुष-

धर्मित्युक्ताभोजयेत् । तथाचयमः । अन्नहीनंक्रियाहीनं मंत्रही-
नंचयद्भवेत् । सर्वमस्मिन् मित्युक्त्वाततोयत्नेनभोजयेत् । कात्या-
यनः । येदेवासश्चयेचेहमन्तद्वयमुदीरयेत् । मन्त्रान्तेतुततोब्रू-
यादस्यतं भुज्यतामिति । पूर्वोद्देवे उत्तरस्तुपितृ इतिविवेकः । दृष्ट-
यात्तत्त्वोपि । यथामुखं शुभं भोदति वाच्यमनिष्ठुरमिति ।
अत्रवलिदानमित्येके । नेत्यन्ये । एवंचवैश्वदेववलिः पित्रेने-
त्यविरोधः । तथाच । स्पर्शनान्तेऽष्टशेदन् कल्पनांतेवलिं हरे-
त् । होमस्तुमधुवातेति होमांत्तउदकंपिवेदिति वैश्वदेवविषयम् ।
अत्रिः ॥ दत्तेवाप्ययवाऽदत्ते भूमौद्योनिक्षिपेद्वलिं तदेतन्निष्फलं या-
ति निराशैः पितृभिर्गतेरिति पितृविषयम् । पितृणांमन्त्रसुत्तुष्टे
वलिं कुर्वेति ये द्विजाः । आसुरंतद्भवेच्छावम् पितृणांनोपतिष्ठत
इतिविशेषात् ॥

मू० अश्वत्सुजपेद्याहृतिपूर्वां गायत्रीं
सप्रणवां सकृत्त्रिंशं रक्षोघ्नीः पित्रा मंत्रान्पु-
रुषसूक्तमप्रतिरथ मन्यानि च पवित्राणि ॥७॥

सप्रणवांव्याहृतिपूर्वां गायत्रीमित्यन्वयः । पाठोऽर्धेन-
वाध्यते । त्रिशब्दस्तुविकल्पार्थः । अशनात्पूर्वविरश्नत्पुत्र सकृदि-
तिव्यवस्थार्थोवा । पूर्वस्याष्टदोषदुष्टत्वात् । तथाचप्रचेताः ।
आपोशानमथोदत्त्वासावित्रीं त्रिजपेदथ । मधुवाताइति त्वं
मध्वित्येतत्त्विकनर्थेति । अत्रहलायुधः सकृत्त्रिंशमधुमतीर्मधु-
मध्वितिचेति पाठइति तत्तत्कर्मादिभिरनादृतत्वात्तज्जपस्याशना-
त्पूर्वं विधानाच्च चिन्त्यम् । रक्षांसिघ्नन्तीति रक्षोघ्नीमूलविभुजा-

दित्वात्कः । तास्तुकृणुष्वपाजइत्यादयः पंचर्चः । ऋग्विशेष-
णत्वात्क्षीत्वं । तथाचश्रुतिः । एतान्नक्षीघ्नाग्रप्रतिसरानपश्यत्कृ-
णुष्वपाजइति रक्षीघ्नावैप्रतिसराइति । पित्रमन्ताउदीरतामि-
त्यादिवशोदश । सुराव तमित्यादिपञ्चदशपित्राइत्येके । तन्न ।
पितरोदेवतायेषामितितद्धितेनउदीरता मित्यादिनामेवपिद-
त्वात् तथाच भट्टपदाः तद्धितेन चतुर्थ्यावा मन्त्रवर्गेनचेष्यते
देवतासंज्ञितस्तत्र दुर्बलसुपरम्परामिति कृणुष्वपाजइतिच अग्ने-
ष्टावर्जमुच्चरेत् सुरावन्तादिकांसर्वांम् जपेच्चपितृसंहितामित्यनेन
सुरावन्तमित्यादीनाम्पितृसंहितात्वावगमात् पुरुषसूक्तं सहस्र-
शर्षित्यादिषोडशर्चः अप्रतिरथमाशुः शिशानेत्यादि सप्तदश-
द्वादशेत्यग्रे विचार्यमिदं यदि सर्वस्यापिशांतिपाठस्याप्रतिरथसंज्ञा
सप्तदश द्वादशसंख्यावच्छेदकमप्रमाणं स्यात् तदवच्छेदकप्रमाणञ्चे-
त्तर्ह्यचार्यमतभेदात् सप्तदश द्वादशसंख्यायामूलस्य दर्शनादनिश्च-
यः स्यात् तस्माच्छ्रुतिमूलत्वेन द्वादशैवेतिगम्यते तथाचश्रुतिः ब्रह्म-
न्नप्रतिरथ जपेत्पुत्रकस्यतस्माद्ब्रह्माप्रतिरथञ्जपेत्तयाशुः शिशानेत्ये-
व्योभिरुपाद्वादशभदक्तीत्युपसंहारः अन्यानि पिण्डब्राह्मणादीनि
तथाच वृद्धयाज्ञवल्क्यः पुरुषसूक्तं यजुषां पिण्डब्राह्मणशास्त्र्यर्थं
पितृस्तवच्चपंचैवम् गायत्रीस्तुब्राह्मणमिति ब्राह्मादिस्तोत्र समु-
च्चायकस्य तथाच मातृस्ये ब्रह्मविष्णुवर्क रुद्राणांस्तोत्राणिविविधा-
निच इन्द्रस्यसोमसूक्तानि पावमानांश्चशक्तित इति कस्यचिज्जपस्य
पिथ्यत्वात्प्राप्येनेत्येके तन्नसव्येनेत्रविधानात् तथाचजमदग्निः
असव्येनकर्ष्यं सर्वंश्राद्धं यथाविधिः सूक्तस्तोत्रजपन्यक्त्वा वि-
प्राणः सुविसर्जनम् किञ्चस्तोत्रसूक्तजपन्यक्त्वा पिण्डघ्राणञ्च दक्षि-
णां अह्वानान् स्वागतान्तंच विनाचपरिवेषणं विसर्जनं सौमन-

स्यमाशिषः प्रार्थनन्तथा विप्रदक्षिणाञ्चैव स्वस्तिवाचनकं विना पितृ-
 त्यमन्यत्रकर्तव्यस्याचीनावीतिनासदेति श्रवणं यदायश्नस्वतिसामा-
 न्येनोक्तं तथापि यथोपदेशं भोक्तव्यां तथाच प्रचेताः पीत्वा पोषानमश्नी-
 यात्पात्रे दत्तमगर्हितं सर्वेन्द्रियाणां चापल्यं न कुर्यात्पाणिपादयोः
 बौधायनः पादेन पादमाक्रम्य यो भुंक्ते नापदिद्विजः नैवासौ भुञ्जते श्राद्धं
 निराशाः पितरोगताः प्रचेताः भोजनस्तु न निःशेषं कुर्यात् प्राज्ञः
 कथञ्चन अन्यत्र दध्मः क्षीराद्वा क्षौद्रात्सक्तुं य एव च शेषत्यागस्य नित्य-
 त्वात् तथाच जमदग्निः भुक्त्वा पीत्वा तु यः कश्चिद्विक्तम्पात्रं समुत्सृजेत्
 स नरः क्षुत्पिपासातो भवेज्जन्म निजन्मनि न निन्देयुर्न वशेषेयु रिति
 तु अधिकोच्छिष्टत्यागविषयं तृप्तान्तेष्टासमावन्तु यो विप्रो न त्यजेत्त-
 दा यच्छ्राद्धे पिण्डदानादौ तद्वै रक्षांसि भुंजते इति वाक्यात् मनुः अ-
 त्ताक्तं सर्वमन्नं स्याद्दर्शनीरंश्चैव वाग्यताः न यद्विजातयो ब्रूयुर्दादृष्ट-
 टाहविगुणान् वाग्यता इत्तानेनैवाकथनं प्राप्ते न ब्रूयुरिति हस्तसं-
 ज्ञयाप्यकथनार्थं हुंकारेणापि यो ब्रूयादस्तेनापि गुणान्वदेरिति शं-
 खेन प्रतिषेधात् श्राद्धासमाप्ताविदं ज्ञेयम् निवृत्ते तु तथा श्राद्धे द-
 क्तयं शोभनं हविरिति वाक्यात् भोक्तृणां निषेधाद्वा ता तु हविः प्रशं-
 सनीयमेव रुच्युत्पादनार्थं भक्ष्यभोज्यगुणानुक्ता भोजयेद्वा ह्यणा-
 ञ्कनैः पृथक् पृथक् वसंवेदा कुर्यादेभ्यः प्ररोचनामिति अग्नीरंश्चैव-
 त्येवकारः परस्परस्पर्शस्य दोषत्वसूचकः तथा च शंखः श्राद्धपंक्तिषु भुं-
 जानो ब्राह्मणो ब्राह्मणं स्पृशेत् तदन्नमत्ता जन् भुक्त्वा गायत्र्यष्टशतं-
 जपेत् कात्यायनोपि एकपंभुंक्ते तु योक्ते विप्रो विप्रं स्पृशेद्यदि तदन्न-
 न त्यजेद्भुक्त्वा गायत्र्यष्टशतं जपेत् हारीतः पात्रे पात्रं प्रतिष्ठाप्य ये ५
 ज्ञानाद्भुंजते द्विजाः आसु तद्भवेच्छ्राद्धम् पितृणां नोपतिष्ठते मार्क-
 ण्डेयः कटिभुगस्तु यो भुंक्ते न तर्जानुकरस्तथा हसते वदते चैव निरा-

शाःपितरोगताः शंखलिखितौनचात्त्यंताधिकन्दद्या न्नपुतिगृही-
यादिति दादधर्ममाहशंख, श्राद्धे नियुक्तोभुंजाना न्नपृच्छेन्नवणादि-
षु उच्छिष्टाःपितरोयांति पृच्छतोनात्रसंशयः दातुःपततिवैवाहर्जि-
ह्वाभोक्तुश्चभिद्यते नन्विष्टं व्यंजनादिभोक्तायाचेतनवेति उभयवा-
क्यदृष्टेः तथाचब्रह्मशातातपः अपेक्षितंयोनदद्याच्छाड्यार्थमुपक-
ल्पितम् नयाचेतेस्मृतोमूढः सभवेद्ब्रह्मवातकइति वायौनिषेधः
याचेतेयदिदातारम् ब्राह्मणोज्ञानदुर्बलः पिप्परस्तुनतुष्यंतिदा-
तु भोक्तुर्नसंशयः तथा कृच्छ्रद्वादशरात्रेण मुच्यतेकर्मणस्ततः त-
स्माद्विद्वान्नैवदद्यान्नयाचेतनदापयेत् इति अन्यच्च नपंतौविषमं-
दद्यान्नयाचेतनदापयेदितिअत्रविरोधे उपकल्पितं यांचानत्वनु-
पकल्पितस्येत्यविरोधः यमः यावद्ददविष्यंभवति यावदिष्टंप्रदीयते
तावदश्रंतिपितरो यावन्नाहददाम्यहं अहंददामीति यावन्नाह-
तावदश्रंतीत्यर्थः एतच्चापेक्षितविषयं अपेक्षितं योनदद्यादितिवा-
क्यात् ननु मौनत्वोक्तेः कथंयाचनंहस्तादिसंज्ञानिषेधात् उच्यते
हस्तादिसंज्ञानिषेधो हविर्गुणाख्यातविषयो नतुयाचनादिविष-
यइत्यविरोधः तथाचनिगमः नान्नपानादिकंश्राद्धे वारयेन्मुखतः
कचित् अनिष्टत्वाद्ब्रह्मत्वाद्वा वारणंहस्तसंज्ञया देवलोपि अन्न-
पानक शीतोददध्विभ्योभ्यवलोकितः वक्तव्यकारणसंज्ञांकुर्वीतो-
र्जितपाणिनेति दात्वा व्यंजनादिकमादा यावलोकितेवक्तव्येह-
स्तेनसंज्ञांकुर्यादित्यर्थः ।

मू० तृप्तान् ज्ञात्वान्नम्पूजयिष्ये ॥ ८ ॥

ब्राह्मणान्तृप्तान्ज्ञात्वासर्वान्नमुदके नाप्लाव्याग्निदग्धेत्यनेन-
प्रकिरोदित्यर्थः तथाचयाज्ञवल्क्यः सार्ववर्णिकमन्त्राद्यं संपूज्या

प्लाव्यवारिण समुत्सृजेद्भक्तवतामग्रतोविकरन्भुवि सार्ववर्णिकं
 सर्वव्यंजनसहितम् असंस्कृतभागत्वाद्विकरेदधोदनमेवेतिक-
 श्चित्तन्न यदन्नं पिण्डदानेषु तदन्नं विकरेत्येवेदिति दृष्ट्याद्वा-
 वल्लभोक्तेः अटप्लेषवन्नं न विकरेदिति तद्वृत्तान् ज्ञात्वेत्युक्तम् ज्ञा-
 त्वाटप्लेषांस्ततो विप्रान्प्रकुर्याद्विकिरासनमिति तद्विज्ञानंचा-
 न्नादिग्रहणे नाहारानुमानेनचप्रतिपन्नम् अतयदप्यवकीर्येत्यु-
 क्तं तथापि प्रादेशपरिमाणं स्मृत्यंतराद्बोध्यं तथा दृष्ट्याच्च वल्लभः
 विकिरंभुवि दातव्यमुच्छिष्टेभ्यः प्रडंगुलम् पठंति च उच्छिष्टस्यो-
 त्तरे देशे पिण्डान् दद्यात्पण्डङ्गुलमिति यत्तु पुराणसमुच्चये विश्वे-
 देवपितृणां च अंतरे तु क्षिपेत्कुशान् तत्रावकिरणं कुर्याद्गाथा-
 मेतामुदीरयेत् यच्च तत्समं विकरन्तत्राह्वेव पितॄणां तरे भुवीति-
 द्विजाग्रस्थानबोधकमित्यत्र विरोधः भुक्तवतामग्रत इति योगीशो-
 क्तेः नन्वस्य विकिर संज्ञकत्वाद्विकीर्येति वाच्यं न प्रकीर्येति उच्यते
 विकिरं विनाश्राद्धं व्यर्थमिति प्र शब्देन द्योतितमित्यदोषः तथा च गो-
 भिलः विकरेण विनाश्राद्धम् निष्फलं परि कीर्तितम् एकोद्दिष्टे वि-
 शेषेण प्रे तत्राह्वेषु वर्जयेदिति यो मोहात्कुरुते श्राद्धम् विकरेण वि-
 नाश्रुचित् तत्सर्वव्यर्थतां याति पितृपिण्डोदकादिकमिति अवसंश-
 यः किमपिण्डश्राद्धे विकारः स्यादुतनेति उभयवाक्यदृष्टेः तथाहि
 पिण्डनिर्वापरहितं यत्र श्राद्धं विधीयते स्वधावाचमलोपोस्ति विक-
 रस्तु न लुप्यते तथा न चाग्नौ करणं कुर्यान्नार्घदानं कथंचन न पिण्ड-
 कल्पनाश्राद्धे विकिरान्नं न चोत्सृजेदिति उभयशास्त्रत्वाद्विकल्पद-
 तां के यत्र पिण्डदानानि प्रेषेरुत चेद्देशकालादासंभवेन पिण्डं वर्ज-
 करोति तदा विकिरः स्यान्न तु युगादयादिषु पिण्डदाननिषेधे पीतान्ये
 तद्विचार्य किं विकारः प्रधानमंगम्यादि प्रधानं तदापिण्डप्राधान्य-

विरोधः अथाङ्गन्तर्ह्यङ्गानां प्रधानानुरोधात्पिण्डाभावेतदभावइ-
त्यनाश्रयं विकल्पनस्तुनविषयकृतेः तदुक्तं स्मृतिद्वैधेनविषयः
पृथक्पृथगिति तस्माद्देशादसम्भवेपिण्डाभावेपिविकिरेतपिण्ड-
निषेधेपीतिमुस्थं तथामोक्षेश्वरनिबन्धे सघायुगादिभरणी श्रद्धे
पिण्डंविवर्जयेत् अन्नेजनपूजान्तमुलमुकास्तरणानिच निःशेषम-
ग्नौकरणम्बिकिरञ्चप्रदंगुलमिति तस्माद्युगादिषुपिण्डनिषेधे आ-
वाहनाग्नौकरणविकिरवेद्यादि पूजान्तस्वधावाक्यादीनांनिषेधः
सिद्धः विकीर्याचमेत् तथाचमरोचिः श्राद्धेषुविकिरन्दत्वायोना-
चामतिवैभवात् पितरस्तस्यप्रणमासम्भवन्युच्छिष्टभोजनइति ।
तथा विकिरेपिण्डदानेच तर्पणेभोजनेतथा कृतेआचमनंप्रोक्तम्
दर्भत्यागोविधीयते अत्रानग्निदग्धाइत्ययंप्राठः येषांदाहो नक्रियते-
येग्निदग्धास्तथापरइतिब्राह्मणवाक्यात् ॥

मू० सकृत्सकृदपोदत्वापूर्ववद्गायत्रीञ्ज-
पित्वामधुमतीर्मधुमध्वितिच ॥ ६ ॥

विप्रेभ्यश्चतु कार्यंसकृत्सकृदपोदत्वा पूर्ववत्सप्रणवव्याहृतिगा-
यत्रींसकृत्त्रिर्वामधुमतीर्मधुमध्विति जपेदित्यर्थः तथाच मार्कण्डे-
यः ततस्त्वाचमनार्थाय दद्याच्चापःसकृत्सकृदिति वीक्ष्मापिथ्य
दैवद्विजार्था अपोदत्वागायत्र्यादि जपद्व्योतकश्च तथाचगोभिल-
सूत्रम् अङ्गुष्ठमन्त्रे विधाय सकृत्सकृदपोदद्यादिति मधुशब्दोवै
याशुतामधुमत्यो मधुवाताइत्यदिशब्दः मधुमध्विति द्विरुच्चारणं
मन्त्रप्रदर्शनार्थम् संहितायांमधुमधुमध्वितिप्रवर्ग्यमन्त्रदृष्टेः देव-
पूर्वमब्धानामित्येके तन्नपितृपूर्वविधेः तथाचविष्णुः उङ्मुखेष्वा
चमनमादौ ततःप्राङ्मुखेषु दद्यादिति विसर्गश्चतुल्लुक्श्चाग्नौ कर-
णम्पङ्क्तिपावनम् करशुद्धिरपोशानं पितृपूर्वाणिषट्सदेत्युक्तम् ॥

मू० तृप्तास्येतिपृच्छति ॥ १० ॥

अनन्तरन्तृप्तास्येतिब्राह्मणान्पृच्छेदित्यर्थः अत्रपङ्क्तिमूर्द्धन्यप्र
श्वेतृप्तास्येति बहुवचनस्पृजार्थमित्येके तन्न प्रतिवचनेबहुवच-
नानुपपत्तेः नचाग्नौकरणादिष्विवात्रैकस्यप्रश्ने दृष्टार्थत्वं तस्मा-
त्पङ्क्तिमूर्द्धन्यपृच्छति सर्वान्वेत्यव्यवस्थित विकल्पद्वयमुक्तं । अतः
सर्वेप्रष्टव्याइति तथाचयमः यथाब्रूयुस्तथाकुर्या दनुज्ञातस्तुतैद्वि-
जैरिति ननुभोक्तृविप्राणां वसनेकिंश्राद्धम् समापनीयम् नवा
तत्रसमापनीयमित्येके तन्न स्मृतिविरोधात् तथाच हेमाद्रिकल्पे
अकृतेपिण्डदानेतु ब्राह्मणोवसतेयदि पुनःपाकंप्रकुर्वीत श्राद्धं कु-
र्याद्यथाविधिः धर्मप्रदीपेषु अकृतेपिण्डदानेतु भुञ्जानोब्राह्मणो-
वमेत् पाकंकृत्वापुनःश्राद्धं कर्तव्यन्तुयथाविधीति अकृतद्वत्युपा-
दाना त्कृतेसमापनमितिचेन्न वसनस्यश्राद्धविघातकत्वात् अत्रो-
त्तरेद्यु रेवपुनःश्राद्धमिति सिद्धम् तथाचस्मृतिः वसनेवाविरेकेवा-
वातद्दिनंबर्जयेदिति नचैतन्निमन्त्रणोत्तरंश्राद्धात्प्राग्भावमनवि-
षयं श्राद्धविघ्नेसमुत्पन्नेअन्तरामृतसूतके वदन्तिशुद्धे तत्कार्यं
दर्शे वापिचिच्छण्डित्युत्तरेदुर्विधानात् अत्रप्रायश्चित्तमित्ये-
के पठन्तिच पितृद्विजानांमध्येतुपितु श्चवमनंयदि तद्दिने चोप-
वासश्चपुनःश्राद्धंपरेहनि सर्वमग्नंसमादायमन्त्रैःप्राणादि पञ्च-
कैः द्वात्रिंशदाहतीर्हुत्वाशेषंकर्मसमाच रेदिति ।

* तृप्तास्मद्वत्यनुज्ञातःशेषमन्नमनुज्ञाप्य ॥ ११ ॥

ततस्तृप्तास्मेतिद्विजैरुक्तेशेषमन्नं किंक्रियतामिति भोक्तृनृप-
ष्ठादृष्टैः सहभुज्यतामित्यनुज्ञापयेदित्यर्थः । एतदपि सर्वादिचं
नपङ्क्तिमूर्द्धन्यस्यैव ननु श्राद्धोर्वरितपाकेएवशेषशब्दो ननुपाकान्त-

रेतत्कथम्याकान्तरभुजितददानञ्चेति चेन्न गृहसिद्धस्य सर्वस्यापि
 पितृशेषत्वेन दानभुज्यापत्तेः । तथाच यमः भक्ष्यभोज्यन्तथापेयं
 यत्किञ्चित्पत्राते गृहे न भोक्तव्यमितृणां तदनिवेदयत् यच्च नेति अतः
 शेषस्यापि पितृददेशेन दानमित्युक्तं ननु किं निरग्नेरुल्मुकनिधानं
 स्यान्न वा उल्मुकस्य दक्षिणाग्निसाध्यत्वात्तदभावे तन्नेत्येके स्मार्ताग्नेः
 पिण्डपितृयज्ञविधानाग्निरग्नेरित्यन्ये न देवताग्निशब्दक्रियाः ।
 परार्थत्वादिति परिभाषातो निषेधादग्न्यन्तरेण न स्यादित्यपरे नि-
 रग्नेरपि आहाराधिकारान्निषादस्य पतीष्टिवस्त्रौकिकाग्निर्नेतिकेचित्
 एवं सत्युल्मुकनिधानमनियतमिति उच्यते यदुक्तं दक्षिणाग्न्यभावे
 तन्नेति न तत् पिण्डपितृयज्ञवदित्यनेन स्मार्ताग्नेः प्राप्तत्वात् यच्च पि-
 ण्डपितृयज्ञस्य विधेर्निरग्नेर्नेति तदपि न अकरणे प्रत्यवायस्मृतोर्नि-
 त्यत्वं यत्तु न देवतेत्यादिनाऽग्नेः प्रतिनिध्यभाव इति तदपि पिण्ड
 पितृयज्ञवदित्यतिदेशा स्त्रौकिकाग्न्युपादानवैयर्थ्यं स्यात् यच्च नि-
 षादस्य पतीष्टिवः विरोध इति तदपि न नित्यत्वानुपलब्धेः तस्माद्-
 गुणफलविधेरुल्मुकनिधानं साग्निरग्नेर्नित्यमिति सिद्धम् । तथाच
 ब्रह्मयज्ञवत्कथः । पितृरूपास्तश्मुराः पिशाचाराक्षसाश्च ये तेषां
 वैरक्षणाया यज्ञिपेदग्निं न्तु नैर्हते मण्डलेष्वग्निदाहं ये न कुर्वन्ति
 द्विजोत्तमाः निराशाः पितरस्तेषां पैशाचं आहमुच्यते स्कन्देऽपि ये रू-
 पाणीति मन्त्रेण न्यसेदुल्मुकमन्तिके शुष्कगोमयसंभूतं यावच्छ्राद्धं
 समाप्यते अजीर्णदोषनाशाय पितृणामग्निवर्द्धनं श्रुतिरपि सय-
 दिनिधायोल्मुकमथैतत्पितृभ्यो दद्यादिति ॥

मू० सर्वमन्नमेकतोद्भृत्योच्छिष्टं समीपे-
 दर्भेषु चैस्त्रीन् पिण्डानवनेज्यदद्यात् ॥ १२ ॥

एकतोद्भृत्येति च्छान्दसः सन्धिः सर्वशब्दः सूपादापेक्षो न याव-

द्वाचकः उच्छिष्टसमीपइति सद्देशोपक्षणं तथाचअत्रिः पितृणा-
मासनस्थाना दद्यतस्त्रिष्वरत्निषु उच्छिष्टसन्निधानन्तन्नोच्छि-
ष्टासनसंनिधौ व्याप्तोपि अरत्निमात्रमुत्सृज्यापिण्डांस्तत्रप्रदापयेत् ।
यत्रोपस्पृशतांवापि प्राप्नुवन्तिनविन्दवइति यथायोग्यं विकल्पोत्त-
विकिरपिण्डविवक्षया सनस्थानादुच्छिष्टन्ततो विकिरस्ततःपिण्डा
वाविरत्निव्यवस्थावा व्याममात्रं समुत्सृज्य पिण्डांस्तत्रप्रदापयेदिति
जातूकर्ण्योक्तेः वीष्मामातामहविषया अवनयेत्येतिस्वार्थेणैव द-
द्यादिति गोत्रादिप्रकाशकन्ततश्च सर्वाङ्गमेकपात्रे उधृत्यपत्न्या
पिण्डान्कारयित्वा यथोक्तदेशेवेद्यादिकृत्वा पृथक्पृथगवनिज्यद-
र्भेषु यथोपदेशं पिण्डान् दद्यादित्यर्थः तथाच स्कंदे अपसव्यं वाम-
जानु पातपूर्वपिण्डानन पत्नीपिण्डांस्तुमृदनीयातिवर्गस्यसहायि-
नीति यद्यप्यत्र सामान्येन सर्वं मन्नमित्युक्तन्तथापि निर्माणबोध्यं
तथाच दृष्ट्याज्ञवल्क्यः माषान्सर्वत्रनैवेद्यपिण्डेर्गौचदिवर्जयेत्-
यथामदं तथा माषा निषिद्धाश्चाग्निपिण्डयोरिति अत्र संशयः
पिण्डपितृयज्ञत्रयं दित्तानेनप्राप्तेषु दर्भावनेजनपिण्डेषु पुन स्तद्व्य-
हणंकृतइति तथाच पिण्डपितृयज्ञमूत्रम् तद्वक्षिणे नोस्त्रिष्वर-
पहताइत्यपरेणोत्सृक्तम् पुरस्तात्करोति येरुपाणौत्युदपात्रेणा-
वनेजयत्यपसव्यं सव्ये नवोद्धारणसामर्थ्या दसावनेनिध्वेति यज-
मानस्यपितृप्रभृतिव्रीणुपमूलं सक्तदा च्छिन्नानि लेखायां कृत्वा
यथावनिक्तम् पिण्डान् ददात्तासावेतत्त इत्तयादि अत्रैके पिण्ड-
यज्ञे लेखामग्निजा दर्भेषु पिण्डदानं मिह तु दर्भेष्वेवावनेजन मि-
त्येतदर्थमिति । तथाच अपक्षिपेन्मूलदेशे वनेनिध्वेति पाततः
द्वितीयं वतृतीयं च मध्यदेशाग्रदेशयोरिति उपलक्षणपरमित्यन्ये
उपलक्षणं उपयुगुहणानुपपत्तिः परिसंख्यानैवावनेजादर्भेषु द-

दद्यादिति ब्रूयादिति हलायुधः उच्छिष्टसामौप्योपदेशान्नपरिसंख्येति-
 कर्कः एवं च कथमियं पुनरुक्तिरिति उच्यते यदुक्तकुशोपर्यवने ज-
 नार्थतदिति तन्न तादृशावनेजनस्य छन्दोगविषयत्वात् तथाच-
 तत्परिशिष्टं प्रागग्रेष्वयदभेषु अर्घ्यमासं वरपूर्ववत् अपःक्षिपेन्मृ-
 लदेशे वनेनिक्षेपेति निश्चितत्वा इति प्रागग्रनिस्तलत्वे वृद्धि विषये
 न च तथा शङ्क्यम् अवने निजरा दभेषु दद्यादित्यन्यभावात् तथाच पि-
 ण्डयज्ञसूत्रम् अमावने निक्षेप्यादि कम् स्कन्देऽपि नाम गोत्रे ससु-
 चार्यपदद्यादवने जनम् कुशैरास्तरणं कुर्याद्दक्षिणाग्नेस्तु तत्परम् द्वि-
 गुणांस्तु कुशाकृत्वा सतिलानर्घसंयुतान् अवने निक्षेप्य चोक्त्वाथ कु-
 शान्भूमौ परिस्तरोदिति यत्तूपलक्षणपरिसंख्ये इति तद्वयमपि ह-
 लायुधेनैव दूषितमित्युपेक्षितं न तु तथेष्टं वेद्यादिकरणोपपत्तेः ।
 तथाच देवलः मण्डलञ्चतुरस्रञ्च दक्षिणावर्तकम् अहत् एकदमेण त-
 न्मध्य उच्छिखे चिञ्चतं तत्र जेत् ब्रह्माण्डेऽपि सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्याम्
 कुर्यादुल्लेखनं बुधः वज्रं ग्राथ कुशैर्वापि उल्लिखेत्तु महीं द्विज इति
 यच्च हलायुधे न पिण्डयज्ञ वत्पिण्डदानमित्युक्तम् तत्तपोनरुक्त्या-
 परिहारा द्विप्रयांतरानुपलब्धेऽप्युक्तम् । पिण्डयज्ञवदुपचार इ-
 त्यनेनैव तत्सिद्धेः तस्माद्विप्रयांतरबोधनेनापुनरुक्तिः । तद्यथा
 पिण्डयज्ञवदित्यतिदेशोऽपि साग्निरग्निरग्न्यो रविशिष्टरूपापि निर-
 नेर्विप्रयांतरदृष्टेः साग्निरप्येव तस्यैव सर्वांगोपसंहारात् निर-
 ग्नेस्तु हस्ताम्नौ करणादिव द्विप्रयांतरदर्शनात्तदर्थवै तत्सूत्रमि-
 त्त्यपुनरुक्तिः अतो निरग्ने रूपमूललूनकुशादि निषेधार्थमिदं सू-
 त्रमिति सिद्धम् । तेन निरग्नेर्न हलायुधिषु मूललूनकुशास्तरणम्
 हस्तद्वयेनावने जनम् एतत्तेन निषेधेति प्रयोगश्चनेत्यर्थः तथाच शु-
 तिः साग्नेरासनादौ समूलतापिण्डेषु सकृदाह्निन्नतेति किञ्च समू-

लस्तुभवेद्दर्म इति प्रागुक्तम् यत्तु शतपथे सकृदाच्छिन्नान्युपमूलंदि-
नानौद्युक्तम् तदपि साग्निपरमेव सुमंतुरपि असाववने निक्ष्वेति-
पुरुषं पुरुषं प्रति त्विस्तिरेकेन हस्तेन विदधीतावने जनम् अपसव्ये-
न हस्तेन निर्वपेद्दुदकं भुवोति मनूक्तेषु तथा आङ्घ्रिपिण्डे विवोहेषु
दाने चैकेन दौयते तर्पणे तु भयेनैव जलन्देयन्तु नान्यथेति धर्मप्रदीपे-
पि गयार्थादशपिण्डे च पिण्डशब्दो विधीयते अन्यत्र त्वन्नशब्दः स्या-
द्गंगादिषु सरित्सु च महालयादिसमुच्चायकश्च । तथा च हेमाद्रौ
महालये गया आङ्घ्रिमेत आङ्घ्रिदशाहिके पिण्डशब्दप्रयोगः स्यादन्न-
मन्यत्र कीर्तयेदिति असावैतत्तदिति श्रुत्या सूत्रकृता वेतत्तदित्युक्तत्वा-
द्वाजसनेयिनाम् पिण्डेषु क्लीवप्रयोगः सर्वत्र त्येके पिण्डशब्ददर्शना-
द्देवते पिण्डः स्वध्वेति सर्वत्र वाच्यमिदं न्ये तद्वयमपि विषयादर्शन-
निमित्तमिति बोध्यम् तस्माद्विहिते पिण्डशब्दस्तादृशे ऽन्नशब्द-
इति सिद्धम् यदि श्रुतिविरोधमिदं तस्मिन् विषये विचिकित्सा तर्ह्ये-
तत्ते पिण्डान्नं स्वध्वेत्यस्तु तथा च आङ्घ्रिकल्पलतायां एतत्ते पिण्डा-
न्नमित्यलं वज्रना एतत्पिण्डदानमेकश्वासेन कार्यं यावदेवोच्चरे-
न्मन्त्रान्तावत्याणान्तिरोधयेदित्युक्तेः ननु किं पिण्डपंक्तयः प्रागुप-
क्रमाः प्रत्यगुपक्रमा वा तत्त्वश्चाज्ञादाने तु मातादिवर्गा र्थसिद्ध्या पस्तं-
व गृह्या तत्त्वोभ्यश्च पिण्डाद्ब्रह्मपश्चिमास्युरिति भाष्यार्थसंग्रहकृद्वाक्या-
त्यश्चिमसंस्था इति तथा पिण्डात्यश्चमेन तत्त्वत्तौनाम् किञ्चि-
दन्तर्वायेति शांखायनगृह्यारपीति पित्राकर्मत्वा त्वंक्तौनां प्राक्-
संस्थत्वानुपपत्तेः प्रत्यक्संस्था तैवेत्यन्ये उच्यते यदुक्तं प्रागुपक्रमा-
इति तत्र तया सति पित्राकर्मणि प्रदक्षिणोपचारः स्यात् । पितृ-
णामप्रदक्षिणमित्यादि वाक्यवैयर्थ्यापत्तेश्च द्वितीयेऽपि स एव दोषः
न चैवमिष्टं प्रत्यगुपक्रमाः प्रागुपवर्गाः पितृव्रातृणां संस्था भवन्ति

दक्षिणादिगुपक्रमादुदगन्ता एव वा वैश्वदेवद्विजसंस्थाभवन्तीति वौ-
 धायनेन ब्राह्मणोपवेशस्मृत्त्यापत्तीनामपि तथैवज्ञापितत्वात्
 अन्यथा वैषम्यः युक्तमोपपत्तेः सदाचारादपि प्राक्संस्थैवेति यत्वा-
 पस्तंवादिगृह्यद्वयम् यच्च अग्नेर्दक्षिणदेशेतुस्थानं कुर्वीत सैकतं मंड-
 लंचतुरस्रं वा दक्षिणावनतं तथा तत्स्थाने ततो दर्भा नेकमूलान्वि-
 तान्वहन् दक्षिणाग्नानुदकसंस्थान् विधा तांस्तृणुयात्समं पूर्वभा-
 गस्थर्भेषु पितृपिण्डान्विनिक्षिपेत् । पश्चात्स्तृतेषु दर्भेषु मातृपि-
 ण्डान्विचक्षण इति वृद्धवशिष्टवाक्यम् । तत्तच्छाखिनामेवेत्यविरोधः
 अथ किंपिण्डप्रमाणं नियतम् न वा तत्कपित्थवित्त्वमात्रांश्च दद्या-
 दामलकैः समान् कुकुटांडप्रमाणान्वा वदरेण समानथ नालिकेर-
 समाग्रापि अधिकान्नप्रदापयेत् प्रमाणमेतत्पिण्डानां मंगि-
 रामुनिरव्रजोदित्यनेन विकल्पादनियतमित्येके तन्न अस्य वाक्यस्य
 आहविशेषविषयत्वेन व्यवस्थितेः तथा च मरीचिः आर्द्रामलकमा-
 त्रांस्तु पिण्डान् कुर्वीत पार्वणे एकोदिष्टे वित्त्वमात्रम् पिण्डमेक-
 न्तु निर्वपेत् नवआह्वे स्थूलतरम् तस्मादपि च निर्वपेत् तस्मादपि स्थू-
 लतरमाशौचे प्रतिवासरमिति अत्रैके पिण्डदानं केवलपिण्डैरेव
 न भुग्नकुशैरिति तन्न अंशभागिपत्नीनाङ्कुशैरेव श्वशुरांतर्धानो-
 पपत्तेः तथा । श्वशुरस्याग्रतो यस्माच्छिरः प्रच्छादनक्रिया पुत्रैर्द-
 र्भेण साकार्या मातुरभुग्दयार्थिभिरिति मात्स्येऽपि ततः कृत्वांतरे-
 ददगं तत्पत्नीभ्यः कुशान्बुधइति ।

मू० आचांतेष्वित्तेऽके ॥ १३ ॥

एकग्रहणम् स्वस्वशाखोक्त विज्ञापनार्थं सुनिभिर्भिन्नकालेतु
 पिण्डदानेतु यत्स्मृतम् तत्स्वशाखागतं यत्तत्तत्कुर्याद्विचक्षण-

इति शक्यात् संग्रहकारोपि यान्यत्र कालभेदेन कर्माणि सुनयोज-
गुः स्वस्वगृह्यानुसारेण विकल्पन्तेषु युज्यत इति ततश्चाचांतेषु हि-
जेषु पिण्डदानमित्येके जगुर्न कात्यायन इत्यर्थः विकल्प एवायमि-
तिकर्कादयः ननु किं लेपभुजान्दर्भमूलेषु दर्भाग्रेषु वादानमिति दर्भ-
मूले लेपभुजः प्रीणयेद्धे पश्वर्षणैरित्यादिवाक्यान्मूलेष्वित्येके तन्न
लेपभाजश्चतुर्थाद्या इति मात्स्यवाक्ये न चतुर्थपुरुषादीनां लेपभागि-
त्वेन दर्भमूले वैष्योपपत्तिः मार्कण्डेयोपि लेपसम्बन्धिनश्चान्येपि
तामहपितामहादिति नन्वेवन्दर्भमूले लेपभुज इत्यर्थक मिति चेन्न
तस्य करवर्षणविषयत्वात् तथा च विष्णुः दर्भमूलेषु करावर्षणमिति
अतो दर्भाग्रेषु लेपभुजां दर्भमूले करप्राञ्छनमित्यविरोधः तथा च वृहदा
ज्ञवल्क्यः दत्ते पिण्डे ततो हस्तं निर्मृज्या ह्येपभागिनां कुशमे सस्पृदा-
तथ्यं प्रीथंतां लेपभागिन इति तथा उत्तरो कुशमूलन्तु पितृमूलन्तु दक्षि-
णे कुशमूलेषु यो दद्यान्निराशाः पितरोगताः ददाति लेपभागिभ्यः पि-
ण्डानामग्रतः सदा प्रपितान्ते च यो दद्यात्पुत्रिः पञ्चदशब्दिकोति ।

**मू० आचान्तेषूदकस्य पुष्पाण्यक्षता नक्ष-
योदकञ्च दद्यात् ॥ १४ ॥**

(१) शास्त्रान्तरोक्तमन्त्रैरुदकादि दानार्थं तत्रपुराणे । अपां-
मध्ये स्थिता देवाः सर्वमप्सु प्रतिष्ठितं ब्राह्मणस्य करे न्यस्ता शिवा आ-
पो भवन्तु मे इत्युदकदाने लक्ष्मीर्वसतिपुष्पेषु लक्ष्मीर्वसतिपुष्करे
लक्ष्मीर्वसतिगोष्ठेषु सौमनस्यन्ददातुम इति पुष्पादिदाने अक्षत-
श्चास्तु मे पुण्यं शान्तिपुष्टिर्धृतिस्तु मे यद्यच्छ्रेयस्करं लोके तत्तदस्तु मे-

(१) ब्राह्मणेषु कृतां चमनेषु सत्सु तेभ्य उदकादिकञ्च दद्यात् पुष्पाणि च प्रतिषिञ्चा-
नि । पदमोत्पलमल्लिकायूथिकां शतपत्रञ्चम्पकाद्यानि गन्धरूपं सम्पन्नान्यपि दद्यात् ॥

दाममेत्यक्षतदाने एतद्यज्ञोपवीतिनाकार्यं आशीरूपत्वात् तासु-
 प्रोक्षितादियत्कर्मतत्कर्तव्यं यवादिना सव्येनेत्यर्थः । तथा विसर्जनं
 सौमनस्यमाशिषः प्रार्थनंविना पितृमन्यत्पकर्तव्यम्राचीनावीति-
 नासदेत्युक्तं अत्राचान्तेष्वित्यनुवृत्तौ पुनस्तद्गृहणं वेद्यादिसंक-
 ल्पान्त पिण्डप्रयुक्तं कर्माचमनात्प्रागिवेतिज्ञापनार्थं अतोनाचान्तेषु
 तत्सर्वं कृत्वाचान्तेषूदकादिदत्त्वा चय्यौदकं दद्यादित्यर्थः । तच्चो-
 क्तं पिण्डपितृयज्ञसूत्रे तथाचपिण्डान्ददातीत्युपक्रम्यात्पितरद-
 त्युक्तोदङ्मुख आत्तमनाऽमीमदन्तइति जपत्यवनेज्य पूर्ववद्वीवी-
 विसंस्थं नमोवद्व्यञ्जलिङ्करोत्ये तद्व इत्युपास्यति सूत्राणिप्रतिपि-
 ण्डमूर्णादशावावपत्युत्तरे यजमानहृत्लोमानिवोर्जमित्यपोनिषि-
 च्चत्यवधायावजिप्रति यजमानउल्मुकसकृदाच्छिन्नान्यग्नावाधत्त-
 इति मध्यमं पिण्डं पत्नीप्राश्नातिपुत्रकामेति अस्यार्थः । पिण्डान्द-
 त्वाचम्य यवानादायात्पितरद्व्यादिदृषायध्वमित्यन्तंमन्त्रञ्जपित्वा
 प्रदक्षिणं वामेनादृत्योदङ्मुखो यथाशक्तिश्वासमनुरुध्य शुभमभ्यायेत्
 तथाचपरिशिष्टं वामेनवर्तनं केचिदुदगन्तुप्रचक्षते स्कंदेपि प्रक्षा-
 ल्यहस्तावाचम्य शुभमभ्यायेदुदङ्मुखइति शुभमभ्यानंसव्येनेत्येके तन्न
 मानाभावात् आदृत्यैतेनैव प्रदक्षिणमावृत्यामीमदन्तेतिमन्त्रं ज-
 पित्वाक्षतान् भुविपिण्डमूलैर्क्षिपेदित्यर्थः प्रदक्षिणमथावृत्य पूज-
 येदक्षतैर्यवैरतिवाक्यात् पितृश्चमनसाध्यात्वा ऽक्षतान्निक्षिपेद्भुवी
 ति दृष्ट्याज्ञवल्क्योक्तेश्च अवनेज्यपूर्ववदित्यत्र गोवाद्युच्चारणेनेत्यर्थः
 तथाच श्रुतिः अथोदपात्रमादावावनेजयत्यसावनेनिहवे त्यवयज-
 मानस्यपितरमित्यादि यत्तु तत्प्रावक्षालनेनाथ पुनरप्यवनेजयेदि-
 तिवाक्यं यच्च हस्तान्धारिणाकार्यं पुनरप्यवनेजनमितिस्कन्दवा-
 क्यम् तदन्यशाखिविषयं इहतुपूर्ववदवनेज्येतिदेशात् अतिदेश-

विधेरनित्यत्वा दत्तापिप्रक्षालनजनेनेतिवा नौदौप्रिसंख्य नमोव-
 इत्यनेन षडञ्जलीन्करोतीत्यर्थः नन्वञ्जलिमित्येकत्वा त्वथंषडञ्ज-
 लीनिति षडतुनतिरूपत्वादञ्जलेरित्यदोषः तथाचश्रुतिः षट्क-
 लोनमस्करोति षड्वाकृतव कृतवः पितरद्वत्यादि एतद्वद्वतिमन्त्रेण
 प्रतिपिण्डसूत्राणि ददातीत्यर्थः । ननु प्रतिपिण्डमिति पृथग्विधे
 रेतद्वद्वतिकथन्तन्वविधिः एकग्रहणेनैव त्रिषुदानेन सकृन्मन्त्रवि-
 ध्यर्थमित्यदोषः एकद्रव्ये कर्मवृत्तावितिपरिभाषितत्वात् प्रति-
 पिण्डमित्युक्तेर्मन्त्रावृत्त्यैव सूत्रादानमित्येके उर्णादशाचेतिमूत्रा-
 भावइत्यर्थः । यत्तु दशाविवर्ज्ये त्याज्योदगप्यहतवस्त्वजामिति
 तत्सूत्रसत्त्वेवोध्यं दशायास्तदभावविषयत्वात् तथाचशौनकः सू-
 त्राभावेदशामूर्णां वेति यत्तु नमोवःपितरोमन्त्रञ्जपन् सूत्रमप्रदाप-
 येदिति सूत्रमन्त्रान्तरोक्तिः सान्यशाखिविषया वाजसनेयिनान्वेत-
 द्वद्वति कात्यायनोक्तेः तथाचव्याघ्रः एतद्वःपितरोवासोदशान्दत्वा-
 पृथक्पृथगिति दशादभावे सूत्रोक्तिः ततःमूत्रंप्रदातव्यम् कार्पास-
 मथवानवं दुकूलम्पट्टवस्त्रं वा तदभावेकुशाग्र्यसेदिति स्कंदेपि कुशा-
 दभावेवयसितूत्तरेलोमवासकमिति उत्तरेवयसिपञ्चाशदूर्ध्वं हस्त्रो-
 मेतिविशिष्टविधिः ऊर्जमित्यपोनिषिञ्चतीत्यत्रगोत्राद्युच्चारपूर्वकम्
 तिलोदकदानमित्येके ऊर्जदानेतिस्त्रादि द्रव्यस्यगोत्राद्युच्चारस्य-
 चानुक्तत्वा त्वेवलेनजलेनेत्यन्ये तथाचबृहस्पतिः अनभ्यर्च्योदपा-
 वन्तु तेषामुपरिनिक्षिपेत् पठन्तिच सर्वत्रैवपवित्राणि पयोमधुति-
 लास्तथा ऊर्जकालेनदातव्याः केवलञ्चोदकंक्षिपेदिति अवधाये-
 त्यत्र यजमानोक्तिर्द्विगव्युदासार्था अवधायेपात्रे इतिशेषः ।
 पात्रे पिंडान्समदृत्ता आघ्रायपितृमन्त्रवदितिरुद्रयाज्ञवल्क्योक्तेः
 उल्मुकंसकृदाच्छिन्नान्यग्नावभ्यादधाति क्षिपतीत्यर्थः सकृदाच्छि-

न्नानीति साग्निपरमित्युक्तं एवं पिंडोपयुक्तम्पूजं तं कृत्वा चतुर्थीत-
संकल्पेन धूपादिकं निवेदयेत् तथा च स्कान्दे समभ्यर्च्य धूपदीपनैवेद्या-
नि निवेदयेत् प्रकुर्यादथ संकल्पं कृत्वा क्षयोदकान्ततद्भूतिततः सुप्रो-
क्षितं मस्त्वित्यादि नोदकादिदत्त्वा क्षयोदकं नतल्लेण दद्यात् तथा च
कात्यायनः अक्षयोदकदानं तु अर्घदानं वदिष्यते षष्ठ्यै वनित्तान्त-
त्कुर्यान्न चतुर्थीकदाचनेत्यतिदेशस्तत्र निषेधार्थः अक्षय्यमस्त्विति-
प्रोक्तः प्रत्येकम्पितृतः क्रमादिति शङ्कोक्तेः

मू० अघोराः पितरः सन्त संत्वित्युक्ते गो-
तन्नोवर्द्धतां वर्द्धतामित्युक्ते दातारो नो भिव-
र्द्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च अज्ञाचनो मा व्यग-
मद्बहु देयश्च नोस्त्वित्याशिषः प्रगृह्य ॥ १५ ॥

इतिरायर्थे तेन स्मृत्युक्तमन्यदाशीः प्रार्थनमिति श्लोकाका-
रणमित्यर्थः सन्त्वित्यत्र प्रतिवचनान्तरं प्रार्थयं तथा च स्कान्दे अघो-
राः पितरः संतु संत्वित्युक्ते पुनर्द्विजैः गोचन्तथा वर्द्धतां नस्तथेत्युक्त-
श्चतैः पुनः दातारो नो भिवर्द्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च अज्ञाचनो मा-
व्यगमत् बहुदेयश्च नोस्त्विति अन्नश्च नो बह्वभवेदतिथींश्च लभेमहि
याचितारश्च नः संतु मा च याचिष्मकश्च न इत्येता आशिषः सर्वा गृ-
ह्णीयात्प्रतिभाषितमिति अथवेति शब्दप्रकारैर्तेन तिलकमूर्द्धाभि-
षेकाशीः प्रार्थनं सव्ये न पूजादिवत्कार्यमित्यर्थः तथा च बृहयाज्ञव-
ल्क्यः ततश्च तिलकं कुर्यान्मन्त्रेणानेन यत्नतः सन्तश्च नित्यानुष्ठाने-
त्यादि प्रागेव दर्शितः अतश्चाशीः प्रार्थनमप्येवैव यज्ञोपवीतिना-
कार्यमिति प्रागुक्तं दक्षिणादिशमाकांक्षन्याचेतेमान्वराग्निचीनिति

मनूक्तेः देवलोपि चक्षुर्ग्यसर्वमेवास्त्वित्युक्ता भूयः समर्चयेदिति
मूर्धाभिषेकश्चाक्षय्यदानात्यागित्येके ॥

मू० स्वधावाचनीयान्सपवित्रान्कुशाना-
स्तीर्यस्वधांवाचयिष्यऽइति पृच्छति ॥ १६ ॥

स्वधावाचनीयान्युजोपरिस्थापिताः कुशाः पवित्राणितदध-
स्थापितानि तेषां कृतप्रयोजनत्वादप्यपवित्राणि कार्याणीत्यन्ये त-
त्कर्कादिभिर्न रस्तमित्युपेक्षितं ततश्च सपवित्रान् स्वधावाचनीय-
कुशानादायास्तीर्यस्वधांवाचयिष्येइति पङ्क्तिमूर्धन्यं सर्वान्वापृच्छे-
दित्यर्थः नन्वेषामास्तराणं किंपङ्क्तिमध्ये प्राश्वेवा तत्र पिण्डपुरस्तादि-
त्येके तदन्तराल इत्यन्ये एतद्द्वयमपि न मानाभावात् अतः पि-
ण्डोपरिसमास्तीर्यापोनिषिञ्चेदित्यर्थः तथा च गोभिलसूत्रं स्वधा-
वाचनीयान् पिण्डोपरिसमास्तीर्येति परिशिष्टेऽपि पवित्रान्तर्हिता-
नपिण्डान् सिञ्चेदुत्तानपात्रकृदिति न चास्य गात्रान्तरविषयत्वं स्व-
धावाचनिकं सर्वं पिण्डोपरिसमाचरेदिति मात्स्योक्तेः स्वधावाच-
नीयेष्विति स्वधावाचनीयाइति कप्रत्ययांतं तन्नाशे प्रतिनिधिः
कार्य इत्युक्तं मुख्यद्रव्येच्छापरत्वात् तथा च उत्तरसूत्रं स्वधावा-
चनीयेष्वपोनिषिञ्चतीति ॥

मू० वाच्यतामित्यनुज्ञातः पितृभ्यः पि-
तामहेभ्यः प्रपितामहेभ्यो मातामहेभ्यः प्र-
मातामहेभ्यो बृद्धप्रमातामहेभ्यश्च स्वधोच-
तामित्यस्तु स्वधेत्युच्यमाने स्वधावाचनीये-
ष्वपोनिषिञ्चत्युक्तमिति ॥ १७ ॥

मावादिममुच्चायकश्चः पृथङ्निर्देशादतन्वता स्वधावाचनएव-
चेत्युक्तेः वाच्यतामिति ॥

मू० उत्तानंपात्रं कृत्वा यथाशक्ति दक्षि-
णान्दद्याद्वा ह्यग्नेभ्यो विश्वे देवाः प्रीयन्तामि-
ति दैवे वाचयित्वा ॥ १८ ॥

पात्रं न्युजं यथाशक्तीति समदक्षिणाविध्यर्थं ब्राह्मणेभ्य इति
स्मृत्यन्तरोक्तपितृर्द्देशव्युदासार्थं तेनात्र ब्राह्मणेर्द्देशेनैव दक्षिणा
दानसूत्रकृदभिप्रेतं तथाच देवलः आचान्तेभ्यो द्विजेभ्यश्च प्रयच्छेदय
दक्षिणामिति पितृर्द्देशपक्षेऽपि तृभ्यः प्रथमम्भक्त्या तन्मनस्कः समा-
हितः सुस्वधेत्याशिषायुक्तो दद्याच्छ्रुत्या तु दक्षिणामित्यादिविष्णुपु-
राणादुक्तो न्यशाखिविषयः वाचयित्वेति कारतार्थनिर्द्देशाद्विश्वे
देवाः प्रीयन्तामिति ब्रूतेति द्विजान्प्रत्यक्ष्येषणमुक्तं तत्तच्च विश्वे देवाः
प्रीयन्तामिति ब्रूतेति विप्रानध्यक्ष्य विश्वे देवाः प्रीयन्तामिति तैरुक्ते
पितृपूर्वसंख्येन दक्षिणां दद्यादित्यर्थः अत्रास्मत्पितुरमुकशर्मणीमुक
सगोत्रस्य वसु रूपस्य श्राद्धप्रतिष्ठार्थं ममुकसगोत्रायामुकशर्मणे वि-
प्रायेत्यादितुभ्यमहं सम्पदद इति प्रयोगः तन्वत्वे त्वस्मत्पितृणामि-
ति बोध्यं पितृर्द्देशपक्षे त्वस्मत्पित्रोऽपि तृभ्य इति वेति विशेषः ।
सतिलं नासगोत्राभ्यां दद्याच्छ्रुत्या तु दक्षिणाम् स्वस्तिवाचनकं कु-
र्यात्पिण्डानुधृत्य भक्तितः इति वाक्यात् सूत्रे यद्यपि दक्षिणामितिसा
मान्येनोक्तम् तथापि पितृदेवयोः रौप्यस्वर्णे बोध्यं कनकां निर्जरा-
णां तु पितृणां रजतं स्मृतमिति वाक्यात् अत्र समं स्यादश्रुतत्वा दि-
ति न्यायाद्दक्षिणादानं सर्वेषां सममेवेत्येके दैवपूर्वश्राद्धमित्युक्तेः
पूर्वदेवे दक्षिणादानं पश्चात्पित्र इत्यन्ये पितृर्द्देशपक्षे दक्षिणा दा-

नमपसव्ये न दैवपूर्वब्राह्मणोद्देशे तु सव्ये नेत्यपरे अपसव्यं तु तत्रापि
 मत्स्योहिभगवान्मने इत्यादिस्मृतेः उभयशास्त्रत्वात्संकल्पादि-
 कमपसव्ये न त्यागमात्रं सव्ये नेतीतरे उच्यते यदुक्तं सर्वेषां दक्षि-
 णासमेवेतितन्न पात्रानुसारेण दक्षिणावैषम्योक्तैः तथाच एकपं-
 क्त्युपविष्टानां विप्राणाम् श्राद्धकर्मणि भक्ष्यं भोज्यं समन्देयं दक्षिणा
 त्वनुसारत इति अनुसारतः पात्रविशेषानुसारेणेत्यर्थः यच्च दैवपू-
 र्वंदक्षिणेति तदपि न पितृद्देशेणैव दैवपूर्वं स्मिदस्य पर्यवसाना-
 न्नब्राह्मणोद्देश इति तथाच देवलः दक्षिणां पितृविप्रेभ्यो दद्याद्वि-
 प्रे ततो ह्ययोरिति यदपि पितृद्देशे ऽपसव्ये न ब्राह्मणोद्देशे सव्ये-
 नेति तदपि न पितृपूर्वकस्य सव्ये नैवोक्तैः तथाच स एव सर्वकर्माप-
 सव्ये न दक्षिणादानवर्जितमिति न च दक्षिणादानं दैवपूर्वं तस्य विस-
 र्गरूपत्वात् तथाच दृष्ट्या क्लृप्तवत्तुः पूर्वं पितृभ्यो दद्यात्तु देवेभ्यस्तदनं-
 तरम् अमुराः पितरूपेण दत्तं हिं संति दानवाः तेषां वैरक्षणाया य-
 पश्चाद्दैवे विसर्जयेत् । याज्ञवल्क्योऽपि पितृपात्रं तदुत्तानं कृत्वा
 विप्रान् विसर्जयेदिति यच्च पसव्यं तु तत्रापि तदग्न्यशाखिदि-
 प्रयं यच्च संकल्पादिकमपसव्ये न त्यागमात्रं सव्ये नेति तन्न माना-
 भावात् तस्मादुभयपक्षेऽपि कात्यायनमतानुसारिणां दक्षिणादान-
 पितृपूर्वकं सव्ये नैवेत्तिसिद्धम् तथाच हेमाद्रिपद्धतौ सूक्तस्तोत्रजपंत्य
 क्त्वा पिण्डाघ्राणं च दक्षिणाम् आह्वानं तस्मागतं तं च विना च परिवेष-
 णं विसर्जनं सौमनस्यमाशिषां प्रार्थनं तथा विप्रपुत्रदक्षिणां चैव स्व-
 स्तिवाचनकं विना पितृमग्न्यत्प्रकर्तव्यं प्राचीनावीतिना सदेति
 तथा उपवीती पितृप्रीत्यै वित्तशायविवर्जितः दक्षिणां पितृवि-
 प्रेभ्यः पूर्वं दद्यादथेतरेभ्य इतरेभ्य इत्यर्थः तथा स्वागतं स्वस्तिव-
 चनं दक्षिणां च प्रदक्षिणाम् गोत्रवादनमर्घ्यं च षडेते उपवीतिन इति

गोत्रवादनम् गोत्रन्तो वर्द्धतामित्यादिनानात्वमाकलत्याहसंग्रह
 कारोपि याज्ञवल्क्यो विसर्गात्प्राक् पात्रमुत्तानमिच्छति यमो वि-
 सर्जनं कृत्वा गृह्यकर्तापिशौनवः प्रीतिं यश्चात्तु देवानामितिका-
 ल्यायनादयः सर्वेषामपि पक्षाणाम् स्वगृह्योक्तं विधीयते स्वगृह्यो-
 क्तस्य वाभावे ग्रहणम् स्वेच्छया भवेदिति अन्यच्च विसर्गं रूपप्रति-
 क्षापात्रचालनन्तुपूजने देवद्विजवाचनादिकं न कुर्यात् दक्षिणाया-
 उपलक्षणार्थत्वात् तथा संवहीनं क्रियाहीनम् भक्तिहीनं द्विजोत-
 माः श्राद्धं संपूर्णं तांयातु प्रसादाद्भवतांममेति गोभिलोपि देवे वा-
 चयित्वा पिण्डपात्राणि चालयित्वा दक्षिणां दद्यादिति पिण्डांश्च-
 पात्राणि चेति विग्रहः नित्यत्वात् अचालयित्वा तत्पात्रम् स्वस्ति कु-
 र्वंतिये द्विजाः निराशाः पितरस्तेषां श्रद्धायां तियथागतम् ऋतुपूजात्-
 सव्ये नेत्येके तन्न आचम्योदक्परावृत्य विरायस्य शनैरसून् षट्-
 तंश्च नमस्कुर्यात्पितृनेव च सर्वदेति वाक्यात् विशेषमाह जातूकण्यः
 पात्राणि चालयेच्छ्राद्धे स्वयं शिष्यो यवा मुतः न स्त्रीभिर्न च बालेन ना-
 सजात्या कथंचनेति बृहस्पतिरपि भाजनेषु च तिष्ठत्सु स्वस्ति कुर्वन्ति-
 ये द्विजाः तदन्नमसुरैर्भुक्तम् निराशैः पितृभिर्गतैः भाजनानि भोजन-
 पात्राणि स्वस्तीति भगवन्ब्रूहीति पारस्करः अत्र ब्राह्मणे भगोदद्या-
 दिति सूत्र्यता चतुर्थ्या गोत्रादुच्चारो विप्राणां सूचितः ततोऽस्म-
 त्पितुरमुकशर्मणो मुकसगोत्रस्य वसु रूपस्य श्राद्धप्रतिष्ठा र्थमस्मक-
 गोत्रायामुकशर्मण इत्यगादि तुभ्यमहं संप्रदद इति प्रयोगः तन्तेषु ष-
 ठीव हवचनेन पित्रुद्देशे पक्षे त्वमस्ति च दत्त इति चतुर्थ्या प्रयोगः वि-
 सर्जनमन्त्रमाह ।

मू० व्वाजेवाजेवतेति विसृज्यानुब्रज्यामावा-

जस्येतिप्रदक्षिणीकृत्यनमस्कृत्यप्रविशेत् । १८ ।

ततोवाजिवाजइत्तनेन कुशमूलैः पिच्यविप्रान्पूर्वपश्चात्कु-
शागैर्देवद्विजान्विमृज्यताननु व्रज्यामावाजस्येत्तनेन बहिर्य-
ज्ञोपवीतीतान् प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्यप्रवि शेद्बृहमितिशेषः
अत्रकुशाग्रेरेवसर्व विसर्गइत्येके तथा वाजिवाजेतिमन्त्रेणकुशमू-
लेनताम्बितृन् देवांस्तेनैवमन्त्रेणकुशाग्रेणविसर्जयेदिति मनुरपि-
आमावाजस्यमन्त्रेण कर्तव्यंहिप्रदक्षिणम् नमस्कृत्यततोविप्रा-
नासनेषूपवेशयेत् तांवलंहिततोदद्यात्पाद प्रक्षालनंततः पा-
दाभंगंततः कुर्यात्पादमर्दनमेवच अत्रविसर्गप्रदक्षिणे ऽपसव्ये-
नेत्येकेतन्न स्वागतंस्वास्ति वचनन्दक्षिणांचप्रदक्षिणामित्युक्तेः
ब्रह्मयाज्ञवल्क्यः वाजेवाजेजपेन्म व्रज्यामावाजस्यवैपुनः बहिःप्रद-
क्षिणं कुर्यादक्षिब्रजलधारया बन्धुवर्गेणसहितःसभार्यःसकुटुंबकः
पुनराचम्यत्तत्रैव(१)स्वादुषष्ठं जपेत्सुधीः ब्राह्मणाः संपठेयुस्तेशा-
इभोक्तद्विजोत्तमाः आहारंभेषजानेच पादशौचेद्विजार्चने विकारे-
पिण्डदानेच षट्मुचांचमनंस्मृतमिति कात्यायनोक्तेः विसर्जये-
त्ततोविप्रान्प्रणिपत्यपुनःपुनः आहारमुपगच्छेयुःपुनराचमनंततः
वैश्वदेवन्ततःकुर्यात्स्वशाखोक्तविधानतइतिहारगमनासंभवेतुबहिः
प्रदक्षिणं कुर्यात्पदान्यष्टावनुव्रजेत् बन्धुवर्गेणसहितःपत्रभार्या-
समन्वितइति अथोर्ध्वं कृत्यं तत्रोच्छिष्टमार्जनंत्तत्प्रतिपत्तिपिण्ड-
विकिरप्रतिपत्तिवैश्वदेवनित्यश्राद्धशेषभोजननियमादीन्युच्यंते पै-
ठीनसिःनस्पृशन्तितथादुष्टास्तथैवोच्छिष्टमार्जनंतैस्तुपृष्टे तदुच्छिष्टे-
पितरोयांत्यधोगतिं प्रचेतः खनित्वानिचिपेद्भूमा वन्ययास्पर्शनम्भवे

त् निषिद्धं स्पर्शनन्तेषां तस्मात्स्वननमुत्तमं ततोऽच्छिष्टमार्जने विरुद्धा-
 निवाक्यानि दृश्यन्ते तथा हि वसिष्ठः ॥ श्राद्धे नोद्वासनीयानि उच्छिष्टा-
 न्यादि नक्षयात् च्योतन्ते वै स्वधाकारास्तेऽपि बन्धुक्रतोदकाः ब्रह्मपु-
 राणेऽपि अस्तं याते ततः सूर्ये विप्रभाताग्निचांभसि अधो मुखानि प्रय-
 तो भूत्वा सर्वाग्निनिक्षिपेत् याज्ञवल्क्यः निक्षिपेत् सत्सु विप्रेषु द्विजो-
 छिष्टं नमार्जयेत् श्राद्धदेशोऽपि विष्टेऽपि विप्रेषु च नमार्जयेदिति विज्ञाने-
 श्वरः अत्रैके व्यवस्थापयन्ति दैवपात्राणि तद्दिने मार्जयेन्नपित्याणी-
 ति तथा च देवलः एवं तृप्तेषु पानीयन्दद्यादा च मनन्तथा उच्छिष्टस्वा-
 क्षपनयेत्पितृणाम् नोपमार्जयेदिति अन्ये त्वाहुः अस्तं यात इत्यनेन रा-
 त्रीमार्जनविधानाद्वा त्रावेवेति तत्र नादयः पितृणामुच्छिष्टमुन्नयेन्ना-
 वमार्जयेद्वै त्यस्माद्विकल्पोपपत्तेः ॥ द्वितीये हनि सर्वेषां भण्डानांश्च
 क्षालनं स्मृतमिति ब्राह्मवचने सर्वेषां मितत्रनेन सर्वेषां मेव मार्जनीयपत्ते
 द्वितीयोऽपि न सस्यगिवाभाति उच्छेष्टं तु तत्तिष्ठेद्गावः प्रविमर्ज-
 नमिति मनूक्तावपि वै व्यर्थ्यात् तस्मात्प्रयथासम्भवम्विकल्पद्वयं युक्तं
 यत्तु द्वितीये हनीति ब्राह्मवचनं तदप्यशुचिस्पर्शरहिता गृह्यांतरसम्भ-
 वविषयं तथा च प्रचेताः भृतरवर्गवृत्तो भुंक्ते कव्यं शेषं स्वगोत्रजैः अन्य-
 स्यां श्राद्धशालायां द्विजोऽच्छिष्टं नमार्जयेदिति तस्माद्भुगृह्यांतरसम्भ-
 वति नमार्जनं तदभावे द्विजां प्रेष्यपिण्डप्रतिपत्तानन्तरं मार्जनमिति
 व्यवस्थेति सिद्धम् पिण्डप्रतिपत्तिमाह याज्ञवल्क्यः पिण्डांस्तु गोजवि-
 प्रेभ्यो दद्याद्गमौजलेऽपि वा गोशब्दो गतवीर्यवृषभपरः तथा च वायवीये
 गतवीर्यस्तु यो ह्यश्वोऽनङ्गश्चैव तथा विधः तयोः पिण्डः प्रदातव्यो यतो-
 वीर्यन्तरो हति एतस्मात्तमना विशेषेण व्यवस्थितं तथा च वायुपुराणम् पि-
 ण्डमग्नीं सदा दद्याद्गोवार्थी सततं नरः पत्न्यै प्रजार्थी दद्यात्तु म-
 ध्यमं मन्त्रपूर्वकम् । उत्तमाङ्गतिमन्विच्छन् गोभगो नित्यमप्यच्छति प्र-

जांमन्त्रायशः कीर्तिमप्सुनित्यन्निधापयेत् प्रार्थयेद्दीर्घमायुस्तुवायसे-
 भयः प्रयच्छति आकाशङ्गमयेदाम्बुस्थितो वादक्षिणामुखः पितॄणां
 स्थानमाकाशं दक्षिणादिक्तयैवेति यथागृह्यपिण्डप्रतिपत्तिरित्यन्ये
 तत्राकाशायनः आधत्तद्वतिमध्यमं पिण्डम्पत्नीप्राश्नाति पुत्रकामेति
 आधत्तद्वतिप्राशनमन्त्रः समर्पणे त्वन्यः अपान्त्वौषधीनां रसम्प्राश-
 यामि भूतकृतङ्गर्भन्धरस्वेति पत्नीतिपुत्रकामस्त्रीमात्वोपलक्षणमि-
 त्येके पुत्रकामापतिव्रतेत्यस्मन्मतं तथाचमनुः पतिव्रताधर्मपत्नी
 पितृपूजनतत्परा मध्यमन्तु ततःपिण्डन्दद्यात्सम्यक्सुतार्थिनीति
 अत्रैतत्सन्देह्यते किंकिरिण्डच्छिष्टे निक्षिपेत्किंवापिण्डेष्विति त-
 त्रैकेआहुः तस्यास्मृश्वत्वादुच्छिष्टएवेति अन्येत्याहुर्दुच्छिष्ट पिण्ड-
 त्वात्पिण्डेष्वेवेति तदुभयमपिनसम्यग्भाति तस्यपिण्डोच्छिष्टवैल-
 क्षण्यात् अशुचिपिण्डत्वाच्च अतश्चपृथगेवकाकेभ्यो निक्षिपेदिति
 पिण्डानामपितद्दानस्य पाक्षिकत्वात् तथाचधर्मप्रदीपे निक्षिपे-
 त्तुशुचौभूमौकाकेभ्यो विकिरन्त्येति अत्रैकेगृहेपिश्राद्धं कृतुमाप्सु
 पिण्डान्विक्षिपन्ति तदसत् तीर्थश्राद्धविषयत्वात् तथाचविष्णुधर्मो-
 त्तरे तीर्थश्राद्धे सदापिण्डं क्षिपेत्तीर्थे समाहितः दक्षिणाभिमुखो-
 भूत्वा पितृदिकसाहिकीर्तितेति वैश्वदेवसूक्तरत्न प्रपञ्चयिष्यते नि-
 त्यश्राद्धे तु मार्कण्डेयः नित्यक्रियांपितृणान्तु केचिदिच्छन्तिसत्तमाः
 नपितृणान्तर्थावान्ये शेषंपूर्ववदाचरेत् नित्यक्रियानित्यश्राद्धं तुल्य-
 विकल्प एवायमित्येके करणोपकारातिशयोऽकरणोऽतएवायने
 तान्ये तदुभयमपिनसम्यक् पूर्वव्यवस्थोपपत्तेः तथाच नित्यश्राद्धं
 नकर्तव्यं प्रसङ्गादावसिध्यति श्राद्धान्तरेकृतेन्यत्र नित्यत्वात्तन्नाहा-
 पयेदिति एकोद्दिष्टादौ पितामहादि तृस्यसम्भवात्कर्तव्यम्पार्वणादौ
 प्रासङ्गिकतृप्तेनेतिव्यवस्थेत्यर्थः आहुच दर्शादिश्राद्धनिष्पत्तौ ननि-

तस्य पृथक् क्रिया तेनैव तस्य सिद्धिः स्यात्कास्ये नितराग्नि होत्रवदिति
एवमेकपार्वणादावपि द्वितीये तु नितरात्तादनुपपत्तेः शेषभोजनेपि-
विवदन्ते एकादश्यादावाग्राणस्योक्तत्वा शेषभोजनमनितरमिति
केचित् शेषमन्त्रमनुज्ञातं भुञ्जीत तदनन्तरम् बृष्टैः सार्द्धं तु विधिव-
हुविमागुसमाहितमिति शातातपोक्तेरनुज्ञापन्न एव पितृसेवित-
भक्षणम् नितरमन्यथानेतदन्यं तत्तद्वयमपि नातीव शोभते पूर्व-
नितरतु न आम्नाय विध्युपपत्तेः तथाच उपवासन्तदाकुर्याद्वाघ्रा-
यपितृसेवितमिति द्वितीये तु बुद्ध्या ताभावे तीर्थादावभोजनमप्राप्नो-
तीति नैतदुचितम् भोजनाभावे पुत्रवायश्रुतिः तथाच देवलः श्रा-
द्धकृता तु यो विप्रो न भुंक्ते यः कदाचन हव्यं देवान गृह्णाति कव्यानि-
तरस्तथा जैमिनिरपि श्राद्धकृता तु यो विप्रो नाश्नाति पितृसेवितं
स याति नरकघोरं यावदाभूतसंप्लवं ब्रह्म वैवर्त्ते पि पितृद्विजैभ्यः स-
र्वेभ्यो यद्यद्वनिवेदितं अन्नं वेहितं सर्वं पितृन् पूर्णातिमानव-
इति भोजनक्रममाह देवलः निवृत्ते पितृसेधे तु दीपं प्रकाद्या पाणिना
आचम्य पाणिप्रक्षाल्य चातीन्द्रिषेण भोजयेत् ततो ज्ञातिपुत्रपुत्रेषु स्व-
भृत्यान् प्रतिपूजयेत् पश्चात्स्वयञ्च पत्नीभिः पितृशेषमुदाहरेत् दीपं प्र-
काद्या हस्तेन श्राद्धदीपं अग्रांतयेदित्यर्थः उदाहरेद्भुञ्जीत तथाचोश-
नाः शेषमिष्टं भगोदद्यात्स्वयं भुञ्ज्यीत आपस्तम्बः सर्वतः समवदा-
याग्रासावरार्थं प्राश्नीयात् यथोक्तं ग्रासावरार्द्धं ग्रासं दूतं समवदादे-
त्यन्वयः यथोक्तमिति मांसभक्षणे नियमो नेतिकेचित् सर्वतः समवदाये-
ति सर्वावदानस्योक्तत्वान्मांसभक्षणमपीतदन्य एवं सति श्राद्धविप्रान्
मांसं भोजयित्वा भुञ्जीत अन्यथानेति व्यवस्थेति तथाच प्रचेताः विप्रान्
भोज्ययो मांसमन्नाद्यन्नेऽंश्च भोजयेत् दृष्टा भवति तच्छ्राद्धं भुत्काच-
नरकं व्रजेत् इति तथाच तत्प्रचवैश्वदेवांते समृतैः सह बांधवैः भु-

औतातिथिसंयुक्तः सर्वापितृनिषेवितमिति तत्तत्तमांसस्याभक्षणम-
 न्यस्यभक्षणमित्यविरोधोवा तथाचजातृकरण्यः मधुमांसनिवृत्तस्तु
 आङ्कर्मणिवाचरेत्पातृस्य गंधमाघ्राद्यपितृणामनृणीभवेदिति-
 पालम्यन्मीजनपात्रस्थस्मिहणामनृणा इति तदवघाणादापिपितृ-
 णिर्भवतीतिदर्शिता ब्रह्मपुराणेपि भगिन्तीवान्ववा.पूज्याः आ-
 ङे षुचसदेवहि. अश्रीपण्डकपण्डाश्चतथान्ये दीर्घरोगिणः अश्री-
 रकिञ्चनः षण्ढोनपुंसकः पण्डंक्लीववृत्तिः शातातपः आङ्कृत्वा
 परश्राङ्गेभुञ्जन्तेयुग्विह्वलाः पतन्ति पितरस्तेषां लग्नपिण्डोदंका-
 क्रियाः अत्रैके पश्चात्त्रयंच भुञ्जीतेत्यनेन प्रदोषपर्यंतम् सर्वा-
 न्सन्तोष्यरात्रौ आङ्कृद्भुञ्जीते याहुः तदयुक्तम् रात्रिर्मीजनस्य प्रति-
 षिद्धत्वात् अतश्चदिवैवसर्वैः सह भुञ्जीत । तथाचजातृकरण्यः अर-
 न्येवतुभोक्तव्यम् कृतेश्राङ्गे द्विजन्मना अन्यथाह्यासुरंश्रादम् पर-
 पाकेवसेविते नाग खण्डेपि बलिनिजिपेक्षसा ह्योजनंचसमाच-
 रेत् मौनेनदृश्यते सूर्योयावत्तावन्नराधिप यश्चैवास्तमितेसूर्ये
 भुङ्क्तेचश्राङ्कृन्नरः व्यर्थतांयातितच्छ्रादम् तस्माद्वात्रौनभोजयेदि-
 तिनियमानाह वृहस्पतिः तान्निशां ब्रह्म वारीस्या श्राङ्कृच्छ्राङ्कि-
 कैः सह अन्यथावर्त्तमानौतौ स्यातांनिरयगामिनामिति पुनर्भोज-
 नमध्वानम् यानमायासमैधुनं श्राङ्कृच्छ्राङ्कृद्भुक् वैव सर्वमेतद्विव-
 र्जयेत् स्वाध्यः यंकलहंचैव दिवास्वप्नञ्च वेद्यया श्राद्धिनोविशेषमाह
 यमः पुनर्भोजनमध्वानम् भारमायासमैधुनं संध्याप्रतिग्रहं होमं
 श्राद्धभुक्तवर्जयेत् संध्याहोमप्रतिषेधाकृतप्रायश्चित्तविषयो दश-
 कृत्वःपिवेदापी गायत्र्याश्राद्धभग्विजः ततः संध्यासुपासोत्तजनेच-
 जुहुयादपीनि भविष्यपुराणवचनात् वृद्धयाज्ञवल्क्यः अध्वनौनो-
 भवेदश्वः पुनर्भोजीतुवायसः होमकृन्नेदरीगीत्या त्पाठादायुःप्र-

होयते दानंनिःफलतामेति प्रतिग्राहीद्विद्वता कृमिकृञ्जायते-
 दासो मैथुनीसूकरोभवेदिति स्ववुद्धिकल्पितन्नेह ध्वनंलिखितं-
 मया दृष्टश्रुतंसमूलंवा नवास्यान्मेनद्रूपणं दृष्टंयत्स्वल्पदीर्घेषु
 निबन्धेषुतदाहृतं श्रुतिस्मृतिविरुद्धं यत्तत्पठन्तीत्युदाहृतम् । प्रमा-
 णमप्रमाणांवा सर्वज्ञःकर्तुमर्हति । दृष्टेश्रुतेनविश्वासोमाहशैः
 कर्त्तुमिष्यते ॥

इति आइकाशिकायां तृतीयाकण्डिका समाप्ताः ।

॥ * इत्यावसथिक श्रीमदतिसुखात्मजः श्रीविष्णुमिश्रात्मजश्चनः * ॥

॥ * कणमिश्रस्यकृतौ आइकाशिकायां * ॥

॥ * अपरपक्षिकंआइसमाप्तम् * ॥

॥ श्रीः ॥

उक्तंप्रकृतिआइमिदानींविकृतिआइमुपक्रमते ॥

मू० अथैकोद्दिष्टं ॥ १ ॥

अथशब्दानन्तर्ये प्रकृतिआइनंतरं विकृतिआइमेकोद्दिष्टमुच्य-
 त इतिशेषः अथवायशब्दो ऽविकारार्थ एकोद्दिष्टमिति विकृति
 आइोपलक्षणां ततश्च प्रकृतिवद्विकृतिरितिन्याया त्सर्वीङ्गप्राप्तौवि-
 क्रृतिआइनियमोपदेशप्रधानाङ्गं हीतानिभवंतीत्यधिक्रियंतइत्य-
 र्थः तानिच युगादिमन्वादि संक्रांतिमघाभरणौ रविवार प्रेतषो-
 डशक नव नित्य तो र्यविवाहोपनयनोर्ध्वोक्त कपाल क्षयाहाम-
 होमा पिण्डकसंकल्पश्रद्धानि तथाहिमतस्यपुराणादिषु अयनदि-
 तय श्रद्धानिषुवद्वितयेतथा संक्रांतिषुच सर्वासुपिण्डनिर्वपणाह-
 ते पुलस्त्यः युगादिषुचकुर्वीतपिण्डनिर्वपणादृते तथा युगादौपि

तुनक्षत्रे तथामन्त्रंतरादिषु अर्घ्यपिण्डेन कुर्वीत वैष्णवं श्राद्धमाचरे-
 त् वैशाखस्य तृतीयायां नवम्यां कार्तिकस्य च श्राद्धं संक्रांतिवत्कुर्या-
 त्पिण्डनिर्वपणं विना मघायुगादौ भरण्यां संक्रांतौ रविवासरे पि-
 ण्डदानं न कुर्वीत यदौच्छेत्सुतजीवितं सूतः मघायां पिण्डदाने न-
 ज्येष्टपुत्रो विनश्यति कनीयां सुतयो रक्ष्यां कुर्यादमुदयादृते प्रेत-
 श्राद्धेषु सुमंतुः विकिरं नैव दातव्यं न कुर्यादाशिषांजपः षड्वल्लो-
 न्न कुर्वीत एकोद्दिष्टेषु सर्वदा आशिषो द्विगुणादर्भाः जपाशीः स-
 स्ति गा वनम् पितृशब्दः स्वसंबन्धः शर्मशब्दस्तथैव च । पात्रालंभो वगा-
 हश्च उरमुकोल्लो खना दिकम् तृप्तिप्रश्नं च विकिरः शेषमन्नस्तथै-
 व च । प्रक्षिणा विसर्गश्च सौमांता नुव्रजस्तथा । अष्टादशपदार्थाश्च
 प्रेतश्राद्धे विवर्जयेत् । सत्यव्रतः अनूदकमधूपञ्च गन्धमाल्यादिव-
 र्जितम् । नवश्राद्धममं त्वं तु पिण्डोदकविवर्जितम् अनूदकमिति वै-
 दीर्घकान्दसं अवने जनोदकरहितम् अनूदकम् पिण्डोदकविव-
 र्जितं प्रत्यवने जनोदक रहितमिति कश्चित् तन्नोचितं स्मृत्यन्तर-
 योः सद्भावाप्रतीतेः तथा च अनूदकमधूपञ्च गन्धमाल्यविवर्जितम्
 निनयेदस्मिन्निर्पूर्वं ततः श्राद्धं प्रकल्पयेत् पश्चाच्च निनयेन् पूर्वं त-
 स्मिन्नेव यथाविधौति अस्यार्थः सर्वमस्मिन्यवने जनम् निनयेत्तत-
 स्तत्रापि पिण्डनिर्वपणाख्यं श्राद्धं कुर्यात्पश्चाच्च तत्रैव पिण्डप्रत्य-
 वने जननन्दशात् पूर्वमिति प्रत्यवने जनमुच्यते पूर्वपूर्वपूर्ण इति धा-
 तोराध्यायनार्थत्वात् एवं सत्यनूदकम् पिण्डोदकविवर्जितञ्चेति
 पदद्वयं ऊर्जस्वधावाचनाभ्याम् प्राप्तां बुनिषेकनिषेध मित्युचित-
 मित्यर्थः रेणुरपि अन्नं न विकिरेद्भूमौ गृह्णी यान्नाशिषो वतु
 पात्रालम्भो न वाक्ष्य मासनादिप्रयोगतः नामगोत्रेण संबंध र-
 हितस्यैतशब्दवत् नवश्राद्धं गृहे कार्यं भार्याय त्वाम्नयोपि चेति । तथा

आसीमान्तस्वस्तिवाच्यं पिण्डानांचनमस्कृतिः नपुष्पं पिण्डमृध्नि-
 स्थम् वन्देद्विप्रकरच्युतम् सर्ववर्णेषुसर्वत्रा ष्येषसाधारणोविधिरि-
 ति मत्स्यपुराणे नित्यं तावत्प्रवच्ये ऽहमर्घ्यावाहनवर्जितम् दैव-
 हीनं भवेत्तत्तु नियमादिविवर्जितं तीर्थश्राद्धं प्रकुर्वीत पाकान्ते-
 न विशेषतः आमाम्नेन हिरण्येन कन्दमूलफलैरपि एषामभावे-
 कुर्वीत श्रद्धया च जलेन च तथा ब्राह्मणान्नपरीक्षेत तीर्थे कालन्न-
 चिन्तयेत् प्राप्ततीर्थो यदा विद्वांस्तदा श्राद्धं समाचरेत् आवाह-
 नन्नतीर्थे स्यादर्घदानन्तदा भवेत् आहूताः पितरस्तीर्थे कृतार्थाः सं-
 तिवैद्विजाः तथा आवाहनन्नदिग्बंधो न दोषो दृष्टि संभवः सकारु-
 ण्यं वक्तव्यम् तीर्थश्राद्धं विचक्षणैः भविष्येति देवाश्च पितरो यस्मा-
 द्गंगायां नुसदा स्थिताः आवाहनं विसृष्टिश्च तत्तत्तेषां न विदुते स-
 कारुण्यमित्यनेन पितृव्यस्मात्तादीनाम् पुत्राणामपि तीर्थश्राद्धे य-
 थोपदेशं कर्त्तव्यमित्यर्थः काष्ठाजिनिः सौज्जीबन्याद्विवाहश्च वर्षा-
 र्द्धवर्षमेव च पिण्डान्सपिण्डानोददुः सपिण्डीकरणादृत इति । स-
 पिण्डीकरणं षोडश श्राद्धोपलक्षणम् संग्रहकारोपि विवाहोपनया-
 दूर्ध्वं वर्षवर्षार्द्धमेव च न कुर्यात्पिण्डनिर्वापं न दद्यात्कारणादृते-
 अत्रापवादस्तेनैवोक्तं महालये गयाश्राद्धे मातापितृभ्यो हनि-
 कृतो वा होपि कुर्वीत पिण्डनिर्वपणं सुत इति क्षयाहैकोददि-
 ष्टे तूक्तं पूर्वकृता नावाहनमित्यादि आमश्राद्धन्तु आचारतिलके
 आमश्राद्धमनङ्गुष्ठमग्नौ करणवर्जितं तस्मिन्प्रश्नविहीनन्तु कर्त्तव्य-
 स्मानवैर्धुवं धर्मप्रदीपे आवाहनाग्नौकरणं विकिरम्यात्पूरणम्
 तस्मिन्प्रश्नं न कुर्वीत आमेहेमेकदाचनेति एतद्विषयमुपरिष्ठाद्व्यामः
 अपिण्डकन्तु अग्नौकरणमर्घ्यवाहनावनेजने पिण्डश्राद्धेषु कु-
 र्वीत पिण्डहीने निवर्त्तते पिण्डनिर्वापरहितं यत्र श्राद्धस्विधीयते

स्वधावाचनलोपोस्ति विकिरस्तुनलुप्यते अक्षय्यद्विणास्वस्ति सौम
नस्यं यथास्थितं । धर्मपदौपेपि । आवाहनं वैतथार्थं अग्नौकरणमेव च
अक्षय्यापोऽभिविकरं पिण्डहीनैविवर्जयेदिति इदञ्चाक्षय्यवर्जनम-
शक्त्यापिण्डकरणविषयं शक्तौतुयथास्थिति विहितत्वात् । स्मृति
संग्रहेपि अङ्गानिपित्यक्षस्य यदाकर्तुं शक्नुयात् संकल्पश्राद्धमे-
वासौ कुर्यादर्घादिवर्जितम् आपस्तम्बोपि संकल्पश्राद्धेऽर्घावा-
हनाग्नौ करणपिण्डस्वधावाचनानिवर्जयेदिति व्याध्यादिनाय-
योक्तम् पार्वण्यङ्कर्तुमशक्तः संकल्पश्राद्धमेव कुर्यादित्यर्थः विकिरव्य-
वस्था च तदवसरणोक्ता हेमश्राद्धे तु बौधायनः संक्रमेन्न द्विजाभा-
वे प्रवासेषु तजन्मनि हेमश्राद्धसंग्रहे च द्विजः शूद्रः समाचरेत् व्याघ्र-
पादः आर्त्तवेन द्विजाभावे ग्रहणे देशविप्लवे आमश्राद्धे द्विजः कुर्या-
च्छूद्रः कुर्यात्सदैव हि गालवः तीर्थेन गन्वा वापदि च देशभ्रंशे रजस्यपि
हेमश्राद्धे द्विजः कुर्याच्छूद्रः कुर्यात्सदैव हीति अन्यस्मृतिभ्यो ज्ञेयम्
अत्रैतच्चिन्त्यते किमामश्राद्धे अग्नौ करणं स्यादुतनेति अत्रैक-
आहुः सिद्धान्तेन विधिर्यः स्यादामश्राद्धेऽप्यसौ विधिः आवाहनादि
सर्वं स्यात्पिण्डदानञ्च भारत दद्यादन्नद्विजातिभ्यः शृतं वायदिवा-
शृतं येनाग्नौकरणं कुर्यात्पिण्डांस्तेनैव निर्वपेदित्यति देशेना-
ग्नौकरणं भवतीति ब्रह्मयुक्तम् अतिदेशस्य ब्राह्मणविषयत्वात् ।
तथा च कल्पलतायाम् आमश्राद्धं यदा कुर्याद्विधिज्ञः श्राद्धदः सदा
हस्तेऽग्नौकरणं कुर्यात्ब्राह्मणस्य विशेषतः अतश्च आमश्राद्धेऽग्नौकरण
निषेधः शूद्रविषये भवितुमर्हति किञ्च भविष्यत्पुराणे धर्मसेवान्तु
धर्मज्ञो यदि शूद्रः प्रकुर्वते अग्नौकरणमन्तोस्य (१) नमस्कारो विधीय-
त इत्यग्नौकरणनिषेधान्नमस्कारविधानात् अथवा विहित प्रतिषि-

इत्वा त्स्त्रिण्डकाप्रिण्डकविषयौविधिनिषेधा त्यक्तमधुनोच्यते त-
 त्वैकंउद्दिष्टोयत् तदितिव्युत्ते न्नवनं मिश्रपुराणञ्चेति विधैकोद्दिष्टं
 तत्तैकोद्दिष्टमित्यनेन किमुच्यते तथाचाङ्गिराः प्रथमेऽह्नितीयेऽह्नि
 पञ्चमेसप्तमेतथा नवमैकादेशेचैव नवश्राद्धानिषट्त्तयेति आश्वला-
 यनगृह्यपरिशिष्टम् नवश्राद्धन्दशाहानि नवमिश्रन्तुषड्दृनून् अतःप-
 रम्पुराणस्यै त्रिविधःश्राद्धउच्यते हारीतोपि प्रायश्चित्तेष्वाह चा-
 न्द्रायणन्नवश्राद्धम् प्राजापत्यन्तुमासिके एकाहस्तुपुराणे षु प्रायश्चि-
 त्तस्त्रिविधीयते इति तत्तैकश्राद्धः क्षयाहेपार्वणस्यैवोक्तत्वा त्येतैको-
 द्दिष्टमेवैतदिति तदयुक्तं खदितमितितद्विप्रश्न इत्याद्यंगस्य प्रेत-
 श्राद्धेषु निरस्तत्वात् नचैतन्मासिकादि नवमिश्रञ्चभवितुमर्हति
 पिवादिशब्दस्य प्रयोगात्वात् तस्मात्पुराणैकोद्दिष्टमेवैतदिति-
 युक्तं अतश्चावाहनादि निषेधविशेषवर्जं सर्वाङ्गमत्रभवतीति
 विशेषविधि निषेधयोः शेषाभ्यनुज्ञाफलकत्वादितिन्यायात् ॥

मू० एकोर्धऽएकंपवित्रमेकःपिण्डः ॥२॥

कर्तव्यइतियथालिङ्गं वाक्यशेषः पात्रविशेषणत्वा स्निग्धव्यत्ययः
 पूजाविधिर्वापृकृतितोनेकप्रसक्तौ विकृतित्वात्यतिषेधः तदयुक्तं
 प्रसज्यमानःप्रतिषिध्यत इति भट्टोपि दृष्टासर्वलशास्त्रेषुनिवृत्तिः
 प्राप्तिपूर्विका तदभावा विशेषोच नहिदृष्टोदयोरपीति पवित्रम्प्रा-
 देशमात्रं कुशैकदलम् अत्रकेचित्प्रत्यवतिष्ठन्ते दर्भाःपवित्रमित्युक्तं
 इतिवचनात् विशाखस्तुभवेद्दर्भं अतुःशाखःकुशःस्मृतः पञ्चशाख-
 स्तुनिधिपः षट्शाखन्तु पवित्रकमितिपारिभाषिकत्वाच्च पवित्रं-
 षट्शाखैककुशमिति तदयुक्तं पार्वणेषुचसर्वेषु पवित्रं द्विदलंस्मृ-
 तं एकोद्दिष्टेवुतत्योक्तम् पवित्रं द्विदलंनृप एकोद्दिष्टेशलाकै-
 केति भागवतचतुर्विंशति मतवचनाभ्यामुल्लेखोपपत्तेः एकशब्दे-

पौनरुक्त्यं विस्पष्टार्थं ननु चैकोद्दिष्टमित्यनेनैव पिण्डैक्ये लभ्ये ए-
 कग्रहणं किमर्थं उच्यते पिण्डविच्छित्तिनिषेधार्थं मष्टांगपिण्डवि-
 ध्यर्थंचेत्यदोषः तदुक्तम् तिथिकेदोनकर्त्तव्यो दिनाश्राद्धं यदृच्छया ।
 पिण्डश्राद्धं च दातव्यं विच्छित्तिं नैव कारयेत् निषिद्धदिनेपीतिशे-
 षः श्राद्धशब्देन ब्राह्मणभोजनम् ॥ पिण्डशब्दस्य पृथगुपादानात्
 चकारोऽग्नौकरणार्थः तेन सति संभवे ब्राह्मणभोजनम् पिण्डदा-
 नं च क्षयाहेकार्यं भोजनासंभवे तु पिण्डमात्रमपिकार्यमिति विच्छि-
 तिशब्दार्थ इति साधवीये आहिताग्नेः पितृर्चनम् पिण्डैरेव ब्राह्म-
 णानपि वा भोजयेदिति निगमस्मृतौ वा शब्दस्य संभवासंभवेन व्य-
 वस्थितत्वात् एवं चाद्विकमग्नेनैव कर्त्तव्यम् नामाग्नेनेत्युक्तमभव-
 ति तथा च मरीचिः अनग्निकः प्रवासी च यस्य भार्यारजस्वला आस-
 श्राद्धं प्रकुर्वीत न तत्कुर्यान्श्चेते हनीति लौगाक्षिरपि पुष्पवत्स्वपि दा-
 रेषु विदेशस्थोऽप्यनग्निकः अग्नेनैवाद्विकं कुर्याद् हेम्नानाऽमेन वा-
 क्वचित् क्वचिदिति दर्शे रविग्रहे क्षयाहे सतीत्यर्थः तथा च गो-
 भिलः दर्शे रविग्रहे पितृः प्रत्याद्विकमुपस्थितं अग्नेनासंभवे हेम्ना-
 कुर्यादामेन वा सुत इति अत्राप्यसम्भव इति विशेषणत्वात् तसम्भवे न-
 नैवेत्युक्तम् श्राद्धविघ्ने द्विजातीनां मासश्राद्धं प्रकीर्त्तितं अमावास्या-
 दिनियतमाससम्बत्सरादृत इति हारीतोक्तेः अष्टाङ्गत्वमाह दृढ-
 याज्ञवल्क्यः मधुचान्नङ्गव्यघृतम्यानीयम्पायसन्तथा कुतुपस्तिलसंयु-
 क्तं ज्योतिश्चैवाष्टमी तथा कपित्थश्रीफलाकारः पिण्डोऽष्टांगस उच्यते
 तिलैरुप्तोऽप्यते मूङ्गान्नीचीरैर्बाह्वृतेन हृत् मधुना चैव नासा च तोयैर्हस्तौ-
 तथा परौ ज्योतिश्चैवानुजीवः स्यात्पिण्डनिर्वपणं स्मृतं यत्तु मधु-
 चाज्यं जलञ्चार्घ्यं पुष्पं धूपं स्त्रिलेपनं बलिन्दद्यात्तु विधिवत्पिण्डोऽष्टां-
 गोभवेद्यथेति ब्राह्मणवचनन्तत्पार्वणविषयं पूर्ववचनस्य क्षयाहप्रक-
 रणोक्तत्वात् ॥

* नावाहनं नाग्नौकरणेनात्र विश्वेदेवाः ॥३॥

अत्रैकोद्दिष्टे विवृणुतत्वादावाहनाद्यं गन्भवतीत्यर्थः नन्व-
यस्मिंशेषनिषेधार्थः अत्राहपञ्चतिष्ठतयज्ञदत्तः एकोद्दिष्टे तु स्व-
धावाचनन्नभवतीति तन्न पिण्डरहितश्राद्धे तन्निषेधात् तदुक्तं
स्वधावाचनलोपोस्तीति प्राक् अतश्चास्मत्पित्रे ऽमुकशर्मणे अमुक-
सगोत्राय स्वधोच्यतामिति प्रयोगः अत्रैकआहुः अत्र प्रथमपात्राभा-
वात्संस्वरवहुत्वाभावाच्च पितृभ्यः स्थानमसीति मन्त्रानुपयुक्तत्वाच्च
नात्र तत्पात्रमिति तदयुक्तं एकोद्दिष्टस्य विहितत्वात् यत्तु कर्कोपा-
ध्यायैर्यत्र पात्रन्युञ्जकरणमित्युक्तं तदन्यथैवोपपद्यते पात्रन्युञ्जन्त-
कर्तव्यं किन्तु तानमेव निधेयमिति अस्ति च पात्राभावान्न्युञ्जत्वभावयो-
र्महाभेदः अतीर्थानवबोधात् तदयुक्तमिति तथा च स्कन्दसम्वादे एको-
द्दिष्टे न कुर्वीत स्कन्दपात्रमधोमुखं नोत्थापयेच्च तत्पात्रं यावच्छ्रा-
द्धविसर्जनं अनान्तरोत्थापिते पात्रे श्राद्धं सम्पद्यते तथेति तस्मात्स्व-
धावाचनीयानास्तीर्य स्वधावाचनीयं कर्तव्यमिति सूक्तं ॥

मू० स्वदितमिति तृप्तिप्रश्नः सुस्वदितमितीति
रेव्रयुः उपतिष्ठतामित्यक्षय्यस्थाने ऽभिरम्य-
तामिति विसर्गोभिरतास्मद्गतीतरे ॥४॥

अत्रनेत्यनुवृत्तौ मण्डूकप्लुत्यादिति न्यायेन पूर्वसूक्तो विधि-
रेवानुपज्यते तेन तृप्तास्येति प्रश्ने स्वदितमिदमक्षय्यमस्त्वित्यलोप-
तिष्ठतां वा जेवजेवते च अभिरम्यतामिति विसर्गोभवतीति वाक्य-
शेषः अतश्चैतत्पुराणैकोद्दिष्टमित्युक्तं प्रेतैकोद्दिष्टे तदभावात्
अथक्षयाहे किम्पार्वणं कार्यमेकोद्दिष्टमेवेति सन्दिह्यते उभयथा-

वचनदर्शनात् तथाहि जातूकर्ण्यः पितुःपितृगणस्यस्य कुर्यात्पा-
वर्णवत्सुतः सर्वदादर्शवच्छादं मातापित्रोर्ज्ञेयहनीति शातातपः
प्रदानंयत्नयत्तैषां सपिण्डीकरणात्परं तत्तत्पार्वणवच्छादं ज्ञेयमभ्यु-
दयादृते तथा अर्वाक्सम्बत्सराद्बुद्धौ पूर्णसंवत्सरेपिवा येसपिण्डी-
कृताः प्रेताः तेषां पुपृथक्क्रियेति एकोद्दिष्टं तु यमः सपिण्डीकर-
णादूर्ध्वप्रतिसंवत्सरं सुतैः मातापित्रोः पुथक्कार्यमेकोद्दिष्टं नृतेहनि
व्यासोपि एकोद्दिष्टं परित्यज्य पार्वणङ्कुरुतेनरः अकृतन्तद्वि-
जानीयाद् भवेच्चपितृघातकः एकोद्दिष्टमपरित्यज्य पार्वणं यः
समाचरेत् सदैवपितृहासस्यात् मातृभ्रातृविनाशकः मृताहेपार्वणं
कुर्वन् नधोधीयातिमानवः सम्पृक्तेष्वाकुलीभावः प्रेतेषुततोभ-
वेदिति अत्रविरोधेह्येकआहुः द्वादशपुत्रेष्वौरसक्षेत्रजपुत्रौ पार्व-
णं कुर्याता मन्ये दशैकोद्दिष्टमिति तथाचजातूकर्ण्यः प्रत्यङ्म्या-
वर्णं नैव विधिनाक्षेत्रजौरसौ कुर्यातामितरेकुर्युं रेकोद्दिष्टं सु-
तादशेति जाबालोपि औरसः क्षेत्रज.पुत्रो विधिनापार्वणं नतु प्र-
त्यङ्मितरेकुर्युं रेकोद्दिष्टं सुतादशेति विशेषोल्लेखादिति तद-
युक्तं प्रत्यङ्मित्यनेन क्षयाहव्यतिरिक्ताक्षय्य तृतीयादिविषयत्वा
वगतेः एकोद्दिष्टं तु कर्तव्यं मौरसेनमृतेहनि सपिण्डीकरणादूर्ध्वं
मातापित्रोर्न पार्वणमिति पैठीनसि वचनविरोधाच्च एवञ्चसति नृ-
ताहेपार्वणैकोद्दिष्टयो रुभयोरपिपक्षयोः प्राप्तत्वात् । अमायाम्वा
क्षयोयस्यप्रेतपक्षे यथाभवेत्सपिण्डीकरणादूर्ध्वं तस्योक्तः पार्वणो वि-
धिरिति शंखवचनेन दर्शप्रेतपक्षमृतयोरेव पार्वणस्यनियमितत्वा-
त् तत्रमृतयोरेवपार्वणं मन्यत्रमृतयो रेकोद्दिष्टमिति विज्ञानेश्वर-
प्रभृतयः । अन्येतु द्वादशविधपुत्रेष्वौरसक्षेत्रजपुत्रयोर्विशेषस्तवा-
पिसाग्नित्वम् तत्रापि दर्शापरपक्षमृति रित्येवंविशेषोपसंहार

परम्परायापुरोडाशान्ने य वद्विशेषोपसंहारपर्यवसाना दृशापरपक्ष
 मृतावपि साम्ब्यौरसक्षेत्रजावेव पार्वणकुर्याता न्नरग्निपुत्रादिति
 वर्णयन्ति तदेतद्विचारणीयम् किंनियममप्रतिपादनव्याथ्यम् । उ-
 तविशेषोपसंहारइति तत्र यदिनियमप्रतिपादनव्याथ्यमित्युच्यते
 तदादर्शापरपक्षमृतिंविनापि साग्नेःपार्वणविधानमनर्थकं स्यात् य-
 थाहमुमंतुः प्रत्यक्षमितरेकुर्युः एकोद्दिष्टं सुतादश अनग्निमानौरस-
 श्च कुर्यात्साग्निस्तुपार्वणं पुलस्त्योपि अनग्निमौरसस्योक्त मेकोद्दिष्टं
 मृतेहनि प्रत्यक्षं पार्वणं सान्ने रग्येषान्तुनपार्वणमिति अथविशेषोप-
 संहारोपन्यासस्तस्यसाग्नेरेवपार्वणस्य विहितत्वाद्दर्शापरपक्षमृ-
 तावपि तस्यैवपार्वणम् ननिरग्नेरित्यतो ऽमायांवाच्योयस्येतिवा-
 क्यम् साग्निविषयएवोपसंहरणीयमिति विशेषोपसंहारएवयुक्तः
 प्रतिभाति तथाचश्राद्धकल्पलतायां इन्दुक्षयेप्रेतपक्षे विपत्तिश्चेद्दि-
 जन्मनः । साग्निः पार्वणं कुर्यादेकोद्दिष्टं निरग्निः कइति । तस्मा-
 दौरसस्यैव कलौ प्रचुरत्वात्स एव साग्निदर्शापरपक्षमृतौ पार्वणं
 कुर्यादन्यथैकोद्दिष्टमेवेतिराद्धान्तः तथाचमत्स्यपुराणम् । प्रदानं य-
 तत्रैषां सपिण्डीकरणात्परं पार्वणेनविधानेन देयमग्निमतांसदा
 ब्रह्मयज्ञवल्क्ष्योपि वैतानाग्निगृहेयेषां मातापितोः क्षयेहनि नते-
 प्रामधिकारः स्यादेकोद्दिष्टे कदाचन सपिण्डीकरणादूर्ध्वमग्नियु-
 क्तस्यपार्वणं अनग्नेस्तुक्रियानान्या एके द्दिष्टमृतेकचित् एकोद्-
 दिष्टविधिस्तेषां मन्त्रेवाजसनेयिनां येषामाध्यन्दिनीशाखा येद्विजा
 अग्निवर्जितादिति नन्वेवन्तहिवह्नयस्तु येविप्रा येचैकाग्रयणववा
 तेषांसपिण्डनादूर्ध्वमेकोद्दिष्टं नपार्वणमितिस्मृत्यंतरवचनं विरु-
 द्ध्यत् मैवं यस्यवचनस्य अन्यथार्थोपपत्तेः तथाहि येषितरः साग्ने-
 योमृताभवंति तेषानिरग्निः सपिण्डनादूर्ध्वमेकोद्दिष्टं कुर्यात् ।

क्षयानिरग्नयः पितरोमृताः साग्निः पुत्रस्तदा सपिण्डमादूर्ध्वं मृता
हेपार्वणं कुर्यादिति तथाचमरीचिः साग्निकौतुपितापुत्रा वमा-
यांस्यात्पितामृतः । पार्वणोहिविधिरुस्यप्रतिसंवत्सरं भवेत् । तथा
साग्निकस्यपितुः पुत्रो ऽमावास्यायामृतस्य च । पार्वणोहिविधि-
रुस्य प्रतिसंवत्सरं भवेत् ततः न कश्चिद्विरोधः अभिरस्यतामिति
कतृकैऽभिरतामोति आह्निकः प्रतिवदेयुरित्यर्थः अत्रैकऽआहुः
एकएव द्विजोभोज्यः पिण्डोप्येकोविधीयते इतिवचनादेक एव-
आहु एकोद्दिष्टइति तदयुक्तम् तस्यवचनस्य प्रेतैकोद्दिष्टविष-
यत्वा दभावविषयत्वाद्वा अभिरस्यतामिति वदेत् ब्रूयस्तेऽभिरता-
मइति याज्ञवल्क्येन बहुत्वाभिधानात् इतरइति सूत्रोपदेशाच्च
अत्रैतच्चिंत्यते किंचयाह आहुम् नित्यकर्मकृत्वाकर्तव्यमुताकृ-
त्वेति तन्नित्यं कृत्वैव आहुमाचरन्तीति सदाचारः वृद्धयाज्ञव-
ल्क्ये तु आह्वानंतरं कर्म कुर्यादित्युक्तम् । तथाच क्षयेह निसमा-
साद्य संज्ञातो विधिपूर्वकम् स्नानं संध्यां प्रकुर्वीत नित्यकर्मनकार-
येत् नित्यं नैमित्तिकङ्कामस्यं त्रिविधमर्थमलक्षणं निमित्तस्तु व्यति-
क्रमस्य नित्यं कर्मनकारयेत् जपो होमस्तथादानस्तर्पणन्देवतार्चनं च
येह निसमासाद्य न कुर्यात्पूर्वमेव हि क्षयाहन्तु समासाद्य न कुर्यात्-
प्राक्चतर्पणं पितृघाती सविज्ञेयो वदत्येवं पितामहइति तत्सदा-
चारविरोधाच्चिंत्यं अथवासामगायजुःशाखिनां पूर्वमित्यं कर्मबह्वृ-
चानां पश्चादिति व्यवस्थेत्यविरोधः । सामगायजुषः पूर्वं बह्वृचा-
श्च तथांति कइतितेनैवोक्तत्वात् अथवा एकोद्दिष्टं तु यच्छादन्तं नै-
मित्तिकमुच्यते इत्येकोद्दिष्टस्य नैमित्तिकत्वेन नित्यान्तैमित्तिकं-
वलीयइति न्याया देकोद्दिष्टमेव पूर्वपश्चान्नित्यम् न क्षयाहनिमि-
त्तकं पार्वणमपीति व्यवस्था तथाच वृद्धयाज्ञवल्क्यः । एकोद्दिष्टे नि-

वृत्ते तु तथाविप्रविसविर्जने नित्यकर्मततः कुर्यात्तर्पणन्देवतार्चनम्
नित्यं नैमित्तिकञ्चैव द्वावेतौ परमार्थिनौ नैमित्तिके व्यतीते तु ततो-
नित्यं समाचरेदिति विश्वामित्रोऽपि नैमित्तिकं यदाश्चाङ्गं पैतृकङ्क-
रुते नरः तदानित्यं न कुर्वीत तीर्थश्चाङ्गं विना क्वचित् नित्ये नैमित्ति-
के प्राप्ते नित्यं न परिलंघयेत् आदौ नैमित्तिकं कुर्यात्पश्चान्नित्यं स-
माचरेदिति अपि च पठन्ति प्रत्यादिके निवृत्ते तु पश्चान्नित्यं समा-
चरेत् अनयोर्भिन्नतन्त्रत्वा तस्थालोपाकाग्निहोत्रवदिति ।

इति श्रीआइकाशिकायां चतुर्थीकाण्डका समाप्ता ॥

इत्यावश्यक श्रीमदतिमुखात्मज श्रीविष्णुमिश्रात्मजग्ननः

कृष्णमिश्रस्य कृतौ आइकाशिकायां सूचयत्तौ ।

एकोद्दिष्टश्चाङ्गसमाप्तम् ॥

एवं पार्वणौ कोद्दिष्टमुपदिश्येदानीं सपिण्डीकरणमुपक्रमते ।

मू० ततः संवत्सरे पूर्णे चिपक्षे द्वादशा-
हेवा यदहर्वाह्विरापद्येत ॥ १ ॥

ततः शब्दो हेतौ यतः सपिण्डीकरणमुभयात्मकम् तत उच्यत इत्यर्थः
अथ वा तत इति दशाहात्परतः एकादशे हनीत्यर्थः । पार्वणौ कोद्-
दिष्टानन्तरोपन्यासे त्वर्थस्य लब्धत्वात् एतच्च निरग्नौ प्रेते एकादशा-
हेदर्शसंभवे नाग्निकर्तृविषयं एकादशाहेद्वादशाहेवेति बौधायनेन
चानग्नौ पितरिपुत्रस्य साग्नित्वाधिकारणभावा देवतद्व्याख्यान
मयुक्तमिति वाच्यम् भार्यामरणपक्षे वा देशान्तरगतेऽपि वा अधिकारी
भवेत्पुत्रो महापातकिनोऽपि वेति शङ्केनाधिकारस्य प्रतिपादितत्वात्
तस्यापादानां स्मृतेश्चार्ते दर्शानुरोधविषयत्वाच्च तथा च कार्ष्णाजि-

निः सपिण्डीकरणं कुर्यात्पूर्वदर्शाग्निवत्सुतः परतोदशरात्राच्चेत्कुहू-
रद्दीपरीतरइति अग्निमान्साग्निः दशरात्रात्परतएकादशेऽग्नी-
चान्तोपलक्षणम् तथाचकात्यायनः सर्वेषामेववर्णानामाग्नीचान्तोस-
पिडनमिति नाग्निमतां द्विजातीनामिति शेषः अद्दीपरितइत्युल्ले-
खात् एकादशेहनि कुहूश्चेदित्यन्वयः इतरोनिरग्निः वृद्धवसिष्ठः प्र-
थमास्यादमावास्यामृताहाद्दशमेहनि सपिण्डीकरणं तस्यांकुर्या-
देवसुतोऽग्निमान् मृताहादूर्ध्वं दिनमारभ्य दशमेहनीत्येकादशा-
हद्व्यर्थः ननु चैकादशाहे वृषोत्सर्गादिकर्मबाहुल्या त्वयमेतच्छ-
क्यतेकर्तुम् नैषदोषः । पुरुषप्रयत्नसाध्यत्वा त्स्वार्थस्यशक्यत्वात्
अथवाएकादशाहं निर्वर्त्य सपिण्डीकरणं कृत्वा प्रेतं सापिण्ड्य पि-
ण्डपितृयज्ञानन्तरमुक्तकाले मासिकादिकुर्यादितिक्रमः मासि-
कानन्तरं सपिण्डीकरणादूर्ध्वं भावित्वादपि तथाच श्राद्धनिषोड-
शकृत्वा कुर्यादेव सपिण्डनं । अपिच वृद्धिविषये रेणुः कार्यव्यासङ्गतो-
वित्ता ज्ञावाद्देशविप्लवात् राजदैवेऽपघाताद्वामासिकान्यकृ-
तानि चेति कृत्वा सपिण्डनं वृद्धि कर्मासया न्मासिकान्यतइति एक-
वनिर्णीतः शास्त्रार्थोऽन्यत्वाप्युपतिष्ठत इति न्यायात् संवत्सरे पूर्ण-
वृध्यभावेऽस्मात्तर्त्ताग्नौ प्रेते निरग्निकर्तृविषयं वृद्धिविषयस्य अवश्यमा-
णत्वात् तथाच भाविष्यपुराणम् सपिण्डीकरणं कुर्यात् द्यजमान-
स्त्वनग्निमान् अनाहिताग्नेः प्रेतस्य पूर्णं देभरतर्षभ पुलस्त्योपि
निरग्निकः सपिण्डत्वं पितुर्मातुश्च धर्मतः पूर्णं संवत्सरे कुर्यात् वृद्धि-
र्वायदहर्भवेत् रेणुरपि निरग्निश्चेद्यदाकर्ता प्रेतश्चापासनाग्नि-
मान् सपिण्डीकरणान्तस्य पूर्णं देनावसंशयइति । त्रिपक्षइत्य-
यं शब्दः प्रेतकर्तारो ह्याहिताग्निविषयत्वेन सप्ताहारमध्यमप-
दलोपाभ्यां द्वेधा विवक्षितः । तथाहि त्रयः पक्षा समाहृता त्रिपक्षः

पात्रादित्वान्डीषभावः अथवात्रिभिर्दिनैरुनःपक्षो त्रिपक्षोद्वाद-
 शाहः ततश्चाहिताग्नौ प्रेतेनिरग्निःकर्त्ता तृतीयपक्षे प्रेतेवानिर-
 ग्नौ आहिताग्निःकर्त्ता द्वादशाहेसपिण्डीकरणं कुर्यादुभयोरना-
 हिताग्नित्वेसाग्नित्वेवाद्वादशाह एवेतिव्यवस्थेत्यर्थः अयंविशयोवा-
 शब्दस्यव्यवस्थितार्थत्वात् सम्भवेसतिघटते तथाचसुमन्तुः प्रेतश्चे-
 दाहिताग्निः स्यात्कर्त्तानग्निर्यदाभवेत् सपिण्डीकरणं न स्यात्कुर्यात्प-
 चेत्तृतीयके गोभिलः साग्निकस्तुयदाकर्त्ता प्रेतश्चानग्निमान्भवेत्
 द्वादशाहेतदाकार्यं सपिण्डीकरणं सुतैः साग्निकःआहिताग्निः
 ननुच साग्निकशब्देन कथमाहिताग्निः समानेनाऽग्निमहाचक-
 त्वात् उच्यते तथाहिताग्नौ प्रेते निरग्निःकर्त्ता तथानिरग््नौ प्रेते
 आहिताग्निःकर्त्तेति शङ्कायाविद्यमानत्वात् तथायजमानोग्नि-
 मान् राजन्प्रेतश्चानग्निमान्भवेत् द्वादशाहेतदाकार्यं सपिण्डीक-
 रणं सुतैरिति । भविष्यत्पुराणवचनेग्निमच्छब्दवत् भूमिमनुपः-
 शासनादाहिताग्निवाचकत्वसम्भवत्वाच्च नचाहिताग्निश्च समा-
 नधर्मेत्युचितं किञ्च सपिण्डीकरणं कुर्यादयजमानस्त्वनग्निमान्
 अनाहिताग्नेःप्रेतस्यकालान्तरेणविषयान्तस्योपलब्धत्वात् उभयो-
 राहिताग्नित्वेवचनं साग्निकस्तुयदाकर्त्ता प्रेतोवाप्यग्निमान्भवेत्
 द्वादशाहेसदाकार्यं सपिण्डीकरणमिति रिति अत्रापिवाशब्दः-
 आहिताग्न्यनाहिताग्निविषयत्वेनव्यवस्थितार्थः ततश्चनिरग््नौ-
 प्रेतेस्मार्त्ताग्निः कर्त्ताशौचान्तेस्मार्त्ताग्नौ प्रेतेनिरग्निः क-
 र्त्तापूर्णेऽह्नाहिताग्नौ प्रेतेआहिताग्निःकर्त्ता द्वादशाह एवषोड-
 शश्राद्वाभिकृत्प्रासपिण्डीकरणं कुर्यादितिमुख्योर्थः तथाच बृह-
 मनुः द्वादशेहनिविप्राणामाशौचान्तेतुभूमृतां वैश्यानांचत्रिप-
 क्षादावथवास्यात् सपिण्डनमिति वाशब्दः समृत्यन्तरोक्तव्यव-

स्थायाम् अतश्चसाग्निनामितिशेषः अथवाहि ताग्निअनाहि-
ताग्नि शब्दौसाग्निनिरग्निपरौ तेनसाग्निकः कर्त्ताचेच्चैकाद-
शाह द्वादशाहकालयोः दर्शानुरोधेननियमः तथाचसं ग्रहकारः
द्वादशाहादिकालेषु सपिण्डीकरणेकृते साग्न्यनग्निकत्वविष-
यःकर्तुरेवनियामकइति अतश्चपिण्डपितृयज्ञानुरोधात् सा-
ग्नेरेवद्वादशाहादिकालकर्तृत्वंननिरग्नेरित्युक्तं भवति तथाच
गालवः सपिण्डीकरणाल्पेते पैतृकम्पदमास्थिते आहिताग्नेः
सिनीवाल्यां पितृयज्ञःप्रवर्ततइति आहिताग्नेः सिनीवाल्यामि-
तिचसाग्निदर्शयोरुपलक्षणं प्रमादात्कालातिक्रमेतु गोभिलः ।
द्वादशाहादिकालेषुप्रमादादननुष्ठितं सपिण्डीकरणं कुर्यात् का-
लेषुत्तरभाविषु उत्तरभाविषु त्रिपक्षादिषु यदहर्वेत्युभयो र-
प्यनग्नित्वविषयं वृद्धेःपूर्वमित्यर्थः असपिण्डीकृतस्य वृद्धौदाना-
नहत्त्वात् वाशब्दःऽमृत्युत्तरोक्त कालसमुच्चये तथाच वौधायनः
सपिण्डीकरणसम्बत्सरेपूर्णे त्रिपक्षेयातृतीयेवामासिचैकादशेवेति-
भविष्येपि द्वादशाहेतिपक्षेवा षण्मासेवात्रिमासिवा एकादशेवापि-
मासि मङ्गलस्य ह्युपस्थिताविति मङ्गलेवृद्धौ अतोत्तरोत्तरकाले वृद्धि
सम्भवेपूर्वकालेवृध्यनुरोधेनेति सपिण्डीकरणंकुर्यादित्यर्थः एवञ्चस
त्युभयोरनग्नित्वे वृध्यनुरोधेनैवसंवत्सरादर्वाक्सपिण्डीकरणापक-
र्षान्यथानेत्य क्तम्भवति तथाचशाठ्यायनः प्रेतश्चाद्धानिसर्वाणि स-
पिण्डीकरणं तथा अपकृष्यापिकुर्वीत कर्त्तानां दीमुखेद्विज इति तथा
अन्तरेणैवयोवृद्धिं प्रेतश्चाद्धानिकर्षति सश्चाद्दीनरकेधोरेपच्यतेपितृ-
भिःसहेति अपिच नागरखण्डे ततःसपिण्डीकरणं वत्सरादूर्ध्वतःस्थि-
तंवृद्धिर्वागामिनीचेत्स्यात्तदर्वागपिकारयेत् उशनाअपि पितुःसपि-
ण्डीकरणम् वार्षिकेमृतवासरे आधानादुपसम्प्राप्ता वेतव्यागपि-

वत्सरादिति आदिशः स्तीर्यलाभाद्यर्थः वाराणस्यांकु रुक्षेत्रे गया-
 यांतीर्यलाभतः सपिंडताद्वादशाहे मार्गैसार्थे ऋतुर्गतइतिवचना-
 त् ततः संवत्सरे पूर्णे इति सूत्रं केचिदग्यथैव व्याचख्युः तत्र विषय-
 व्यवस्थाभावाद्वा दरोऽस्माकम् न च कात्यायनः अथातोऽधिकारद्व-
 त्थारभा श्रौतस्मार्त्तकर्मणि श्रौताग्निस्मार्त्तं ग्निमद्विषयाण्यभिधाय
 सपिंडीकरणमेव केवलं साग्निकविषयमन्तरेण निरग्निविषये-
 वाहस्मेतिसम्भवान्नायं अतो मदुक्तापि व्यवस्था सूत्रस्येति मामनुक-
 र्य विपश्चितः सहंतां नन्वेवं व्यवस्था सूत्रस्य न घटत इत्याशङ्कनी-
 यम् ऋषिप्रणीतत्वे न सूत्रस्य गहनार्थत्वात् तस्मादाहिताग्न्यना-
 हिताग्नि निरग्निविषयत्वे नोक्ते च व्यवस्थेति सिद्धम् अतः कश्चिद्वा-
 प्यक्त्वादाह वर्षपर्यंतं त्वं कर्म लोप भयात् आनंत्यात् कुलधर्माणां संपुंसां-
 चैवायुषः क्षयात् अस्थितेश्च शरीरस्य द्वादशाहः प्रशस्यत इति वचना-
 च्च । एकवर्षपक्ष एव न शोभन इति तद्वज्रस्मृतिवैयर्थ्या न्नादरणी-
 यं अंतरेणैव यो बृद्धि मित्यनेन प्रत्यवायोपलब्धेः आनंत्यात् कुलधर्माणां-
 शरीरस्यास्थितेश्चेति हेतूपन्यासादस्य वचनस्य कुलधर्मपरत्वादशक्त-
 रोगिकर्तृविषयत्वावगमाच्च किञ्च सति संभवति सपिण्डस्याव-
 र्षांत एव समाप्तिविधानात् तथा च पूर्णसंवत्सरे पिण्डः षोडशः परि-
 कीर्त्तित इति पिण्डः श्राद्धोपलक्षकः एवं कालमभिधाय योगमाह ।

**मू० चत्वारिपात्राणि सतिलगंधोदकानि-
 पूरयित्वा त्रीणि पितृणामेकम्प्रे तस्य ॥ २ ॥**

पात्राण्यवपात्राणि त्रिभ्यो वदान्न षड्भ्य इति चत्वारोऽत्युक्तं स-
 तिलेत्यवब्रूवीहि णैव तिलयुक्तत्वे लब्धेशब्दोपादानमंतराहित्ययो-
 तनार्थं अथवा तिलोसिप्रेतदैवत्यइति प्रेतपात्रे मन्त्रविपरिणामार्थः

तथाचैकादशाहश्राद्धे रेणुः तिलोसिप्रेतदेवत्यः प्रेतालोकाहिनो-
 त्तमं मन्त्रमुक्त्वा तिलानेव प्रक्षिपेदर्घपात्रतद्गतिं त्रीणि पितृणामेकम्प
 तस्येति क्रमवृद्धिः तेन वैश्वदेवकृत्यानन्तरं प्रेतकृत्यन्ततः पितृकृत्य-
 मिति एकोद्दिष्टस्य सपिण्डीकरणान्तर्भावात् तथाच वैजवापः चत्वार्यु-
 दकपात्राणि प्रयुनक्ति तत्रैकं प्रेताय त्रीणि पितृभ्य इति तदयुक्तम्
 सूत्रोक्तक्रमस्य वैयर्थ्यात् नच वैजवापवचनं वाजसनेयिविषयं बह्वृच
 विषत्वात् तथाच तत्सूत्रम् चत्वार्युदपात्राण्येकं मृतस्य त्रीणीतरे-
 षामिति अतोऽत्र विषयानवबोधादयुक्तमित्युक्तम् तथाच कठश्रुतिः
 दत्त्वापिण्डान् पितृभ्यस्तु पश्चात्प्रेताय पार्श्वतः तत्तु पिण्डं त्रिधा कृ-
 त्वा आनुपूर्व्याच्च संततम् निदध्या त्रिषु पिण्डेषु एष संसर्जने विधिः
 चर्य पिण्डम् तस्य त्रिधा कृत्वा पिण्डे षु निदध्यादिति लौगाक्षि-
 वचने पिचतुर्थपिण्डस्य श्रद्धादानप्रतीतिः नचैकोद्दिष्टस्य देवपूर्वत्वं-
 युक्तम् तथाच शातातपः सपिण्डीकरणं श्राद्धं देवपूर्वन्नियोजयेत्
 पितृनेवाशयेत्तत्र पुनः प्रेतञ्च निर्दिशेत् इति यत्तु प्रेतपूर्वकं पिच्य-
 श्राद्धमाचरन्ति तद्भ्रान्तिनिवन्धनमित्युपेक्षणीयम् तथाच मार्कण्डेय
 पुराणं तिलगन्धोदकैर्युक्तं तत्र पात्रचतुष्टयम् कुर्यात्पितृणां न्वितय
 मेकम्प्रेतस्य पुत्रक धर्मप्रदीपेपि श्राद्धद्वयमुपक्रम्य कुर्वीत सह पिण्डनं
 तयोस्त्रिपुरुषपूर्वं मेकोद्दिष्टन्ततः परमिति यत्पुनः पूर्वकृत्वा नव-
 म्प्रेतमुत्तरांस्तु पितामहान् चतुर्भिः पितृभिर्युक्तं पार्वणन्तु विधीयत-
 इति चतुर्वंशतिमतमुक्तं तद्वैश्वदेवात्पूर्वं प्रेतश्राद्धानुष्ठानविषयं कचि-
 त् तथाच रणात् बह्वृचविषयं च तस्मात्पूर्वोक्त एव क्रम इति सिद्धं अत्र च
 पितृणां मित्यत्रैकशेषसमासा न्मावादीनामपीति गमयितव्यं व्युक्त-
 ममृतावपि पूर्वजत्विकपूरणेन सपिण्डनं कर्तव्यं नैवोत्तरतः श्राद्धं ह
 त्वा च तथाच हारौतः ततः प्रभृतिवैप्रेतः पितृसामान्यमाप्नुयात् विद-

तेपितृलोकञ्च ततःश्राद्धस्यवर्त्तते तथा पितृलोकङ्गतश्चानंभुंक्ते श्राद्धं
 स्वधासमं पितृलोकगतस्यास्य तस्माच्छ्राद्धं प्रयच्छतेति ब्रह्मपुराणेपि
 मृतेपितरियस्याथ विद्यतेचपितामहः तेनदेयास्त्रयःपिण्डाः प्रति-
 तामहपूर्वकाः तेभ्यश्चपैतृकःपिण्डो नियोक्तव्यश्चपूर्ववत् मातर्य-
 यमृतायान्तु विद्यतेचपितामही प्रपितामहीपूर्वन्तु कार्यस्तासाम-
 यंविधिरिति यत्तुमनुनोक्तम् व्युक्तमात्रप्रमौतानां नैवकार्यासपिण्ड-
 तेति तन्मावादिव्यव्यतिरिक्तविषयं तथाचस्कन्दपुराणम् व्युक्तमे-
 णमृतानाञ्च सपिण्डौकृतिरिष्यते यदिमातायदिपिता भर्तानेषत-
 दाविधिरिति एषविधिर्व्युत्क्रममृतौ सापिण्डानिषेधविधिरित्यर्थः ।
 सुमन्तुः त्रयाणामपिपिण्डानां मेकेनापिसपिण्डने पितृत्वमश्रुते-
 प्रेत इतिधर्मोव्यवस्थितइति अत्रैतच्चित्यते किमपुत्रस्य सपिण्डौ-
 करणंस्यादुतनेति तत्रैकेकर्कादयश्चाहुर्निति तथाचगृह्यं पिण्ड-
 करणे प्रथमः पितृणांमेतःस्यात्पुत्रवांश्चेदिति स्मृतिरपि अपुत्रस्य
 परेतस्य नैऋत्यासपिण्डताम् आशौचमुदकस्मिण्ड मेकोद्दिष्टं
 नपार्वणंअपुत्रायेमृताःकेचि त्पुरुषावास्त्रियोपिवा तेषांसपिण्डनाभा-
 वादेकोद्दिष्टंनपार्वणमितिअन्येत्वपुत्रस्यापिभवतौत्याहुः तथाचरे-
 णुः भ्रातावाभ्रातृपुत्रोवा सपिण्डः शिष्यएववा सपिण्डौकरणङ्कुर्या
 त्पुत्रहीनेमृतेसति भ्रातादिभिरपुत्रस्य सपिण्डौकरणेकृते एको-
 दिष्टन्नियमतः कार्यन्तस्यैवसर्वदेत्यादि एवंद्वैधेसति करणे उपकारो
 ऽकरणे प्रत्यवायोनेति केचित् आपदनापद्विषयत्वेन व्यवस्येत्यन्ये
 एतदुभयमप्य विचारितरमणीयम् कर्कादिपक्षेसापत्या पुत्रस्य
 असपिण्डनेदौहित्वकर्तृकपार्वणादौ असपिण्डनस्य दानानर्हत्वा-
 पक्षेः विधायकवचनैस्तस्यबाधितत्वान्च द्वितीयपक्षेत्तत्त्वव्यस्योपने
 सपिण्डनस्यानियतत्वेन पिण्डस्यानर्हत्वाप्राप्त्यानर्हत्वदोषसङ्गावापक्षेः

तस्मादपुत्रशब्देनानपत्यस्य विहितत्वात्करणम् सापत्यविषयमकरं
णञ्जानपत्यविषयमिति व्यस्येत्यविरोधः

**मू० प्रेतपातस्मिन्पात्रेष्वसिञ्चति येस-
मानाऽइतिवाभ्याम् ॥ ३ ॥**

पात्रं पातोदकम् तेन कर्ता येसमाना इति ऋग्वयेन प्रेतार्घोदकस्मि-
न्पात्रेष्वसिञ्चति मेलनेन संस्कार्योदित्यर्थः अतः संस्कारप्रयोजनत्वा-
त्पूर्वमासिञ्च्य पश्चात्पितृपूर्वञ्चतुर्थ्योर्धदानमिति क्रमः अत्रैतत्संदि-
ह्यते प्रेतशब्देन किञ्चतुर्थ्यः पुरुषोभिप्रेतः उताहो (१) न वमृत इति
उभयं यापि वचनदशेनात् तथा हि वृद्धया च वल्क्यः वृद्धस्यैव तु यत्पादम्
तस्मिञ्चेत्यपि तामहे तत्सुतेसिञ्चयेत्पातन्तत्सुतेसिञ्चयेत्पुनः वृद्ध-
सिञ्चय नवातीतार्घपातञ्च पिण्डांश्च परिकीर्त्यते पितृपात्रेषु पिण्डेषु
सपिण्डीकरणं तु तत् इति तथानिबन्धकृतेऽपि विश्वरूपप्रवृत्तयः केचि-
त्यक्षणे तोमृतः प्रेत इति व्युत्पत्त्या चतुर्थस्यार्घपिण्डयोस्त्रिधाकरणे
नासेकमेलनाभ्यामपि पिण्डद्वयस्य एककरणम् न च मृतस्यापि अर्घ-
पिण्डयोस्त्रिधाकरणे न पिण्डद्वयमेलनमित्येवं संशयः तल्लैक आहुः
उभयशास्त्रत्वाद्दुभयमतप्रामाण्यकत्वाच्च विकल्प एवेति अत्र ते-
प्रष्टव्याः किं विकल्पः साधीया नुतव्यवस्थेति तत्र यदि विकल्पः सा-
धीयानित्युच्यते तदा षट्दोषदुष्टत्वं सम्भवति अथ व्यवस्थामाधीयसी-
तर्हि सम्भवेत् दोषाभावात्सैव ग्राह्येति न च व्यवस्थासंभवे षट्दो-
षदुष्टो विकल्पो मीमांसकस्य तस्मादव्यवस्थैव ग्राह्येति । तथा-
चाङ्गिराः प्रमाणानि प्रमाणज्ञैः परिकल्पयानियततः सीदन्ति हि-
प्रमाणानि प्रमाणैरव्यवस्थितैः वसिष्ठोऽपि अव्यवस्था च सर्वत्र तद्वि-
नाशनमात्मन इति अतश्च साग्निकः कर्ता चतुर्थपुरुषस्यैवार्घपिण्डौ

(१) समनन्तरमृत इत्यर्थः ॥

त्रिधाकृत्वा सपिण्डनङ्कुर्यात् निरग्निककर्तुं मृतस्यैवार्धपि-
ण्डत्वेवाकृत्वेत्यविरोधः तथाचकाश्यपः प्रपितामहस्यष्टस्य अर्ध-
पिण्डक्रियाविधा इतरेषुनियुञ्जीत सपिण्डोकरणो ग्नमान् वृद्ध-
याक्षवत्क्योपि वृद्धप्रपितामहपिण्डनिधाकारयेद्बुधः प्रकर्षेणगतः
प्रेतो नपिताप्रेतउच्यते स्मृत्यन्तरेपि प्रेतपालोऽहकपिण्ड मितरे-
षुनियोजयेत् विधाकृत्वाक्रमेणैव सापिण्डोतुनिरग्निकइति प्रेत-
पालोदकन्नत्र मृतपालोदकम् इतरेषुपितामहादिपात्रेषु ॥

मू० एतैनैवपिण्डोव्याख्यातः ॥ ४ ॥

एतेनेत्यत्रोदकतोयेन पिण्डोव्याख्यातो ऽर्धोदकवत्पिण्डोपि
त्रिधाकृत्वा पितृपिण्डेषु योजनीयइत्यर्थः एवकारोमेलनेनैव पङ्क्ति-
र्भवतीतिनियमयति एवञ्चसति व्युत्क्रममृतौ पत्न्यासहगमनमृतौ
च यथाहं प्रपितामहमर्तुं सपिण्डने सत्यपिपार्वणान्वष्टकादौ प-
ङ्क्तिसिध्यर्थम् पुनरपिपितामहप्रपितामह्यादिभि र्यथायोगंसपिण्डो
करणम् कर्तव्यमित्युक्तंभवति तथाचरेणुः व्युत्क्रमेणप्रसीताये
तद्विनाप्रेतताधुबं पुनःसपिण्डनंतेषां कुर्यात्प्रेतोपितामहे अन्व-
ष्टकामुष्ट्यादौ पितामह्यादिभिःसह श्राद्धेसत्युपपन्नस्या न्नचपित्रा
सपिण्डनम् उशनाः अखण्डितोयदापिण्डः पत्याचैकेनयोजितः
अन्वष्टकेषुकर्षूणां तर्पणेचपृथक्पृथक् पुनःसपिण्डनंकार्यं पिता-
मह्यादिभिःसह पठन्तिच व्युत्क्रमेणापिसापिण्डम् कार्यमाचार्य-
संमतं तथाधूर्ध्वस्यसापिण्डोक्तस्यपुनराचरेदिति एवमन्यत्राप्यूह-
नीयं अत्रैतन्मोमांस्यते किंसहगमनेपत्न्या सापिण्डोक्तेवलं भवैव-
सहकिम्वा श्वशुरादिभिरपीति तत्रैकआहुः पत्याचैकेनकर्तव्यं
सपिण्डोकरणंस्तियाः सामुतापिहितेनैक्यं गतामन्वाहुतिव्रतेरि-

त्यत्रैकश दस्यसुख्यवाचकत्वा दस्यप्राद्वस्य च पार्वणत्वाच्च पत्यैक-
 च्चस्मितामहाद्युपलक्षणमिति अन्येतु पुनरेकशब्देन जीवत्पिता-
 पितामह्या मातुः कुर्यात्सपिण्डनं प्रमौतपितृकः पित्रा पितामह्या-
 पित्रासुतः तन्मातातत्पितामह्या तच्छ्रवणासपिण्डनं आसुरादि-
 विवाहेषु विन्नानां योषितां स्मृतमिति वचनग्रहितस्य विकल्पचतु-
 ष्टस्य निवर्तकत्वमिति व्याचक्षते ततश्च पित्रादित्येगैव मातुः
 सपिण्डनमिति उभयेषामभिप्रायः तदपरेन क्षणन्ते पत्यापिण्डस्य
 श्वशुरादिपिण्डेषु मेलनमनुचितत्वापत्तेः अतश्च सत्यपि पार्वणत्वे
 ऽन्वारोहणे भवति केवलं पत्युः सपिण्डनमित्येषामभिप्रायः एवं
 च सत्यन्वारोहणे भर्तृमात्रेणैव सापिण्डं युक्तमित्याभाति मृता-
 यानुगतानाथसातेन सह पिण्डतां अर्हति स्वर्गवासञ्च यावदाभूतसं-
 स्रामित्यनेन विशिष्टविधानात् पार्वणादावपि तासामंशभागित्वं
 पिण्डदानेऽपि कुशैरेव शिरो गोपनादि विधानोपपत्तेः तथाच श्व-
 शुरस्याग्रतो यत्साच्छिरः प्रच्छादनक्रियेति प्रागुक्तम् । तथाच हे-
 माद्रिपद्धतौ पत्याचैकेन कर्तव्यं सपिण्डीकरणं सुतैः सह यानेतु-
 मातृणां वज्रेणेतत्पितामहौ वचनान्तरमपि तत्र व्यासः मातुः
 सपिण्डीकरणं क्रियते त्वामिना सह मातृकस्यैतृकमपिण्डसेकौ क-
 ल्याविधानतः । लौगाक्षिरपि पितामह्यादिभिस्त्रीभिर्मातरन्तु स-
 पिण्डयेत् पितरिभिश्च मातुषु तेनैवोपरते सति पुराणसमुच्चये पि-
 तामहादिभिः साङ्गं पितुः कुर्यात्सपिण्डतां मातुर्भर्ता सहैकोन नत्व-
 न्यैः श्वशुरैः सहैति पङ्क्तिकारणन्तु प्रागेवाभिहित मित्यलंबज्जना
 अत्रैकेविवदन्ते सहगमनैर्भर्तुः सपिण्डनम् विधाय पश्चात्पत्या
 अपि सपिण्डनमिति द्वयोः सपिण्डनं पृथक्पृथगिति अन्ये पुनर्दंपत्योः
 परस्परममन्त्रकपिण्डद्वयम् मेलनं कृत्वा ऽनन्तरन्तिभिः सह भर्तुः स-

पिंडनेपत्न्या अपि कृतं भवेदित्येकमेव सपिंडीकरणमित्याहुः तन्न
 सहगमनेन गमनेनैव भवेत्केन सह पिंडनस्य विहितत्वादेकमेव
 सपिंडीकरणं युक्तमित्याभाति तच्चासंस्कृतेन पत्यासपिंडनमयुक्त-
 मिति वाच्यम् असंस्कृतौ न संस्कार्यौ वंपौत्रप्रपौत्रकैः पितर-
 स्तत्र संस्क्रुर्यादितिकात्यायनो ब्रवीत् पापिष्टमपिशुद्धेन शुद्धं पाप-
 कृतापि वा पितामहेन पितरं संस्क्रुर्यादिति निश्चय इति कात्याय-
 नवचनात् पापिष्टमगतप्रेतभावं शुद्धेन प्रेतत्वरहितेन तथा शुद्ध-
 गतभावं पापकृताप्रेतेन पितरं संस्क्रुर्यादित्यर्थः अनेन वचनेनासं-
 स्कृतेनापि मेलनमभ्यनुज्ञातं तस्मादेकमेव सपिंडीकरणमिति सि-
 द्धं तथा चरेणुः पृथक्चित्यां समाकृष्टा स्त्रियतेन मृतापि वा पतया-
 चैकेन कर्त्तव्यं तस्या अपि सपिंडनं पृथक्चित्यां समाकृष्टा यानारी-
 तु पतिव्रता स्वामिनामहपिंडत्वे तस्या अपि कृतं भवेत् दम्पतर्ये द्वि-
 जच्चैकम् भोजयेत्तौ स्योत्तरे तयोः सपिंडीकरणं न्तु दम्पतिपिंडयो-
 रिति स्मृतिरपि मृते पितरि मातुस्तु न कुर्यात्सहपिंडनं पितुरेव-
 सपिंडत्वे तस्या अपि कृतं भवेत् अन्यच्च देशकालद्रव्यदेवकर्त्तृक्ये
 तान्त्रिको विधिः भेदे पुनर्निमित्तानां कर्मावृत्तिरपीष्यते स्मृत्यर्थसा-
 रेपि अन्वारोहणे त्वेके चित्यारोहणे स्त्रियाः पृथक्सपिंडीकरणत्र-
 कार्यमिति च त्रैके पुनराक्षिपन्ति ॥ सपिंडश्चा द्वे चतुर्थ्यः पिंड-
 दान इत्यानन्तरं सापिंडाप्रतप्रवने जनादिसर्वङ्गं स्तमारभ्यैव क-
 र्त्तव्यं पुनः प्रेतान्निर्देशेदिति वचनात् एवञ्च सति प्रतप्रवने जना-
 दिसर्वकर्म स्तमारभ्यैव कर्ममुपितामहपिंडे पितुर्देवतात्वं पि-
 तामहपिण्डे पितामहस्य बृहस्पितामहपिंडे प्रपितामहस्येतेषां
 चतुर्थस्य निवृत्तिरिति तेषामभिप्रायः तदयुक्तं उपक्रमोपसंहार-
 विरोधाद्येनैवारभ्यस्तेनैव समाप्तिरिति न्यायबाधादेकस्मिन् पिंडे

अन्यय निर्देशेद्देवतैकत्वसम्भवादुपक्रान्त क्रमस्यैव्यर्थ्यापत्तोः
 नचतद्येष्टं स्मृत्यन्तरे श्राद्धसमाप्तावेव पिंडमेलनस्यविहितत्वात् ।
 यत्तु पुनः प्रेतं ननिर्देशेदित्युक्तं तदापिसापिंडाश्राद्धोत्तरश्राद्धेषु
 प्रेतशब्दनिर्देशाभावप्रतिपादनपरंपुनर्व्युत्क्रमप्रयोगविधायकम्
 तस्मात्प्रकृतोपक्रान्तक्रमेणैव श्राद्धं कृत्वांते पिंडसंमेलनं कर्तव्यमि-
 तियुक्तं तथाचब्रह्मपुराणं सुवर्त्तुलांस्ततस्तांस्तुकृत्वा पिंडान्प्रपू-
 जयेत् अर्चैः पुष्पैस्तथाधुपैर् दीपमाल्यानुलेपनैरिति अत्रैकऽआहुःपु-
 त्रेणैवतु कर्तव्यं सपिंडीकरणं स्त्रियः पुरुषस्य मृतस्यान्येभ्योपुत्रादयो
 पित्रे अपुत्रायां मृतायान्तु पतिः कुर्यात्सपिंडता मित्याध्यापतिपुत्र-
 योरेवाधिकारत्तादभावेस्त्रीणां सपिंडनं नास्तीति अन्येतु सर्वत्र सर्वस्य
 भवतीत्याहुः एवञ्च सत्यकरणं अनपत्यास्त्रीविषयमित्यस्मन्मतिः ।
 तथाचपठन्ति कुर्याच्चैव मृतभर्तृकायदिमृता पुत्रः स्वभर्त्रैव तत्
 सापिंडं सचबांधवामृतयुवतिभिर्भर्तारमन्वेतिया तस्याभर्तृसपिं-
 डनं सुतवती भर्तारमन्वेति या तस्यास्त्रीभिरनुक्रमादितिह षट्-
 त्वि शन्मते निर्णयः अस्यार्थः मृतभर्तृकायाः सपिंडनञ्चेत्युक्तः क-
 रोति तदाभर्त्रैवकेवलंसपिंडयेत् जीवन्नर्तृकायास्तु पितामह्यादि
 भिरेव यातुभर्तारमनुगच्छति तस्याअपुत्रायाभर्त्रैवसपिंडनम् ॥
 पुत्रिण्यास्त्वनुगमनेपि पितामह्यादिभिरेवेति । अनेनचपतिपु-
 त्राभावेपि सपिंडनमस्तीतिगम्यते अतश्चोक्तैवव्यवस्थेति तथाच-
 धर्मप्रदीपे अपुत्रायोषितः पिण्डं भर्तृपिंडेनयोजयेत् यदिजीवतिभ-
 र्तातु स्वश्रादिषुसमाविशेदिति अपुत्रासामपत्यामृतास्त्री अनप-
 त्यायाः सापिंडया प्रयोजनानुपयुक्तेः अत्रैतत्सन्दिह्यते किंसापिं-
 डीकरणे श्राद्धद्वयमेकप्राकेन उततत्पृथक्प्राकेनेति उभयथावचन-
 दर्शनात् तथाह्योदनञ्चपृथक्पृथगिति तथासपिंडीकरणम् श्राद्धं

पृथक्पाकेन शस्यत इति रेणुस्तुपाकैक्यमाह एवं श्राद्धद्वयङ्गु यत्
 कार्यैक्यादेकपाकतः एकोद्दिष्टम्पार्वणञ्च शेषम्पृकृतिवद्भवेत् इति
 अव्यवस्थीयते पृथक्पाकविधानं सप्तपिण्डनविषयम् पाकैक्यवि-
 धानन्तु पुनः सप्तपिण्डीकरणविषयमिति अन्यथा विरोधापत्तेः न च
 विकल्पः सम्भावनीयः अष्टदोषदुष्टत्वात् पुत्रिकापुत्रविषये बौधा-
 यनः आदिशेत्प्रथमेपिण्डे मातरम्पुत्रिकासुतः द्वितीयेपितरं न्तञ्च
 तृतीयेचपितामहम् चशब्दश्चतुर्थे चतुर्थसमुच्चयार्थः गोत्रविषये तु
 मार्कण्डेयः ब्राह्मणादिषु विवाहेषु यातूठाकन्यकाभवेत् भर्तृगोत्रेण
 कर्तव्या तस्याः पिण्डादकक्रिया आसुरादिविवाहेषु पितृगोत्रे-
 ण धर्मविदिति लौगाक्षिः मातामहस्यगोत्रेण मातुः पिण्डादक-
 क्रिया कुर्वीत पुत्रिकापुत्र एवमाह प्रजापतिरिति पत्नीकर्तृक सा-
 पिण्डे विरोधश्चाभासते लौगाक्षिः सर्वाभावेऽस्त्रियः कुर्युः स्वभर्तृणां
 ममन्त्रकम् सप्तपिण्डीकरणं श्राद्धं मेकोद्दिष्टञ्च पार्वणं श्राद्धं पुमन्त्र-
 वत्पत्नी कर्मकुर्याद्यथाविधिः तदौर्ध्वदेहिके साहि मन्त्रार्हा धर्मसं-
 स्कृतेति अव्यवस्थेऽमन्त्रककरणं अधर्मविवाहोठाविषयं सम-
 न्त्रकरणन्तु मन्त्रोठाविषयमिति व्यवस्था तथा च शातातपः धर्म-
 विवाहेऽहोरात्रा सापत्नीपरिकीर्तिता सह अधिकारिणी हेतुषा यज्ञा-
 दौ धर्मकारिणी तथा च मन्त्रार्हा धर्मसंस्कृतेत्युक्तं एतद्बानुज्ञाविषयं
 नारीयात्वनुज्ञाता पित्रा भर्ता सुतेन वा विफलन्तु भवेत्तस्या या-
 करोत्यौर्ध्वदेहिकमित्यापस्तम्बोक्तेः तदभावे विशेषमाह कात्यायनः
 असंस्कृतेन पत्न्या च ह्यग्निदानं समन्त्रकम् कर्तव्यतमितरत्सर्वं का-
 रयेदत्यमेव हि तथा सर्ववन्धुविहीनस्य पत्नी कुर्यात्सप्तपिण्डनं ऋत्वि-
 जङ्गारयेद्वापि पुरोहितमथापिवेति पत्नीकर्तृत्वं साध्वीपरम्बा ।
 अपुत्राशयनं भर्तुः पालयन्ती ब्रूते स्थिता पत्नेव दद्यात्तपिण्डं कृत्स्न

मर्थेहरेदपीति वचनादिति असंस्कृतोऽनुपनीतः सचकृतचूड-
स्त्रिवर्षः तथाचसुमन्तुः श्राद्धकुर्यादवश्यन्तु प्रमीतपितृकौद्विजः ।
व्रतस्थोवाव्रतस्थोवा एकएवभवेदयदिद्विति यत्तुमनुनेक्तं नाभि-
व्याहारयेद्ब्रह्म स्वधानिनयनादृते नह्यन्नित्युच्यतेकर्म विनामौजी
निबन्धनादिति तदत्रिवर्षकृतचूडविषयं तथाचसुमन्तुः अनुपेत-
स्तु कुर्वीतमन्त्रवत्पैतृमेधिकं । यदासौकृतचूडः स्या द्यदिस्याच्चत्रि-
वत्सरः नाभिव्याहारयेद् ब्रह्मयावन्मौजीनिबन्धनम् मन्त्राननु-
पनीतोपि पठेदेवैकएवयद्विति तस्मात्रिवर्षकृतचूडः पितरौर्त्वंदे-
हिकम् मन्त्रवदेवकुर्वीतेत्यलम्प्रसंगेन ॥

मू० अत ऊर्ध्वं संवत्सरे प्रेतायानन्द-
द्याद्यस्मिन्नहनिप्रेतः स्यात् ॥ ५ ॥

अत इति सपिण्डनादूर्ध्वं वीक्षानितरात्पार्था प्रेतायेतेक त्वं-
विहितपार्वण्यतिरिक्तविषयं अहःशब्दस्थितिवचनः अन्नग्रहणं-
सतिसम्भवे आसन्न्युदासार्थं तेनक्षयाहेपाकेनैवश्राद्धमितिज्ञापितम्
अत्रच सपिण्डनादूर्ध्वंप्रेतशब्दोपादानात् द्वादशाहदौसपिण्डने-
पि पुनर्मासिकावृत्तिज्ञापनार्थम् तथाचगोभिलः यस्यसंवत्सराद-
र्वाग्विहितातुसपिण्डता विधिवत्तानिकुर्वीत पुनःश्राद्धानिषोड-
शेति विधिवदितियथाधिकारं पार्वणैकोद्दिष्टविधिनेत्यर्थः तथाच-
पैठीनसिः सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यदाकुर्यात्तदापुनः प्रत्यब्दं योय
थाकुर्यात् तथाकुर्यात्सदापुनः सपिण्डीकरणादूर्ध्वमित्युक्ते स्ततः
प्रागेकोद्दिष्टविधिनेतिगम्यते सपिण्डीकरणादर्वा कुर्यात्त्राडा-
निषोडश एकोद्दिष्टविधानेनकुर्यात् त्वर्वाणि तानितितेनैकोक्तत्वात्
जातृकण्योपिपितुः पितृगणस्यस्य कुर्यात्पार्वणवत्सुतः प्रत्यब्दमार्ति-

मासञ्च विधिर्ज्ञेयः सनातनइति पुनर्मासिककरणमाह कात्याय-
 नः । सपिण्डीकरणादूर्ध्वम् नदद्यात्प्रतिमासिकं एकोद्दिष्टवि-
 धानेन कुर्यादित्याह गौतमः सपिण्डनादूर्ध्वमेकोद्दिष्टविधानेन
 प्रतिमासिकन्नदद्यात् किन्तु पार्वणविधानेनेति कात्यायनमतं गौत-
 ममते त्वेकोद्दिष्ट विधानेनेति अयं व्यवस्थितो विकल्पः साग्निकः
 पार्वणविधिना निरग्निरेकोद्दिष्टविधिनेत्यर्थः तथाच जाबालः अ-
 सपिण्डीकृतं प्रेतम् एकोद्दिष्टेन तर्पयेत् सपिण्डीकरणादूर्ध्वम् वि-
 भिः सामान्यमिष्यते पुलस्त्योपि एकोद्दिष्टेन तेताव द्यावत्पितृः स-
 पिण्डनं सपिण्डीकरणादूर्ध्वं मेकोद्दिष्टं निवर्ततइति साग्निकवि-
 षयमेतत् गौतममतोक्तमेकोद्दिष्टं निरग्निविषयमित्यविरोधः
 शौनकोपि तदूर्ध्वमेकोद्दिष्टविधाने नदद्यादिति पार्वणत्वेविशे-
 षमाह गौतमः अदैवं पार्वणश्राद्धं सोऽकुम्भं ह्यधर्मकम् दद्यात्प्रत्या-
 द्दिकश्राद्धात्संकल्पविधिनान्वान्वहं अधर्मकं दातुं भोक्तृधर्मशून्यं
 प्रत्यादिकश्राद्धात्पूर्वं सपिण्डीकरणादूर्ध्वमित्युक्तेः अत्रैतत्सन्दिह्यते
 सापिण्ड्यादूर्ध्वमासिकेषु किंप्रेतशब्दस्य निर्देशः उपपितृशब्दस्येति
 तत्रैकआहुः सपिण्डीकरणादूर्ध्वं कूप्रेतशब्देन तं बदेत् तदूर्ध्वं मृ-
 तशब्देन शर्मशब्देन निर्दिशेदित्यनेन पितृशब्दइति अन्येत्वाङ्गं पितृ
 शब्दस्योच्चारणस्य मासिकादन्यश्राद्धविषयत्वात्प्रेतशब्दएव तथाच
 यस्य संवत्सरादूर्ध्वं सपिण्डीकरणं भवेत् प्रेतत्वञ्च पितृत्वञ्च भवेत्त-
 स्य द्विरूपतेति मासिकेषु प्रेतत्व मष्टकादौ पितृत्वमित्यर्थः अतो य-
 दत्र युक्तं न दद्यात् पार्वणत्वे गौतमकरणमाह पाणौ हुतञ्चनाश्रीयात्
 प्रेतोद्देशेषु सर्वदा तद्धोमञ्चनवाकुर्यादश्रीयात्तु सपिण्डने अस्यार्थः
 साग्निकना प्रेतोद्देशेषु मासिकेषु प्रेतत्वात् स्वाहेत्युद्देशेन पाणौ हुतं ना-
 श्रीयात् किन्त्वग्नौ क्षिपेत् सपिण्डने तु प्रेतश्राद्धत्वेपि हुतमश्रीयात्

तद्वोमञ्चनवेतिनिरग्निविषयं वाशब्दस्यवस्थार्थत्वात् निरग्नेरे
 कोद्विष्टत्वादग्नौ करणाभावइति तथाचकात्यायनः हस्तेहुतं-
 यदग्नीया ब्राह्मणोऽज्ञानदुर्बलः नष्टमवतितच्छात्र मितिशाता
 तपोब्रवीत् स्मृतिरपि पिष्टविप्रकरेहोमः साग्नेरपिभवेदिह अग्नौ-
 करणशेषंहि पितृब्राह्मणभोजने लौकिकेऽग्नौक्षिपेदन्नं श्राद्धेष्वन्नं
 करेहुतं पार्वणादौतदग्नीयादित्युक्तम् श्रीधरादिभिः पठन्तिच
 साग्निकेनतुविप्रेण यदन्नं ह्यतेकरे तदन्नं निक्षिपेदग्नौ भुक्त्वा-
 चान्द्रायणञ्चरेदिति अथवासूत्रे प्रेतशब्दग्रहणं त्रिवर्षपर्यन्तमा-
 द्दिकश्राद्धस्याशुद्धत्वज्ञापनार्थं तथाचवृद्धयाज्ञवल्क्यः सपिण्डीक-
 रणादूर्ध्वं यावदद्दवयं भवेत् तावदेवनभोक्तव्यं वर्जयित्वाक्ष-
 येहनि पठन्तिच एकादशाहमारभ्य यावदद्दवयमभवेत् ताव-
 द्छात्रेनगृह्णीया दितिशातात पोब्रवीत् अत्रैकश्राद्धः त्रिवर्षप-
 र्यन्तंश्राद्धं न कुर्यादिति प्रेतमशुद्धंश्राद्धं अत्रैकेप्रत्यवतिष्ठन्ते
 आद्विकेपादकृच्छ्रंस्या देकाहःपुन राद्विके अत ऊर्ध्वं न दोषः-
 स्यात् प्रमाणाभावात् बहिःश्राद्धं न कुर्वीतेति वचनाच्च पठन्तिच
 त्रैवार्षिकञ्चाप्रेतस्या च्छं वस्यवचनं यथेतिवचनात् द्वैवार्षिक-
 मेवाशुद्धमिति तत्रतत्रउक्तवचनविरोधात् किञ्चित्तद्वचनभ्रायश्चि-
 त्तभावं बोधयति नशुद्धत्वंविदधाति वचनां तरविरोधात् भर-
 द्वाजः प्राणायामदयंवृद्धा वहोरात्रंसपिण्डनइति अतश्चसदाचा-
 रानुरोधा दाद्विकेपादकृच्छ्रंस्यादित्येतद्वचनमेव व्याख्येयम्
 आद्विकेऊनाद्विकानन्तरकर्तव्यमासिके, सपिण्डनेपुनरहोरात्र-
 स्योक्तत्वात् पुनराद्विकंसपिण्डनम् अतश्चवर्षान्ते स्मृताहएव
 सपिण्डीकरणकृत्वाद्विकमितिक्रमः तथाचजाबालः पूर्णसम्ब-
 त्सरेवृत्ते स्मृताहेपुनराद्विके सपिण्डीकरणं कृत्वा कुर्यात्पुन-

स्तुने तरः तथाच पूर्णसंवत्सरेकुर्यात्सपिण्डीकरणं सुतः एको-
 द्दंदिष्टन्तुतत्रैव मृतेहनिसमापयेत् गालवः ततः संवत्सरे पूर्णं द्वे
 श्राद्धे मृतवत्सरेति तथाच पूर्णसंवत्सरे चान्द्रायणान्नव मिश्रक-
 म्प्राजापत्य पुराणेष्वेकद्वत्यर्थः एषां लक्षणान्वेकोद्दिष्टप्रकरणे
 भिहितं तथाच हारीतः चान्द्रायणान्नवश्राद्धे प्राजापत्यन्तुमिश्रके ॥
 एकाहस्तु पुराणेषु प्रायश्चित्तस्विधीयत इति पुराणेष्विति बहुत्व-
 वित्वपरं ततजध्वनदोषद्वत्यर्थः चतुर्थस्य शुद्धत्वात् तथाच मासि-
 कान्युपक्रयाहरेणुः दशमैकादशे मासि द्वादशे न्यूनवत्सरे ततो-
 परेद्वारब्धान्ते सपिण्डीकरणं भवेत् ततो परे द्वे द्वितीयवत्सरादौ
 तथाद्विकम् तृतीयवत्सरात् प्रत्याद्विकमिति क्रम इति अपि च-
 पठन्ति सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यावद्वद्वयं भवेत् तावद्विप्रो न भो-
 क्तव्यो यदि व्याससमीपि च तथाच सपिण्डीकरणादूर्ध्वं कास्य-
 श्राद्धे षुभोजयेत् संवत्सराश्चत्वारो वर्जनीयाः क्षये हनि प्रथमे द्वे तु
 मांसानि द्वितीये स्थानि चैव हि तृतीये रुधिरं प्रोक्तं चतुर्थे त्रंविशुध्य-
 तीति ॥ द्वादशाहस्य सापिण्ड्य विषयमेतत् कात्यायनः अशुद्धेषु
 च श्राद्धेषु विप्रो भोक्तान जायते विप्रङ्गशामयङ्गत्वा पात्रे कथं निवे-
 दयेत् प्रेतायान्नन्द्यादिति सूत्रयता तथोदककर्मैत्युपक्रम्यैकादश्या
 मयुग्मान् ब्राह्मणान् भोजयेदित्यादिना गृह्योक्तं प्रेतश्राद्धमात्रोपयुक्तमि-
 ति नात्र पुनरुक्तमिति ज्ञापितं तेन मासिकादिषोडशकङ्गत्वा स-
 पिण्ड्येदित्युक्तं भवति अन्यथा प्रेतश्राद्धान्यनुक्त्वा सपिण्डीकरणङ्ग-
 यमसूचयिष्यत् मासिकान्याह याज्ञवल्क्यः मृताहनितु कर्तव्यम्
 प्रतिमासन्तु वत्सरम् प्रतिसंवत्सरे चैव मादामैकादशे हनि अस्या-
 र्थः अर्द्धपर्यन्तम् मासिमृताहे मासिकानि कार्याणि आद्विकश्रा-
 द्दमपि प्रतिवर्षमेवमेव आद्यातु श्राद्धमेकादशे न्हिकार्यमिति तत्रैत-

त्सन्दिह्यते मासिकस्य मृताहेविहितत्वात् प्रथमासिकं मृताहे-
 स्या दुतैकादशाह इति तत्रैकआहुः आद्यमासिकमेकादशाहे द्वि-
 तीयादिकन्तु प्रतिमासं मृताहमिति तथाचरेणुः प्रतिमासमृता-
 हेस्युः द्वादशैतानिवत्सरम् उत्कृष्यते हितत्सदं कुर्या देकादशेन्हि-
 तदिति अन्येत्वाहुः एकादशाहेश्राद्धद्वयम् कार्यमेकं प्रथममासि-
 कत्वेनापरमेकादशाहिकत्वेनेति तत्रनादयः प्रथमासिकस्य द्वादशा-
 हादिकालेषु विहितत्वात् तथाचगोभिलः मरणात् द्वादशेन्हिहस्या-
 न् मास्यूनैवोनमासिकमित्यादि नद्वितीयः नचैकादशाहेश्राद्धमे-
 व श्राद्धद्वयोपलब्धेः तयोरेकैकादशेन्हितन्नियमितत्वाच्च तथाचा-
 त्रिः प्रेतार्थंसूतकान्नेन ब्राह्मणान्भोजयेद्दश आद्यश्राद्धनिमित्तेन चै-
 कमेकादशेहनीति एकादशेन्हिदशैकञ्चेत्यन्वयः तथाप्रथमेन्हितती-
 येच पञ्चमेसप्तमेपिच नवमेकादशेचैव तत्रचश्राद्धमुच्यते तस्मान्नव-
 श्राद्धमाद्यं चैकादशाहेप्रथमासिकन्तु द्वादशाहादावित्युक्तम् तथा-
 चकाष्णाजिनिः जनान्यूनेषुमासेषु विषमेन्हितसमेपिवा त्रैपक्षिक-
 न्तिपक्षेस्या मृताहेष्वितराणितु ॥ जनानीत्यूनमा सिको नषाणमा-
 सिको नादिकानि अपिचपठन्ति आद्यन्तैपक्षिकञ्चैव जनषाणमा-
 सिकेपिवा अन्यानिमासिकानिस्युः स्वस्वकालियथाविधीति आद्य-
 मूनमासिकम् प्रथममासिकमित्यर्थः एषां कालमाह गालवः जन-
 षणमासिकं पठे^१ मासनाहं न मासिकम् त्रैपक्षिकन्तिपक्षेस्या दूना-
 द्द्वादशेतथेति एषां मृताहेष्वनियमद्वयार्थः तथाचक्रतुः श्राद्धे ए-
 कादशेमासे तथाश्राद्धे तुपञ्चमे जनादिकोन षण्मासौ भवेतां श्राद्ध-
 कर्मणीति पक्षान्तरमाहगौतमः एकद्विदिदिनैर्ग्यूनैः विभागेनोनएव
 वा श्राद्धान्यूनान्दिकोदीनि कुर्यादित्याहगौतमः एकद्विदिदिनैर्ग्यून-
 इति जगत्विंशत्यष्टाविंशति सप्तविंशतिदिनेषु क्रमेणोनादिकोनषा

णमासिकाद्यमासिकानि कर्त्तव्यानीत्यर्थः द्विभागेनोनद्वत्येकाविंशद्
 दिनेवातानिकार्याणीति यथाशक्तिविकल्पः अनुकल्पोवाद्वादशाहं
 यदाद्यमासिकविधानम् तद्विन्नकर्तृविषयम् क्षत्रियादीनां त्वाशौचा
 न्तेशरीरपूरक पिण्डकसमाप्तावेव मासिकश्राद्धस्य वक्ष्यमाणत्वात्
 जनानां वर्ज्यकालमाह गार्ग्यः नन्दायां भार्गवदिने चतुर्दश्यान्विपु-
 ष्करेऊनश्राद्धं गृहीपुत्रं धनक्षयमवाप्नुयात् मरीचिः द्विपुष्करेचनन्दा
 सु सिनोवाल्याभृगोर्दिनेचतुर्दश्यांचनोनानि कृत्तिकासुविपुष्कर
 इति अवैकेविवदन्ते आद्यमेकादशेहनीत्येकादशाहश्राद्धम् क्षत्रि-
 यादीनामाशौचमध्येभवतीति आद्यंश्राद्धमशुद्धोपि कुर्यादेकादशे-
 हनि कर्त्तुं स्तात्कालिकीशुद्धि रशुद्धः पुनरेवसः एकादशेन्हियच्छ्रा-
 द्धम् तत्सामान्यमुदाहृतम् चतुर्णामपिवर्णानां सूतकन्तुपृथक्पृथ-
 गितिवचनाभ्यामेकादशाहेविहितत्वादिति अन्येत्वाहुः एकाद-
 शेहनीत्यस्याशौचान्तदिनोपलक्षकत्वाच्चातुर्वर्ण्यस्याथाशौचांतए-
 वेति अन्यथाविप्रस्याशौचान्तेक्षत्रियादीनामाशौचमध्येद्वत्यर्द्धज-
 रतीयापत्तेरिति आद्यंश्राद्धमशुद्धोपेत्यस्य मासिकापेक्षया नव-
 श्राद्धस्यैवाद्यत्वा न्नवश्राद्धविषयत्वं नवश्राद्धमशुद्धोपि कुर्यादेकाद-
 शेहनाति काष्णार्जिनिपाठादिति निबन्धकृतांविरोधः तदेतद्वि-
 चारणीयम् किमाशौचमधेयकरणम् विचारसहं किंवाशौचोत्तर-
 इति उभयपक्षस्यापिवाचनिकत्वात् तथाहिआशौचमधेयआह-
 कातयायनः एकादशेन्हियच्छ्राद्धं प्रतेयकन्तत्समाचरेत् आशौचेषुच-
 श्रद्धेषुविप्रोभोक्तानजायते विप्रं कुशमयंश्रुत्वेति प्रागुक्तम् गालवोपि
 एकादशेन्हियच्छ्राद्धन्ततत्कुर्याद्विषपूर्वकम् सर्वेषामेववर्णानां सूत-
 कन्तुपृथक्पृथगिति सापिण्डो विष्णुरपि मन्त्रवर्जं हिशूद्रस्य द्वाद-
 शेहनिकीर्तितमिति आशौचांतैत्वंगिराः एकादशेन्हिविप्राणाम्

क्षत्रियाणां च योदशे वैश्यानां षोडशे श्राद्धमेकविंशे च शूद्रके । श्राद्धमेकादशाहिकं मासिकादित्रयं नवमाद्यत्र मात्स्येपि क्षत्रादिः सूतकान्ते तु भोजयेद्युजोहिजान् द्वितीयेन्हि पुनस्तद्देकोहिष्टं समाचरेत् तथा आशौचानन्तरं पुनो वृषोत्सर्गप्रपूर्वकं आरभेत शुचिर्भूत्वा श्राद्धमेकादशाहिकं अविरपि प्रेतार्थं सूतेकांते तु ब्राह्मणान्भोजयेद्यत्र आद्यश्राद्धनिमित्तेन एकमेकादशे हनीति दशैकस्वेतन्वयः एवं वचनविप्रतिपत्तौ व्यवस्यौयते एकादशाहेश्राद्धत्रयं प्राप्नोति एकमतानवश्राद्धं द्वितीयमाद्यश्राद्धं तृतीयमपकर्षमासिकं तत्रापकर्षे ब्राह्मण एकादशाहेऽतानवश्राद्धं आद्यश्राद्धञ्चेति द्वयङ्गत्वा प्रथममासिकादिश्राद्धचतुर्दशकञ्च कृत्वा द्वादशाहं सपिण्डीकरणङ्कुर्यात् अनपकर्षे त्वेकादशाहे नवमाद्यञ्चेति द्वयङ्गत्वा द्वादशाहादौ विहितस्वस्वकाले मासिकादिषोडशकङ्कुर्यादिति क्षत्रियादिभिस्त्वंतानवश्राद्धमाद्यश्राद्धञ्चेतेकादशाहे नियमितत्वादाशौचमधेयपङ्कत्वाऽशौचान्ते प्रथममासिकादिषोडशकमपकर्षे कर्त्तव्यम् आशौचमध्ये पूरकपिण्डासमाप्तौ मासिकानामविहितत्वात् आशौचान्ते तिसपिण्डदानस्य विहितत्वाच्च तथा च मरीचिः आशौचान्तेऽवतः सम्पूज्य पिण्डदानं समाप्यते ततः श्राद्धम्प्रदातव्यं सर्ववर्णेष्वयन्विधिः हरिनाथोपि पृथेयोदशमः पिण्डो राक्षसैर्द्वादशेहनि वैश्यानां पञ्चदशके देयस्तु दशमस्तथा पिण्डः शूद्रेण दातव्यदिनान्यष्टौ न वाथवाः सम्पूज्य चतुर्तो मासे पिण्डसेपं समापयेदिति अनपकर्षे तु यथाकलमासिकमिति अतश्च येषु निवन्धे त्वेकादशाहे क्षत्रियादीनां श्राद्धविहितम् तत्र च श्राद्धाद्यश्राद्धविषयम् येषु त्वाशौचान्ते प्रतिपादितम् तन्मासिकादिश्राद्धषोडशकविषयमित्येवङ्गल्पनेन निवन्धकृतामविरोधो देशाचारविषयत्वेन वेति सर्वमनवद्यम् ।

इति श्री श्राद्धकाशिकायाम्पञ्चमीकण्डिका समाप्ता ।

इत्यावसथिक श्रीमदतिसुखात्मज श्रीविष्णुमिश्रात्मजम्नः

कणमिश्रस्यकृतौ आहिकाशिकायांसूत्रवृत्तौ ।

सपिण्डीकरणप्रकरणम् ॥

इत्यप्यार्वणौ कोट्टदिष्टसपिण्डनश्राद्धेष्वप्रादक्षिण्यादि धर्मा-
नुपदिश्येदानींस्वीकृत्वेन तद्विपरीतप्रदक्षिणादिधर्मा न्प्रति-
पादयिषुरभ्युदयिकश्राद्धमारभते ॥

मू० आभ्युदयिकेप्रदक्षिणमुपचारः ॥१॥

अभ्युदयदृष्टापूरुतादुत्सवकाल स्तत्रक्रियतइत्याभ्युदयिकम्
शेषिकष्ठज् प्रदक्षिणमिति विशिष्टविधिः उपचारःकरणम् अत्रश्रा-
द्धसर्वमनुष्ठानम् प्रदक्षिणम्भवतोत्यर्थः अभ्युदयोदृष्टिःइत्यनर्थात-
रम् ॥ तथा अग्न्याधानाभिषेकेदा विष्टापूरुतेस्त्रियाकृतौ दृष्टि-
श्राद्धमप्रकुर्वीत आश्रमग्रहणेतथेति दृष्टगार्ग्यवचनात् आदिशब्दः-
पुत्रजन्मविवाहादर्थः तथाचसएव पुत्रोत्पत्तिप्रातिष्ठामु तन्मौजीत्या
गवम्भने चूडायांचविवाहेषु दृष्टिश्राद्धंविधीयतइति ननुच नान्दी-
मुखकूर्माङ्गञ्चेति संज्ञाभेदात्कथमामुदयिकम् वृद्धिश्राद्धमित्यु-
च्यते दृद्धिश्राद्धएवनांदीमुखमिति संज्ञाभेदःप्रयोग विशेषणार्थः
तथाचवृद्धवसिष्ठः पुत्रजन्मविवाहादौ दृष्टिश्राद्धमुदाहृतम् तत्रना-
न्दीमुखमितिविशेषः समुदाहृतइति यत्तु कर्माङ्गमिति संज्ञान्तरं
तदपिदृष्टिधर्मातिदेशेन तत्तद्रूपमेवसंज्ञाभेदेपीत्यविरोधः तथाच
पारस्करः । निषेककालेसोमेच सीमन्तोन्नयनेतथा ज्ञेयंपुंसवनेश्रा-
द्धकूर्माङ्गं दृष्टिवत्कृतं लौगाक्षिरपि नामान्नचौलगोदान सोमोपन-
यपुंसवे स्नानदानविवाहेषु नान्दीश्राद्धंविधीयतइति अत्राभ्युद-
यिकइति वदतामाटस्यापनाद्यंगेषु प्रागुदकसंस्थतैवोक्ता देवकृत्य

च्चादितिगम्यते अतएवप्राङ्मुखस्य कर्तुं रुदक्संस्थतायामप्रादक्षि-
 ण्यमपि स्यादित्याहुः तत्रापिप्रादक्षिण्यमेवेत्युदङ्मुखस्यैव कर्तृत्व-
 मित्यन्ये अत्रानूचानाःप्रमाणम् अत्रैतच्चिन्त्यते किं वृद्धिश्चाद्विन्दिन-
 त्वये कार्यमुतैकदिनएवेति तत्रैकऽप्राहुः एकस्मिन्कर्माहएवेति
 मातृभ्यःप्रथमन्दद्यात्पितृभ्यस्तदनन्तरं ततोमातामहेभ्यश्च वृद्धौश्रा-
 द्भवयंस्मृतमिति वचनादिति तदयुक्तं अस्यापि विदिनविधायकत्वं
 प्रतिभानात् तथाचस्मृतिः मातृश्राद्धत्तुपूर्वेद्युः कर्माहन्येवपैतृकम्
 मातामह्यच्चोत्तरेदुर्गवृद्धौश्राद्धवयस्मवेत् वसिष्ठोपि पूर्वदुर्गमातृकंश्राद्धं
 कर्माहम्यैतृकतया उत्तरेदुर्गःप्रकुर्वीतमातामहगणस्यत्विति नन्वेक
 दिनकरणन्दिनत्वयाशक्तौ कर्माहेवेदितव्यमितिचेत् तदपिन तत्र-
 पिपूर्वेदुर्गरेव विहितत्वात् तथाच पृथग्दिनेष्वशक्त्येदेकस्मिन्पूर्व-
 वासरे श्राद्धवयस्प्रकुर्वीतवैश्वदेवन्तु तान्तिकमिति तान्तिकमि-
 त्येकदिने विशिष्टविधिः वृद्धमनुरपि अलाभेभिन्नकालानां नां दी-
 श्राद्धवयस्सुधः पूर्वदुर्गरेवकर्तव्यं स्यूवाह्नेमातृपूर्वकमिति यत्वेक-
 दिनएवाचरन्ति तद्वचनादर्शननिवन्धनमित्यवधेयं जातकर्मादि-
 विषयम् वेत्यविरोधः पठन्तिच पुंसवनेच सीमन्तेत्यन्न चौलोपना-
 यने गोदानेस्नानउद्वाहे नां दीश्राद्धम्पुरोदितइति अतश्चविहितेषु
 पूर्वदुर्गरेवेति तन्न अकृत्वामातृयागन्तुयः श्राद्धम्परिवेषयेत् तस्य-
 क्रोधसमाविष्टाहिंसामिच्छन्ति मातरइत्यादिवचना न्मातृपूजनस्य
 श्राद्धे पूर्वभावित्वात्तत्पूजने विरुद्धानीचवाक्यानि दृश्यते अत्रकात्या-
 यनपरिशिष्टम् गौरीपद्माशचीमेधा सावित्रीविजयाजया देवसेना-
 खधा स्वाहामातरोलोकमातरः धृतिःपुष्टिस्तथातुष्टिरात्म देवतया
 सह गणेशेनाधिकाहेयतावृद्धौ पूज्याश्चतुर्दशेति चतुर्विंशतिमते-
 ब्राह्मणाद्यादिस्तथासन्न दुर्गाक्षेत्रगणाधिपः वृद्धौवृद्धौसदापूज्याः

पश्चान्नांदीमुखान्पितृन् ब्राह्मीमाहेश्वरी चैवकौमारी वैष्णवीतथा
 वाराहीचतथैन्द्रीच चामुण्डादेवमातरः तिस्रःपूज्यापितुः पक्षेति-
 स्त्रोमातामहेतथा । इत्येतामातरःप्रोक्ताः पितृमातृष्वसाष्टमीति
 अत्रयथाशाखंयथा जातिकुलम्बाव्यवस्थेत्यविरोधः तथाच चतुर्विं-
 शतिमते श्राद्धआभुदयेप्राप्ते देवतास्थापनंस्मृतम् । जातिधर्मकुल-
 श्रेणिलोकानां वृद्धिकारकमिति तत्रामाध्यन्दिनशाखायामनुक्तत्वा
 त्किञ्छन्दोगोक्तम् कार्यमुत्तान्यस्मृत्युक्तमिति सन्देहः तत्रैकग्र-
 हःपरोक्तत्वाद्व्यतिक्रिदिक्रयेति तथाचसंग्रहकारः सर्वेषामपि
 पञ्चाणांस्वग्रहोक्तंविधीयते स्वग्रहोक्तस्यवाभावेग्रहणंस्वेक्याभ-
 वेदिति तदयुक्तं सूत्रपरिशिष्टयोरेककर्तृत्वात्तस्यान्यशाखिवि-
 षयत्वात्पारस्करमतस्याश्रयणीयत्वाच्च तथाचस्मृतिसंग्रहः । नग्र-
 ह्यादिस्मृतिर्येषां श्राद्धादावुपलभ्यते कर्तुमर्हन्तितेसर्वेपारस्कर-
 मुनीरितमिति परेषांकरोतीतिहिच्युत्पतेः अतश्चगौर्यादयएवा-
 चशाखायामितितत्प्रकारमाह ॥ सएवप्रतिमासुचशुद्धासुलिखि-
 त्वावापटादिषु अपिचाक्षतपुञ्जे पुनैवेदौष्टपृथग्विधैरिति शुद्धाहु-
 रजतादिधातुमयीषुअक्षतपुञ्जाः यवमुष्टयः यथामन्त्रबन्धयथाकुलञ्च-
 विकल्पः व्यवस्थितविकल्पोवा जातकर्मणिवालानांनामाह्वयन
 कर्मणि निरीक्षणेप्राशने च व्यवस्थंमाहपूजनमितिबचनात् । अ-
 तएवपृथग्विधैरित्युक्तं गन्धताम्बूलवस्त्रादिभिश्चशब्दार्थः तथा कु-
 डालगनावसोर्धारांसप्तधारांघृतेनतु कारयेत्पञ्चधारांवानातिनी-
 चांनचोद्धितां कारयेदितिस्वार्थेणचस्वकर्तृत्वान्नियमार्थोवा ते-
 ननातिनीचांनचोद्धितामितिमाहसंमितामेव नतासामधजध्व-
 त्वाधिकमित्यर्थः कालमाह ॥

मू० पूर्वाह्णे ॥ २ ॥

आहुकुर्यादिति शेषः एतच्च सकलदेवधर्मोपलक्षणं तेनोपजीति
 प्राङ्मुखदक्षिणजानुपातदेवतीर्थप्रागुदकसंस्थानमस्कारादिदेवधर्मः
 सर्वोपप्राप्नोतीत्यर्थः । तथाच प्रचेताः अपसव्यं न कुर्वीत न कुर्यादप्र-
 दक्षिणं प्राङ्मुखो देवतीर्थेनक्षिप्रं देवविसर्जनम् दक्षिणम्पातयेज्जा-
 नुदेवान्परिचरन्सदा निपातो न हि सर्वस्य जानुनो विद्यते कश्चित् य-
 थेकोपचरे देवांस्तथा दृष्टौ पितृनपि दध्यक्षतैः सबदरैः प्राङ्मुखो दङ्गु-
 खोपिवा तथा पूर्वाह्णे दैविकं श्राद्धमपराह्णे तु पैतृकं एकोद्दिष्टन्तु म-
 ध्यह्ने प्रातर्हृद्विनिमित्तकमिति दैविकं दद्यादद्यादिषु वैष्णवं तथाच
 विश्वामित्रः देवानुद्दिश्य क्रियते यत्तद्दैविकमुच्यते तन्नित्यं श्राद्धव-
 त्कुर्याद्वा दद्यादद्यादिषु यत्नत इति ननु व प्रातर्हृद्विनिमित्तकमित्य-
 दानेकस्य प्रातरे वास्य विहितत्वात्कथम्पूर्वाह्ण इति उच्यते प्रातः
 शब्देन पूर्वाह्णस्यैवोक्तत्वादिति वक्ष्यमाणत्वात् एवञ्च सति पूर्वाह्णः
 किन्द्रेधा विभक्तो न्हि ग्राह्यः किंवा त्रेधा क्वास्त्रिदद्याति चतुर्ध-
 विभागान्तर्भूतत्वात् उच्यते दैवमा मुषपितृकालापेक्षया विभागौ
 चिन्त्यौ त्रिधा विभाग एव ग्राह्य इत्यदोषः तथाच श्रुतिः पूर्वाह्णो वैदे-
 वानां मध्यं दिनो मनुश्राणा मपराह्णः पितृणां मिति नन्वेवमपिश्रु-
 तिरेव पुनरहः पूर्वाह्णो देवाः अपराह्णः पितर इति द्विधैवाह तत्
 कथं त्रिधा विभाग एवेति मैवं सामान्येनास्याः श्रुतेराभ्युदयिकाद-
 न्यपित्रा विषयत्वात् यत्तु पितृनप्यत्र देववदित्यतिदेशेन प्रागावर्त्त-
 नादह्नः कालं विद्यादिति गोभिलमूत्रेण च द्विधा विभागेन मभ्याहो-
 मिहितः स पाकयज्ञादिदेवकर्मविषयः अन्यथा पराह्णे पाकयज्ञसं-
 भवात् । तस्मात्त्रिधा विभाग एव ग्राह्य इत्यदोषः तथाच श्रुतिः पूर्वा-

होवैदेवानां मध्यन्दिनइति सिद्धम् तथाचगायः ललाटसंमिते
भानौप्रथमः प्रहरः स्मृतः स एवाध्यर्धसंयुक्तः प्रातरित्यभिधीयते
अध्यर्धमधिकार्धं सार्धं प्रहरइत्यर्थः । अग्न्याधानाभ्युदयिकेतु गा-
लवः । पार्वणञ्चापराह्णेतु वृद्धिश्चादन्तयाग्निकमिति । अग्न्याधान
निमित्तमपराह्णइत्यर्थः ।

मू० पितृणामन्तवर्जज्ञपः ॥ ३ ॥

मधुमतीपितृसहितयोरुपलक्षणञ्चैतत् । तथाचमनुका-
त्यायनौ मधुव्याताजपस्थानेकुर्यात् तत्रप्रयत्नतः । उपास्मै-
गायतेत्यादिहृचः पञ्चजपेत्तथा मधुमध्विति यस्तत्रविर्जपोशितुमि-
च्छताम् । गायत्र्यानन्तरं सोममधुमन्तविवर्जितः । नचाश्र-
त्सुजपेदत्र कदाचित्पितृसंहितां अन्यएवजपःकार्यः सोम-
सामादिकं शुभमिति । पित्र्यमन्त्राश्चाश्रत्सुजपे दित्यत्रोक्तास्ता-
न्वर्जयित्वाजपः कर्तव्यइत्यर्थः । अत्रजपत्वाविशेषा दुश्शन्तस्त्वाऽयं
तुनइत्यादीनामपि प्रतिषेधइति केचित् । आवाहनार्थत्वादनयोर्न
प्रतिषेधइत्यन्ये एवञ्चसतिब्राह्मणानां मग्निस्थानीयत्वात्तच्छरीर
वर्तिपित्रावाहनस्य मन्त्रेणैवोचितत्वाच्च विधिरेवंयुक्तःप्रतिभाति ।
अन्यथामन्त्रवत्क्रियमाणानाममन्त्रकत्वेन विफलत्वापत्तेः । अत्रैत-
च्चिन्त्यते किंस्वादिप्रयोगः प्रकर्तव्यउतनेति । अत्रशेषंपार्वणवदि-
त्यति देशेनप्राप्नोतीति । तदयुक्तम् पितृणामप्यत्रदेवरूपत्वात् ।
तथाचस्मृतिः पितृणारूपमास्थाय देवाश्चन्नमदन्तिते तस्मात्स्येन
दातव्यं वृद्धिपूर्वेषुदाहृभिः नांदीमुखेतिप्रयोगस्य तत्प्रतिनिधिरूप-
त्वाच्च । तथाह्युक्तं तत्रनांदीमुखमिति विशेषः समुदाहृतः अपिच
चतुर्विंशतिमतम् नांदीमुखमितिविशेषः सम्पादितोनान्यइत्यर्थः ।

ऋजुवोदग्भाः ॥ ४ ॥

दर्भशब्दोदूर्वादि द्रव्योपलक्षणो न समूलत्वज्ञापकः तेनाद-
 दूर्वासाहचर्याद मूलाऋजुदर्भाभवन्तीत्यर्थः । तथाचपुराणसमुच्चये
 दधिदूर्वाक्षतमधु बदराक्षतमिश्रितैः अनुलेपनगन्धादि रक्तसूत्र
 च्छस्यते वृद्धवसिष्ठोपि अपसव्यञ्जानुपातमन्त्रं मांसञ्चवारिजम्
 रक्तं विवर्जयेदर्भा न्यमृलांश्चतिलानपीति गृह्यपरिशिष्टेपि युग्मा-
 ब्राह्मणा अमूलादर्भा इति । तत्रैतत्संदिह्यते किं वृद्धिश्चाद्वैतं
 स्यादुत सदैवतमिति उभयथापि स्मृति दर्शनात् । तथाहि विष्व-
 प्येतेषु युग्मांस्तु भोजयेद्ब्राह्मणां च्छुचिः प्रदक्षिणन्तु सव्ये न प्रदद्या
 द्वैवपूर्वकमिति । मार्कण्डेयोपि वैश्वदेवविहीनन्तत्वेऽपि दिच्छन्ति
 सूरय इति । तदाभ्युदयिकं तत्रैक आहुः यथाशाखं व्यवस्थेति ।
 एवञ्च सति तत्रापि किं शाखत्रयेपि विशेषणाद्वैतविकल्पः किं वा श्रा-
 द्धविशेष इति संदेहः अविशेषेणैव श्राद्धत्रयेपीत्येके तदहदं श्राद्धवि-
 शेषेऽद्वैतस्य विकल्पितत्वात् । तथाच शातातपः नित्यश्राद्धमद्वैतं
 स्यादेकोद्दिष्टं तथैव च मातृश्राद्धन्तु युग्मे स्यादद्वैतं प्राङ्मुखैः पृथक्
 केवलमित्यर्थः । आचारतिकेपि पितरोन्वष्टकाश्राद्धमाताभुंक्ते सदै-
 वताम् वृद्धावद्वैतमाता पितरश्च सदैवतमिति तस्मान्मातृश्राद्ध एव
 दैवतविकल्प इति सिद्धं तथाच अन्वष्टक्येऽपि तृभ्यश्च तत्स्त्रीभ्यश्च
 सदैवतं तामास्त्वदैवतं वृद्धौ तेभ्यश्चैव सदैवतमिति यत्तु विष्वप्ये-
 ष्विति वचनं तत् द्वादशदैवत्यापेक्षया न्यूनवदैवत्येऽप्युपपद्यत इ-
 ति विरोधः ॥

मू० यवैस्तिलार्थाः ॥ ५ ॥

(१) अर्थप्रयोजनं प्रतिनि धूपलक्षणञ्चैतत् तेन यवैस्तिलप्रतिनि-

(१) अत्र यावन्तस्तिलायास्ते सर्वेऽपि यवैरेव कर्तव्याः ॥

धिर्यथा तथा स्वधादिपदेषु स्वाहादिपदानि प्रतिनिधातव्यानीत्य-
र्थः तथा चेश्वरः कुर्यात्स्वाहास्वधास्थाने वाचने प्रीयतामिति वृ-
द्धिश्चाङ्गेषु सर्वत्र नमो मे वृद्धिरिष्यत इति । न च यवैस्तिलार्था इति वद-
तो यवक्षेपमन्तोपि पितृषु तेषु स्यादित्युक्तं तिलार्थस्यैव यवैरुप दिष्ट-
त्वान्नमन्त्येति तिलोसीति प्रत्यक्षविरुद्धत्वाच्च अतश्च तिलोसीति-
मन्त्र एव यवोसीत्यादि पदपक्षेपः पितृपात्रेष्वपीति तथा चाश्वलायनः
यजोसिसोमदेवत्यो गोसवो देवनिर्मितः प्रथमज्ञिः पृक्तः पुष्ट्यानां दीमु-
खांल्लोकान् प्रीणाहिनः स्वाहेति पुराणसमुच्चयेऽपि अस्मच्छब्दन्तकु-
र्वीत श्राद्धे नान्दीमुखे कचिदिति अत्रैके वृद्धिश्चाङ्गे पितृर्धपात्रं न्युज-
मित्याहुस्तद्विशेषवचनानवलोकननि बन्धनमित्युपेक्षणीयं तथा च-
ेश्वरः अपसव्यं पित्र्यमन्त्रं स्वामजानुनिपातनम् नृजं पात्रं न कर्त्त-
व्यं वृद्धिश्चाङ्गेषु सर्वदा वसिष्ठोऽपि दत्त्वा पिण्डान् न कुर्वीत पिण्डपात्र-
मधोमुखमिति तथा गुडे धूपः प्रयत्नेन पुष्पाख्ये वोत्तमा निच इति ॥

**मू० सम्पन्नमिति तृप्तिप्रश्नः सुसम्पन्न-
मितीतरे ब्रूयुः ॥ ६ ॥**

तृप्तास्येत्यत्र संपन्नमिति वदेदित्यर्थः (१) साकांक्षत्वात्सु संपन्नमि-
ति प्रतिवचनम् एतच्च पाकश्राद्ध एव नामान्ने तत्रैतदसम्भवात् त-
था च आमश्राद्धमनंगुष्ठमग्नौ करणवर्जितम् तृप्तिप्रश्नाविहीनत्वात् क-
र्त्तव्यमानवैर्ध्रुवमिति विहितञ्च विकल्पे नामश्राद्धम् तथा च वृद्ध-
याज्ञवल्क्यः आमश्राद्धं प्रकर्त्तव्यं वृद्धौ नान्दीमुखे सदा पाकेन वा ब-
हिःशालैः सुधुरस्वदरंदधीति अत्र यथा कुलं यथा सम्भवं वा विकल्पः
अत्रैतच्चिन्त्यते किमामश्राद्धं पिण्डदानमामे कार्यमुत पाकेनेति
तत्रैकश्राद्धः आमश्राद्धं यदा कुर्यात् । द्विधिक्षः श्राद्धदस्तदा तेना ।

(१) सुसम्पन्नमिति प्रोक्तं शेषमन्नं निवेदयेत् ॥

ग्नौकणंकुर्यात्पिण्डांस्तेनैव निर्वपेत् । दद्याद्यदिद्विजातिभ्यः ।
शृतम्वायदिवाशृतं तेनाग्नौकरणंकुर्यात्पिण्डांस्तेनैवनिर्वपेत्इति
मत्स्यपुराणव्यासवचनाभ्या मामेनविहितत्वादामेनैवेति । तद-
युक्तं आमश्चाद्यंदाकुर्यात्पिण्डदानङ्गयम्भवेत् । गृहपाकात्समु-
द्रुत्थ सक्तभिःपायसेनवेति पाकेनविहितत्वात् एवन्तर्हि विक-
ल्पोस्त्विति नव्यवस्थासंभवे ऽष्टदोषदुष्टत्वात् । तस्मात्तद्विजकर्तृ-
केपाकेन शूद्रकर्तृक आमनेनेतिव्यवस्थोत्पद्येत तन्नातीक्ष्णोभते ।
साग्निनिरन्त्योर्विषया व्यवस्थोपपत्तेः तस्मात्साग्नेः पाकेनाग्नौ
करणं पिण्डौनिरग्नेरामान्नेनेतिव्यवस्था अथवायथाकुलमिति ।
यच्च आमनेनपिण्डांदद्यादग्नौ विप्रान्पक्वेनभोजयेत् । पक्वेनकुरुतेपि-
ण्डान्विप्रेष्वासं प्रयच्छति तावुभौमनुनाप्रोक्तौ नरकाह्नौनसंशयः
तस्माद्विपर्ययम्विद्धा न्नकुर्याच्छाडकर्मणीति तच्छाड्वान्तरविषयं ॥

मू० दधिवदराक्षतमिश्राःपिण्डाः ॥ ७ ॥

अक्षतायवाः मिश्रणंमिश्रः दध्यादिभिर्मिश्रितोदनेन पिण्डा-
देयाद्व्यर्थः । बहुव्रीह्युपलब्धेः अवैकआहुः दध्यादि त्रयमेव मेल-
यित्वादेयाद्व्यति तदयुक्तं शाल्यन्नस्यविहितत्वात् तथाचांगिराःशा-
ल्यन्नंमधुसंयुक्तं वदराण्यवास्तथा मिश्राणिक्लृत्वाचत्वारि पिण्डा
(१) ञ्क्रीफलसंमितान् दद्यादिति कात्यायनोपि सर्वस्मादन्नमधु-
त्य व्यञ्जनैरुपसिच्यच संयोज्ययवकर्कन्धु दधिभिःप्राङ्मुखस्तद्वति
पिण्डग्रहणमपिण्डकव्युदासार्थं एतच्च साग्निविषयं तथाचनिगमः
आहिताग्नेःपितृर्चनं पिण्डैरेवेति स्मृतिरपि योग्नौतुविद्यमानो-
हि वृद्धौपिडान्ननिर्वपेत् पतन्तिपितरस्तस्य नरकेसतुपच्यतइति
यत्तु पिण्डनिर्वपणङ्कुर्यान् नवाकुर्यान्मराधिपेति भविष्यवचनं ।

यच्च दृडिश्राद्धविकल्पेन पिण्डदानं बुधैः स्मृतमिति वचनं तन्निरग्नि-
 विषयं तथा च यावन्नात्राग्निसम्बन्ध उत्सन्नाग्निरुतथैव च तावद्दृडि-
 षुसर्वासु कल्पश्राद्धमपिण्डकं अत्रविशेषः पिण्डहीनेपिकर्तव्यम् वि-
 कारम्पात्रपूरणं अग्नौकरणमर्धञ्च त्येत्च्छ्राद्धे चतुष्टयं वर्जनेपि-
 ण्डहीनेपि सर्वमर्धादिकम्भवेत् कुशांस्थाप्यास्वधांकुर्यात् क्षिपेदग्नौ-
 जलेपिवेति यत्तु सङ्कल्पन्तुयदाकुर्यान्नकुर्यात्पात्रपूरणमित्या-
 दितत्श्राद्धान्तरविषयं अपिण्डकन्तथादेशकुलाचारविषयञ्च वृद्धि-
 श्राद्धे कुलाचार देशकालाद्यपेक्ष्यहीति भविष्यद्वाक्यशेषात् अत्रत-
 च्छिंत्यते किमत्रावनेजन मुदकेन देयमुतान्यद्रव्येणेति तत्रैक-
 आहुः तत्पात्रक्षालनेनाथपुनरप्यवनेजयेदित्यनेन पिण्डपात्रक्षाल-
 नजलेनैवेति अन्येत्वाहुः क्षालनोदकस्य कृन्दोगविषयत्वात् उद-
 केनैवेति तदुभयमपि विशेषवचनानुपलपन्निबन्धनमित्यवधेयं
 क्षालनोदकस्य पुत्र्यवनेजनविषयत्वात् क्षीरेण विशिष्टविधानान्चेति
 तथाच प्राङ्मुखस्त्वथदर्भेषु दद्यात्क्षीरावनेजनं दधिवदरयवमधु-
 युक्तं श्रीफलसन्निभं तथाक्षय्योदकस्थाने दद्यात्क्षीरयवोदकमिति-
 ब्रह्मपुराणवचनात् अतश्चक्षीरेणैवेति पुनश्छिंत्यते पिण्डदानमपि
 किन्देवतीर्थेनाहोस्वित् प्राजापत्येनेति तत्रैकआहुः दध्यक्षतैः स-
 वदरैः प्राङ्मुखोदङ्मुखोपिवा देवतीर्थेनैवपिण्डान्दद्यात्कायेनवा-
 नृपे त्यनेनोभयतीर्थस्य विहितत्वाद्विकल्पएवेति । अन्येत्वाहुः ।
 कृन्दोगादेवतीर्थेन वाजसनेयिप्रभृतयः प्राजापत्येनेति तथाच-
 मार्कण्डेयः नान्दीमुखानांकुर्वीत प्राज्ञः पिण्डोदकक्रियाः प्रा-
 जापत्येन तीर्थेन यच्च किञ्चित्प्राजापतेरिति अब्रानूचानाः
 प्रमाणं पिण्डोदकयतिरिक्तं देवतीर्थेनपिण्डोदकम् प्राजाप-
 त्येनेतिव्यवस्थावा अत्रविशेषमाह स्मृतिः । वज्रमाटकपुत्रोयः

आङ्गेष्वन्वष्टकादिषु सर्वासां नामसंकौर्त्य पिण्डमेकं सनिर्वपेत् ।
 पुराणसमुच्चये एकस्य बहवो भार्या एकपुत्रस्तथा यदि एकेनापि-
 सपुत्राद्याः सर्वासां पिण्डस्तु सः बह्वीनामेकपत्नीना मेकाचेत्पु-
 त्रिणी भवेत् तेन पुत्रेण पुत्रिण्यः सर्वास्तामनुरब्रवीत् इति अत्रैतत्सं-
 दिह्यते किमर्घदाने पिण्डवदेकस्मिन् सर्वनामोद्देशः किंवा पृथग्-
 र्घा इति तत्रैके आहुः अर्घस्य पिण्डवद्विधानमेवेति तदयुक्तं अर्घ-
 दानपृथक्तेनोपदेशात् तथा च गालवः अनेकमातरो यस्य आङ्गेचा-
 परपाक्षिके अर्घदानं पृथक्कुर्यात् पिण्डमेकञ्च निर्वपेदिति अप-
 रपाक्षिक इति आहान्तरोपलक्षणम् अत्रैके दाक्षिणात्याद्विश्रा-
 ङ्गेषु प्रपितामहमारभ्या र्वाचीनम् पिण्डदानादिप्रयोगमाचरन्ति-
 नान्दौ मुखे विवाहे च प्रपितामहपूर्वकम् वाक्यं समुच्चरेद्विद्वा नन्य-
 त्वपि तृपूर्वकमिति वचनादिति तदनुचितम् नान्दौ मुखाः पितरः पि-
 तामहाः प्रपितामहाः प्रौथंतामित्यादिप्रयोगस्य कात्यायनेन पिटप्रभृ-
 तुत्तरोत्तरक्रमेणाभिहितत्वात् आह च परिशिष्टे उत्तरोत्तरदानेन
 पिण्डानामुत्तरोत्तरः । भवेदधश्चाधरणा माधारः आङ्गकर्मणि
 तस्माच्छ्राङ्गेषु सर्वेषु दृढिमत्स्वितरेषु च मूलमध्यागदेशेषु ईषत्स-
 क्तांश्च निर्वपेदिति उत्तरोत्तरः पुत्रपौत्रादिभिः समृद्धयः अधराणाम-
 ग्रमध्यमूलक्रमेणाधोदानेनाधाराः । पुत्रादिभिर्हीनो भवेदित्यर्थः त-
 स्मादत्र शाखायां ततोचितमिति यत्तु नान्दौ मुखे विवाहे चेति व-
 चनन्तदन्यशाखिविषयम् देशकुलधर्मादिविषयं वेत्यविरोधः अत्रै-
 तच्चिन्त्यते वेदिकाया लेखावयवम् पिण्डदानञ्च किमुदकसंस्थं क-
 र्त्तव्यमुत दाक्षिणासंस्थमिति तत्रैक आहुः अप्रदाक्षिणत्वेपि अस्य-
 आङ्गस्य दैविकत्वा दुदकसंस्थमेवेति तदयुक्तम् आभ्युदयिके प्रद-
 क्षिणमुपचार इति विरोधाच्च न चोदकसंस्थतायाम् प्रमाणमुपल-

अन्द्क्षिणासंस्थत्वेच प्रदक्षिणंप्रमाणमस्त्विति तस्मादक्षिणसं-
स्थमेव रेखायांपिण्डशानादि तथाचकात्यायनएव द्वितीयञ्चतृ-
तीयञ्च सवादेशाग्रदेशयोः मातामहादिप्रभृतौन् एतेषामेववाम-
तइति एतेषांपितृादितृयाणाम् वामतइत्यग्वयः तत्पित्रादीनां-
मधेय यत्वेनसम्बोधयत्वेनच स्वसंमुखत्वाद्दक्षिणासंस्थत्वेनतेषांवा-
मता यत्वाशादित्येन पिण्डानामवयवाभावाद्दामतायां कर्तृगतो-
वयवदृश्यतइत्युक्तम् तदसङ्गतं एतेषामेववामत इतेरतच्छब्देन पि-
त्रादीनांपरामृष्टत्वात् कर्तुरवयवत्वेतु एषामितिचबहुत्वविरोधा-
च्च तस्मादक्षिणासंस्थत्वेनैतद्वामतासम्भवः अत्रार्थेदृश्याज्ञव-
ल्क्यः जीवज्ञर्त्तरिवामांगे मृतेभर्त्तरिदक्षिणइति अपिचस्मृत्यंतरं
आज्ञेसदैववामाङ्गे पत्नीनामुदकंहरेत् वृद्धिआज्ञेषुनारीणां दक्षि-
णांगेसदाभवेदिति आज्ञेसदैववामांग इत्येतदापस्तंबादिविषयं
तेषाम्पित्रादिपिण्डपश्चिमतश्चपत्नी पिण्डविधानात् तथाचापस्तंब-
गृह्यं ॥ द्विधाभूतं यथाभवति तथासदक्षिणाग्रान् दर्भानुल्लिखित
देशेसंस्तीर्य तत्रपूर्वभागेपित्रादि वर्गार्थस्तरणं पश्चाद्भागेतु मावा-
दिवर्गार्थमिति स्त्रीभ्यश्चपिण्डाद्ब्रह्मपश्चिमाःस्युः इतितद्गृह्यभाष्या-
र्थसंग्रहकारः वृद्धिआज्ञेषुनारीणां दक्षिणांगंसदाभवेत् इतितुसर्व-
विषयं तस्माद्रेखापिण्डदानादिकम् प्राङ्मुखकर्तृदक्षिणासंस्थ-
मेववृद्धिआज्ञेषु सर्ववकर्त्तव्यमितिसर्वमनवद्यम् ब्राह्मणनिवेशोप्येवं
प्रागारभा पश्चात्संस्थमेवेति ॥

मू० नांदीमुखान्पितृनावाहयिष्यऽइति
पृच्छत्यावाहयेत्यनुज्ञातो ॥ ८ ॥

लिङ्गार्थेनलट् अवैतद्वक्तव्यं किम्पित्रादिविकस्य नांदीमुखत्वं
आहोस्वित् वृद्धिप्रपितामहादिविकस्येति स्मृतिप्रभयथादर्शनात् ।

तथाचब्रह्मपुराणम् पितापितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः तयोश्च शु-
 मुखा एते पितरः परिकीर्तिताः तेभ्यः पूर्वतराये च प्रजावन्तः सुखे-
 पिणः ते तु नान्दीमुखानान्दी मन्त्रद्विरितिकथ्यते प्रसन्नमुखसंसर्गा-
 न्मङ्गलीयास्ततस्तुत इति । तत्तश्च वृद्धप्रपितामहादिमुखत्वेना-
 भुग्दधिकत्वं प्राप्नोति अथवा पितापितामहश्चैव तथैव प्रपिताम-
 हः ॥ पिण्डसंबन्धिनो हेतवे पितरः परिकीर्तिता इत्यादिवचनैर-
 शुमुखानामेव पिण्डसम्बन्धित्वा त्रिपदादिकस्यापि नां दीमुख-
 त्वमिति तथाच सूत्रम् ॥ नां दीमुखाः पितरः पितामहाः प्रपि-
 तामहा इति मार्कण्डेयोपि येस्यः पितामहादूर्ध्वं तेस्य नां दीमु-
 खा अपीति प्रपितामहस्यापि नां दीमुखत्वं न वृद्धादिविकस्यैवेति
 एवं च सत्पुत्रभेषामपि नां दीमुखत्वमविरुद्धम् यच्चाशुमुखादिसं-
 ज्ञाकीर्त्तनन्तत्कारणपरम् प्रसन्नमुखसंसर्गादित्यादिना नान्दी-
 मुखाः वंशवृद्धिमीहन्ते ऽशुमुखास्तु पितृवरणसमर्थाः सन्ततमिति-
 ब्राह्मे निहृपितत्वं तु तस्माज्जीवत्यिह मातृमातामहादिकस्य क-
 र्तृरधिकारार्थं वृद्धप्रपितामहादिकस्य नां दीमुखत्वकीर्त्तनं न ह-
 तपितृमातृमातामहादिकस्य कर्तृरधिकारार्थं मशुमुखानां नां-
 दीमुखत्वमितिव्यवस्थेति विरोधः तथाच चतुर्विंशतिमतम् नां दी-
 मुखे विवाहादौ प्रपितामहपूर्वकम् । वाक्यं समुच्चरेद्विद्वानन्यत्र पि-
 तृपूर्वकं जीवत्यितृकः प्रपितामहपूर्वकं मन्त्रमृतपितृकः पितृपू-
 र्वकमित्यर्थः दाक्षिणात्यास्तु प्रपितामहः पितामहपितरितिक्रमवृ-
 ध्दर्थमेतदित्याहुः कात्यायनोपि जीवन्तमतिदद्याद्वा प्रेतायान्नो-
 दके हि जः पितुः पितृभ्यो वा दद्यात्सपितेत्यपराश्रुतिः ब्राह्मेऽपि उक्त-
 मादाय पिण्डं तु कृत्वा बिल्वप्रमाणकं दद्यात्पितामहादिभ्यो दर्भमू-
 ले यथाक्रममिति पठन्ति च जनन्यां विद्यमानायाम् यजेदास्तु पि-
 तामही मातृघ्नः स चाविज्ञेयो वृद्धिश्चाजावृते कचिदिति अतश्च जीव-

वत्पितृवादिपंक्तिविकस्यापि वृद्धिश्चाद्विधिकारइतिसिद्धम् अत्रैक-
 आहुः पितृमातृमातामहानांमध्ये योजीवतितद्वर्गपरित्यज्य पा-
 र्वणद्वयमेकंवा यथासम्भवङ्कर्त्तव्यं त्रिषुजीवत्सु मातृपूजनमेव-
 नश्राद्धमिति तथाच पितृवर्गेमातृवर्गे तथामातामहस्यच जीवेत्स-
 यदिवर्गादौ तद्वर्गन्तुपरित्यजेत् इति तथाच सपिदुःपितृकृत्येतु
 अधिकारो न विद्यते न जीवन्तमिति क्रम्य किञ्चिद्दद्यादिति श्रुतिः
 तथा पित्र्यञ्जीवत्पितुर्नोक्तं मग्नौ होमोऽपि पाक्षिकः न जीवन्तम-
 तिक्रम्य किञ्चिद्दद्यादिति श्रुतिरिति जीवत्पितृकस्य होमान्तम-
 नारम्भो वेत्यादिवचनेभ्य इति ॥ यत्तु उद्वाहेषु वजनने पितृप्राप्तौ
 मिकेमखे तीर्थे ब्राह्मणमायाते षडेते जीवतः पितुरिति मैत्रायणी
 यप रिशिष्टं तन्मैत्रायणीयशाखिनां साग्नीनामेव न जीवत्पितृकः
 कुर्याच्छ्राद्धं मग्निमृते हि जः येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यः कुर्वीत सा-
 ग्निकइति सुमन्तुवचनेन निरग्नेर्जीवत्पितृकस्य श्राद्धानधिकारा-
 दिति अत्रोच्यते यदुक्तम् पितृवर्गेमातृवर्गे तथामातामहस्यचे-
 त्यादि तन्न जीवद्वर्गपरित्यागस्य तीर्थब्रह्मणसम्पत्त्यादौ निरग्निजी-
 वत्पितृकविषयत्वेन चरितार्थत्वात् तथाचाधिकारमाह महानदी-
 पु सर्वासु तीर्थेषु च गयां विना जीवत्पितापि कुर्वीत श्राद्धं पार्वणधर्मव-
 दिति यच्चेत्तं त्रिषु जीवत्सु मातृपूजने नैव श्राद्धसिद्धिरिति तदप्यसं-
 गतम् अङ्गिनः श्राद्धस्य लोपेङ्गस्य मातृपूजनस्य प्रवृत्तावाश्रय्योपपत्तेः
 न च श्राद्धमन्तरेण मातृपूजायाः कर्मणोऽङ्गत्वम् यच्चाभाधायिसपितुः पि-
 तृकृत्येष्टित्यादि निषेधस्तस्य वृद्धिश्चाद्वादन्यश्राद्धविषयत्वात् तथाच-
 क्रतुः श्रष्टकासु च संक्रांतौ मन्वादिषु युगादिषु चन्द्रसूर्यग्रहेपाते स्वेच्छ-
 यापूज्ययोगतः जीवत्पितानैव कुर्याच्छ्राद्धं इत्याम्यन्तथाखिलं अखिल-
 मिति । व्यतीपातो जन्मच्छ्राद्धं चन्द्रसूर्यग्रहौ तथा तिथि नक्षत्रवारांश्च

उद्दिश्याभ्युदयन्तथा एतांस्तुश्राद्धकालान्वैकाभ्यानाह प्रजापतिरित्या-
दिकं आभ्युदयआराममहादानाद्युत्सवः यत्वास्मात् नजीवत्पितृकः
कुर्याच्छ्राद्धमग्निमृतेद्विज इत्यनेननिरग्नि जीवत्पितृकस्य श्राद्ध-
निषेधइति तदपिन उद्वाहेपुत्रजननइत्यत्र साग्निशब्दाभावान्नि-
रग्निविषयत्वोपपत्तेः उक्तञ्चअनग्निकोपिकुर्वीत जन्मादौष्टद्विक-
र्मणीति यच्च नजीवत्पितृकइत्यनेन साग्निजीवत्पितृकस्य श्राद्धवि-
धानं तस्याष्टकादिनियत श्राद्धविषयं नसामान्येनसर्वश्राद्धविधायकं
गयापरपक्षादिश्राद्धनिषेधानुपपत्तेः यदप्युक्तं जीवत्पितृकस्यहोमांत
मनारम्भोवेति तत्साग्नेःपिण्डपितृयज्ञादि निषेधविषयंनाभुद-
यिकमेवेति । तेभ्यःपूर्वतरायेवैद्वत्यादिना भुदयिकस्य प्रतिप्रस-
वोपपत्तेः तस्माज्जीवत्पितृवादि त्रिकस्याभुदयिकं श्राद्धंकर्तुमुचि-
तमितिसिद्धम् ॥

मू० नान्दीमुखाःपितरः प्रीयन्तामित्य

क्षय्यस्थाने ॥ ८ ॥

अत्रनांदीमुखान्पितृनावाहयिष्य इत्यनेनैवनांदीमुखत्वात्प्राप्तौ
पुनस्तद्गृहणंसर्वत्रप्रयोगार्थं तदुक्तं तत्रनांदीमुखमिति विशेषःस-
मुदाहृतइति प्रकृतिश्राद्धेष्वक्षय्योदकदानन्तु अर्घदानवदिष्यते ।
प्रथमैवनित्यन्तत्कुर्यान्नचतुर्थ्याकदाचनेति काश्चायनेनप्रथ्यन्तत-
न्वयोर्विहितत्वादत्रतन्निषेधोवाचनिकः । तेनप्रथमाविभक्त्यातन्नेण
चाक्षय्योदकदान मत्रक्षीरयवोदकैर्भवतीत्यर्थः । तथाच तथाक्ष-
य्योदकस्थानेददया त्क्षीरयवोदकमिति पितृगृहणंस्वपितृप्राप्त्यर्थं
तेनजीवत्पितृवादि कोपि स्वमातृमातामहादिभ्यएव ददयान्नपितृ
संवन्धिभ्यइत्यर्थः अत्रैकआहुः अनग्निकोपिकुर्वीत जन्मादौष्टद्वि

कर्मणि येभ्यएवपिता दद्यात्तानेवोद्दिश्यपार्वणमित्यादिवचनेषु
यत्तच्छब्दनिर्देशात्पितृभ्यएवदद्यान्स्वपितृभ्य इतितदयुक्तं स्व-
पितृभ्यःपितादद्यात्मुत संस्कारकर्मस्त्विति कात्यायनेन प्रादुर्भावे
पुत्राभ्योर्गृहणे चन्द्रसूर्ययोः स्नात्वा नन्तरमात्मीया न्पितृन्प्राद्वेन
तर्पयेदिति काष्णाजिमिनाच स्वपितृभ्यएवप्राद्विविधानात् नच-
मातृमातामहादिकं परित्यज्य पितृसंबन्धिभ्योदातुमुचितं अतश्च-
स्वपितृभ्यएवेतिसूक्तम् ॥

मू० नान्दीमुखान्पितृन्वाचयिष्यऽइति
पृच्छतिवाच्यतामित्यनुज्ञातो नान्दीमुखाः
पितरःपितामहाः प्रपितामहाः नान्दीमु-
खा मातामहाः प्रमातामहा वृद्धप्रमाताम-
हाश्च प्रीयन्तामिति ॥ ६ ॥

अतप्रथमोद्दिष्ट नान्दीमुखशब्देन वृद्धप्रपितामहादितिक-
स्यैव नान्दीमुखत्वंमाभूदित्य शुमुखानामपि तत्प्राप्त्यर्थं पुनर्ना-
न्दीमुखग्रहणं एवंमाताहेष्वपि अतएवमन्त्रे पितरःपितामहाइति
बहुत्वमुक्तं चकारोमातृवर्गं प्राप्त्यर्थं तथाचब्रह्मपुराणं मातामहे-
भ्यश्चतयानां दीवक्षेभ्यएवच अथनां दीमुखीभ्यश्च मातृभ्यःप्राद्वमुक्त-
मिति । ननुचाभ्यादयिके मातृप्राद्वस्यपूर्वभावित्वात्पितृग्रहणं-
किमर्थं उच्यते अग्निहोत्रं जुहोति यवागूं पचतीति वत्पाठोर्थेन वा-
ध्यत इत्यदोषः तथाचशाठ्यायनः नां दीमुखीभ्य इत्यादि मातृप्राद्वन्तु
पूर्वस्यात्पितृणान्तदनन्तरम् ततोमातामहानाञ्च वृद्धौप्राद्वयंभ्यत
मित्यादिच अतश्चनां दीमुख्योमातरः प्रीयन्तामित्यादिक्रमेण यथा-

लिङ्गस्ययोगः अत्रैतत्संदिह्यते किमत्रनवदैवत्यं श्राद्धमुतद्वादशदैवत्य-
मिति उभयथावचनदर्शनात्तथाहि मातृभ्रा. प्रथमन्दद्यात्पितृभ्य-
स्तदनन्तरंततोमातामहानाञ्च दृष्टौश्राद्धवयं स्मृतमित्यादि चतुर्विंश-
तिमतेतुमातृपूर्वांश्चपितृपूज्य ततोमातामहीस्तथा मातामहन्ततः
केचिदेवंयुग्मांस्तुभोजयेत् पुराणसमुच्चयेपि शस्तं नां दीमुखं श्राद्धम्पि-
ण्डैर्द्वादशभिः सदा तथापि दधिदूर्वाक्षतयवैर्वंदरेण विमिश्रितैः पिण्डा-
नां दीमुखे देयामातृपूर्वांश्चद्वादशेति एवंविप्रतिपत्तौ यथाशाखं-
यथाकुलन्देशं वा व्यवस्थेत्यविरोधः तुल्यविकल्पो वा अथवा धनधान्य
पुत्रपत्न्यादि दृढ्यर्थं क्रियमाणस्मृदिश्राद्धं अग्न्याधानाद्यभ्युदयनिमि-
त्तमाभ्युदयिकमिति भेदः । तत्र दृष्टिश्राद्धद्वादशदैवत्यं आभुगदयिकं
नवदैवत्य मितिव्यवस्थेति अन्वष्टकायां यच्छाद्धं यच्छाद्धस्मृदिहेतुकं
पित्वादीनां पृथग्दानं स्त्रीणां पिण्डः पृथक्पृथगिति अत्र दृष्टिहेतुक-
मित्यभिधानात् तथा शरीरोपचये श्राद्ध मर्थोपचय एव च पुष्ट्यर्थमि-
ति विज्ञेय मौपचारिकमुच्यते तथा नक्षत्रग्रहपीडासु दुष्टस्वप्नाव-
लोकने इच्छाश्राद्धानि कुर्वीत नवसस्यागमेतथेति वचनादिति ॥

मू० नस्वधाम्प्रयुञ्जीत ॥ १० ॥

निषेधांतरोपलक्षणञ्चैतत् तेन शर्मादिकमप्यत्र न प्रयुञ्जीते-
त्यर्थः तथा च पुराणसमुच्चये नस्वधाशर्नवर्मेति पितृनामनचोच्चरेत्
न कर्मपितृत्तीर्थेन न कुशादिगुणीकृताः न तिलैर्नापसव्येन पितृभ्रा-
न्वविवर्जितं अस्मच्छब्दं न कुर्वीत श्राद्धे नान्दीमुखे कचिदिति अतश्च
नां दीमुखपितरमुकगोत्रेत्यादिप्रयोगः । अन्येतु पार्वणवन्नामश-
र्मादिक मपि प्रयुञ्जते तन्निषेधदर्शनात्कथमिति चिन्त्यं पार्वणव-
दित्यतिदे शद्वातद्विधिः अत्र कश्चिदाह प्रकृतेस्वधावाचने स्वधान-

प्रयुंजोतेतिनिषेधइतितदयुक्तं सामान्येनाभुग्दधिकेतन्निषेधात् ॥

म० युग्मानाशयेदत्त ॥ ११ ॥

अवाभुग्दधिकेयुग्मान्विचतुरादी न्विप्रानाशयेद्भोजयेदित्यर्थः
अस्य दैविकत्वाद्दैवे युग्मान्यथाशक्ति इतिपरिभाषयैवयुग्मत्वप्रा-
प्तौ विशिष्टविध्यर्थंयुग्मग्रहणम् तेनपित्येपि युग्मानेवप्रातर्निमं-
न्त्याशयेदित्यर्थः तथाचकात्यायनः प्रातरामन्वितान्विप्रा न्युग्मा-
नुभयतस्तथेति अन्यच्च ज्येष्ठोत्तरकरान्युग्मा न्कराश्रागपवित्कान्
कृत्वार्धसम्प्रदातव्यं नैकैकस्यात्प्रदीयतइति युग्मानितिपुंस्त्वम-
विवक्षितम् तेनयुग्माभावेस्त्रियोपीत्यर्थः तथाच मातृश्राद्धेतुवि-
प्राणाम लाभेपूजयेदपि पतिपुत्रान्विताभ्या योषितोष्टौकुलोद्भ-
वाइति वृद्धर्वासष्ठवचनात् शंखोपि पित्रादित्रयपत्नीस्तु भोज्या-
मातृप्रतिद्विजैः । स्त्रीणामेवतुतद्यस्मा न्मातृश्राद्धमतःस्मृतमिति
आशयेदित्यपिविशिष्टविध्यर्थं तृप्तिप्रश्ने नैवभोजनोपलब्धेः अतश्च-
गुडशर्करादिनामधुराग्नम् भोजयेदिति विशिष्टविधिरित्यर्थः तथा-
चभविश्यत्पराणम् ब्राह्मणेभ्यस्ततोदद्या भोजनंमधुरङ्ग गुडमि-
श्रंसितायुक्तं संघृतञ्चोदनम्परं सरतनान्मोदकांश्चैव नचाम्लकटुकां-
स्तथा कृष्णात् योपि अन्यश्राद्धेषुदातव्यं नमांसम्मातृपूजनमिति अ-
पिच अपसव्यंजानुपात मस्तम्मांसविवारिजम् रक्तं विवर्जयेद्दर्भा-
न्समूलांश्चतिलानपीति तथा द्राक्षामलकमूलानियवान्वाथनि-
वेदयेत् तानेवदक्षिणार्थेतु दद्याद्विप्रेषुसर्वदेति ब्रह्मपुराणम् अ-
तश्चद्राक्षामलकमूल यवनिष्क्रयिणींदक्षिणां युवाभ्यांसम्प्रददइ-
त्यादिप्रयोगः नैकैकस्यावदीयतइत्युक्तं तथाभुग्दधिकश्राद्ध सन्दे-
होनिरस्यते तत्रकातयायनः स्वपितृभ्यःपितादद्यात्सुतसंस्कार-

कर्मसुपिण्डानोद्वाहनात्तेषान्तस्याभावेतुतत्क्रमादिति अस्यार्थः
 पिण्डशब्दः श्राद्धं लक्षयति आउद्वाहनादित्याड भिविधौततश्च-
 पुत्रस्यनिषेकादिप्रथमविवाहपर्यन्तेषु संस्कारकर्मसुपिता स्वमातृ-
 स्वपितृस्वमातामहेभ्यः श्राद्धं दद्यात् नपुत्रमातृमतामहादिभ्यः
 तस्यपितुरभावेतेषाम्पि तुर्मात्वादीनामेवनवानां तत्क्रमादेयनक्र-
 मेणपित्रादीनान्तेनैव क्रमेणाधिकारौज्येष्ठभावादिरपिदद्यादिति
 नन्वेवंसतिसंस्कार्यस्य पुत्रादेस्तृतीयपितोः श्राद्धादौमुख्याधिकारित्वा
 त्तदतिक्रमोनायुक्तइति नचजीवत्पितोर्ह्यनुष्ठानक्रमः समृतपितो-
 रप्युचितत्वादितिवाच्यं प्रेतेभ्योदद्यादित्यादिवचनैः प्रत्तानामवश्य-
 देयत्वात् तस्मात्तेषान्तस्याभावेतुतत्क्रमादित्यस्यतत्क्रमात्तदुपक्रमा-
 न्मृतपित्वादिसारभैवश्राद्धम् भ्रातादिरप्यधिकारौकुर्यादित्येवार्थः
 तस्याभावेसुतः क्रमादितिपाठेपितदर्थस्यप्रतीयमानत्वाच्चेति ।
 अब्रूच्यते असंस्कृतातुसंस्कार्यभ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैरित्यादिनाभा-
 वादयः पितृभावेप्रतिनिधित्वेनाविधीयन्तेप्रतिनिधेश्च सतद्वर्मा-
 कर्मयोगादितिकात्यायनपरिभाषायांपितृधर्मेप्राप्तेभावादिः पितृ-
 समानधर्मेति किञ्चित्तस्याभावइति अभावः पञ्चविधः प्रागभावः
 प्रध्वंसाभावः सन्निध्यभावः अधिकाराभावः अत्यन्ताभावश्चेति
 तवमंस्कार्येसतिप्रागभावः अत्यन्ताभावयोरसम्भवएव प्रध्वंसाभावसं-
 न्निध्यभावाधिकाराभावानांसम्भवोस्तीति तवसर्वत्रापिवचनवलात्
 पितुः पितृभ्यः प्रदानस्विधीयतेनसंस्कार्यपितृभ्यः तथाचस्मृतिः ।
 पितरोजनकस्येवयावद्गतमनाहितम् समाहितव्रतः पश्चात्स्वान्यजे-
 तपितामहान्इति पितामहानितिपित्वादुपलक्षणम् तथाब्राह्म-
 ण्यविहतेतातेपतितेसङ्गवर्जिते व्युत्क्रमाच्चमृतेदेयं येभाएवददा-
 त्यसावित्यादि यत्तुप्रेतेभ्योदद्यादितिवचनन्तर्दधिकारसम्भवावश्यकं

अधिकारश्च सहायत्वेन विवाहानन्तरम् स्वपितृभगो दातुं भवतीति
तथा च ऋष्यशृङ्गः नाश्नाति यो द्विजो मांसं यस्य नोदारसंग्रहः तावेतौ
मुनिभिः प्रोक्तौ अनर्हौ मखदूषकाविति नाश्नाति मांसं श्राद्धे । इति-
शेषः ननु च समाहितव्रतः पश्चात् स्वान्यजेत पितामहानित्यनेनोप-
नयनादूर्ध्वं स्वपितृभगो दातुमधिकारस्तत्कथं विवाहानन्तरमिति उ-
च्यते उपनयनादूर्ध्वं स्वपितृभ्यो दातुं कर्त्तव्यं नन्तराभाव एकपुत्रविषयः
कर्त्तव्यतरसङ्गावेतु प्रतिनिधिभूतः स एव तदाद्यविवाहपर्यंतं संस्कार्यस्य
पितृभगवदद्यादिति तथा च सुमन्तुः श्राद्धं कुर्यादवश्यं तु प्रसीतपि-
तृको द्विजः व्रतस्थो वा व्रतस्थो वा एक एव भवेद्यदौति तस्मात्पुत्रमुक्त-
स्मिन्नभावे प्रतिनिधेः प्रतिधर्मं प्राप्या संस्कार्यस्य पितृमातृपि तामहेभ्यः
श्राद्धं दद्यादिति तथा च स्मृतिः नान्दीश्राद्धं पिता दद्याद्दादेरपाणि-
ग्रहेषु धः अत ऊर्ध्वं प्रकर्त्तव्यम् स्वयमेव तु नादिकमिति । अपरमपि
पितृस्तु जीवतोः पुत्रः कुरुते दारसंग्रहम् पितुर्नादौ मुखं प्रोक्तम् न पु-
त्रस्य कथञ्चनेति ननु पित्वोर्जीवतोरेव तत्पितृभगो नादौ मुखं प्रोक्तं
मृतयोस्तवन्यः करोतीति तत्कथं संस्कार्यस्य पितृणामतिक्रमो युक्तः
सतां उद्गाहनादित्यवधिना पितृपितृभगवद्विधाना तस्मिन् धर्ममिति प-
रिभाषया प्रतिनिषेधस्तद्वक्रमस्य वाचनिकत्वात् अपि च वच-
नान्तरं कन्यापुत्रविवाहेषु प्रवेशेन ववेशमनः नाम कर्मणि बालानां
चूडाकर्मादिकेतथा सौमन्तोन्नयने चैव पुत्रादिसुखदर्शने नान्दीसु-
खस्मिन् गणम् पूजयेत्प्रयतो गृहो तिगृह एवोपदेशात् चूडाकर्मादि-
कइत्याद्यविवाहपर्यंतं वेदितव्यं तदूर्ध्वं तु द्वितीयविवाहादावपि
सर्वत्र जीवत्पितृकः पितृपितृभगो मृतक स्वपितृभग इति विवेकः तत-
श्चायमर्थः पिता स्वपुत्रस्य निषेकादि विवाहपर्यंतं संस्कारकर्मसु
स्वमा इति पिता मातामहेभ्यः श्राद्धं कुर्यात् पितुरभावे संनिहिते वाधि-

काराभावेवा तत्प्रतिनिधिज्येष्ठभावादिर्विवाहपर्यंतम् कर्मसुसं-
स्कार्यस्यपितृभ्राणवकुर्यात् कर्त्तन्तराभावे उपनीतएकपुत्रःस्वदमेव
स्वविवाहे स्वमातृस्वपितृस्वमातामहेभ्योदद्यात् विवाहानन्तरं
जीवत्पितृकः पितृपितृभ्योदद्यात् मृतपितृकः स्वपितृभ्राणैर्वतिस-
र्वमनवदद्यात् ।

इति श्रीश्राद्धकाशिकायां षष्ठीकण्डिका समाप्ता ।

इत्यावसथिक श्रीमदतिसुखात्मज श्रीविष्णुमिश्रात्मजम्

कृष्णमिश्रकृतौश्राद्धकाशिकायांसूत्रं हत्तौ ।

आभुदयिकंश्राद्धं समाप्तम् ॥

इत्यम्पावेणादिसर्वंश्राद्धमभिधाया धुनातृप्तास्येत्यादिना तप्ते-
रकष्टार्थत्वात्तामन्तरेणासंतृप्ताःपितरोयांतौ त्यादिदोषदर्शना-
दनेकविधद्रव्यैस्तां प्रतिपिपादयिषुःसूत्रमारभते ॥

मू० अथहृतिः । १ ॥

वक्ष्यतइतिसूत्रशेषः अथशब्दोऽधिकारार्थःअनंतर्थाद्यसूत्रादेवल-
ब्धैः तेषुग्राह्यारण्यौषधिसूत्रफलमृगपक्षिमौनादिनानाविधद्रव्यै-
स्तृप्तिरधिक्रियतेवक्तुमित्यर्थःतथाचादित्यपुराणं विविधान्नानिमां-
सानि पितृणान्तृप्तिकारणात् । दातव्यान्यनिषिद्धानि श्राद्धं चैवा-
जम्भेत्इति ॥

मू० ग्राम्याभिरोषधीभिर्मांसन्तृप्तिः ॥ २ ॥

पितृणामितिशेषः कालाध्वनोरितिद्वितीया अतस्तृप्तिरित्य-
नुयुक्तौ पुनस्तद्गृहणमपांप्राप्त्यर्थं तेनौषधिजलाभ्यामेवतृप्तिर्नके-
वलौषधीभिरित्यर्थः तथाचश्रुतिः आपोहवाओषधीना ठं रस-
स्तस्मादोषधयः केवल्यः खादितानविश्वन्त्योषधय उपहायाऽरस-

स्तस्मादापःपीताः केवल्योनपिवन्ति यदैवोभयः सः स्तृष्टोभवंत्य-
 धैवविचिन्वन्तौत्यन्वयव्यतिरेकेणार्थवादइति ओषध्योधान्यानि ।
 तथाचश्रुतिः दशग्रास्याणिधान्यानिभवन्ति ब्रीहियवास्तिलमाषा
 अणुप्रियंगवोगोधूमाश्चमसूराश्च खत्वाश्चखलुकुलाश्चेति अयमर्थः
 ब्रीहयस्तण्डुलधान्यानि तानिचश्चेतरक्तवर्णीनि आइदेयानि
 कृष्णधान्यानि सर्वाणि वर्जयेच्छादकर्मणीति निषेधात् प्रचेतास्त्वाह
 कृष्णमाषास्तिलाश्चैव श्रेष्ठास्युर्यवशालयः महायवाब्रीहियवा स्तथै-
 वचमधूलिकाः कृष्णाश्चेताश्चलोहाश्च ग्राह्यास्युः आइकर्मणि ।
 एतद्व्याख्यातं माधवीये यवाः सितदीर्घशुकाः महायवाब्रीहियवा
 श्चयवविशेषाः मधूलिकाधान्यभेदः कृष्णास्थलजाः कृष्णब्रीहयः
 रोहाः रक्तशालयः अन्यस्त्वाह मधूलिकायावनालाजातिविशेषाः
 तद्विशेषणं कृष्णाः श्वेतलोहिताः महायवाविशेषा इति अत्र कृष्ण-
 धान्यानि सर्वाण्येत्यनेन विरोधान्माधवीयव्याख्यानमनुचितम् य-
 वाद्विविधा महायवाब्रीहियवाश्च तिलाः कृष्णाः कृष्णानिस्तुषामा-
 षाः तथाच कृष्णामाषास्तिलाश्चेति अमेध्याः स तुषामाषानिस्तु-
 षापिमसूरिकेति च अणुः क्षुद्रसस्यं प्रियंगुः कंगु स्तद्वज्रवचनं पृथग्गृह-
 णं च भेदापेक्षं तथाच निबृण्टः पौततण्डुलिकाकंगुः प्रियंगुः कुक्कु-
 री-
 मता सितकंगुस्तुमसटौ रक्तकङ्कुस्तुसाधिकः चनकः काककंगुः स्या
 च्छामाकस्तुण्वीजकइति मसूराः स तुषानिस्तुषाश्च न आइ देयाः
 निस्तुषापिमसूरिकेतुक्तेः खत्वाः खलुकुलाश्चाप्रसिद्धाः कोद्रवच-
 णकौवाच्यौवागाभ्यत्वात् दशेतिग्रामसंख्यानं किन्तु हविष्यसंख्या
 तथाच विष्णुतिलैर्ब्रीहयवैर्माषैरङ्गिर्मूलफलैश्चाकैः श्यामाकैः प्रि-
 यंगुनौवारैर्गोधूमैर्मासम्प्रायन्तइति मसूरादिगृहणाच्च तथा मा-
 संतृप्तिः पितृणां तु हविष्यान्नेन जायतइति क्षुद्रधान्यानि श्यामाक

प्रियंगुतिलगौररक्तसर्पपवर्जसर्वाण्यश्राद्धार्हाणि निरस्तत्वात् तथा-
च वर्ज्योमर्कटकःश्राद्धे राजमाषास्तथाणवः त्रिपूयिकामसूराश्च
श्राद्धकर्मणिगर्हिताः भारद्वाजोपि निरसान्यपिसर्वाणि भक्ष्यो-
ज्यानियानिच तानिस्तुनैवदेयानि सर्ववश्रद्धकर्मणीति अणवःकुट्टा-
नानिदृष्टानि दृष्टयाक्षवल्क्योपि मकुष्टोराजमाषाश्च मसूराश्च-
णकास्तथा कोट्टवामूलकाराजसर्पपाः श्राद्धघातकाइति राजसर्पपो-
मोहरिः तथाचनिघण्टुः आसुरीराजिकाराजौष्ठिकाकाराजसर्पपाः
राजिकाभयद्वयन्याराजिकाकृष्णसर्पपाइति चतुर्विंशतिमतेपि को-
ट्टवाराजमाषाश्च कुलुत्याश्चणकास्तथा निष्पवांस्तुविशेषेणपञ्चै-
तान्वर्जयेत्सदा यावनालानपितथा वर्जयन्तिविप्रश्चितइति राज-
माषाःपीतगौरवर्णमाषाः लोवित्रा गोरवांसइतिमध्यदेशप्रसिद्धाः ।
निष्पावावेष्टाः शिंबिसदृशादक्षिणापथप्रसिद्धः इतिकश्चित् चर-
कावनमुद्गाः यावनालाजोधलीतिप्रसिद्धाः । तथाचनिघण्टुःया-
वनालोदेवधान्यंजुंदलिंजुन्नलोनलइति अतनिष्पावनिषेधःकृष्ण-
विषयः कृष्णधान्यानि सर्वाणीतिनिषेधात् यवव्रीहिसगोधूमौति-
लामुद्गाःससर्पपाः पियङ्गवःकोविदारा निष्पावाश्चावशोभनाइति
माक्रेण्डेयेन कृष्णेतरस्यविहितत्वात् शोभनःकृष्णेतरः स्मृत्यन्तरे
मुद्गाठकीमाषवर्जद्विदलानिदद्यादिति द्विदलानिदलितुंयोग्या-
निमुद्गःकृष्णः हरितमुद्गकृष्णमाषप्रयामाकेति ब्रह्मपुराणेपि हरि-
तस्यविहितत्वात् माषोराजमाषः तद्ग्रहणंकुलुत्याद्युपलक्षणम् ।
तथाचमरीचिः कुलुत्याश्चणकाः श्राद्धे नदेयाश्चैवकोट्टवाः कटुका-
निचसर्वाणि विरसानितथैवचेति । आठकीतुवरी अरहरीतिप्र-
सिद्धाः एतान्वर्जयित्वाद्विदलानिदद्यादित्यर्थः । नेत्यनुवृत्तौ विष्णु-
पुराणे मसूरचारवास्तोक कुलुत्यशणशिश्रवइति शणशिश्रवादि

शाकानि शाकप्रकरणे प्रपञ्चयिष्यन्ते चारोयवचारादि शेषं स्मृति-
भ्यो विज्ञेयं एतानि धान्यानि निस्तुषानि गव्यदुग्धादिसहितानि च
मासं दृष्टिकराणि तथा च वृद्धया ज्ञवत्कृममल्यपुराणयोः तुषहीनानि
धान्यानि यानि सर्वाणि मेध्यताम् वर्जयित्वा मसूरान् मकुष्ठान् रा-
जमाषकान् मसूरादिधान्यत्रयं निस्तुषमपि त्रमेध्यमित्यर्थः । तथा
अन्नं तु सदधि क्षीरगोघृतं शर्करान्वितं मासं प्रीणाति वै सर्वाणि प्रतृनि-
त्याह केशवः कलायाः सर्वेऽपि अत्रास्ते याः कलायाः सर्वे एव वेति व-
क्ष्यमाणत्वान् ॥

मू० तदभाव आरण्याभिः ॥ ३ ॥

आयुर्वाभाव आरण्याभिरोषधीभिः सौ सन्तृप्तिः पितृणामित्यर्थः ।
आरण्या अरण्याभवाः श्यामा कप्रभृतयः आरण्या खौवक्तव्या इति
श्रुप्रत्ययः तथा च मार्कण्डेयः राजश्यामकस्यामाकौ तद्वच्चैव प्रसा-
तिता नीवाराः पौष्कलाश्चैव धान्यानि पितृपुत्रय इति पुष्कलानी-
वारविशेषाः विष्णुपुराणे व्रीहयश्च यवाश्चैव गोधृमाः कङ्गुसर्षपाः
माषामन्नासप्तमाश्च अष्टमाश्च कुलत्यकाः श्यामाकाश्चैव नीवा-
रा जर्तिताः सगवेधुक्ताः कोविदारसमायुक्ता स्तथा वेणुयवाश्च ये आ-
रण्याः सृता ह्येता ओषध्यश्च चतुर्ह्येति आद्याः सप्तगाम्याः ।
अष्टमाद्या आरण्याः ॥

मू० शाकमूलफलैरौषधीभिर्व्या ॥ ४ ॥

अत्रानुपूर्व्या ओषधिश्चः प्रथमं व्याख्येयः । तथा चोक्तम् अति
रिक्तम्यदन्त्याज्यं हीनं वाक्ये निवेशयेत् विप्रकृष्टन्तुसंदध्या दानुपू-
र्व्याश्च कल्पयेदिति वाग्वदोऽभावे ओषध्यभावे मूलफलादिना मासं
तृप्तिरित्यर्थः । तथा च वृद्धया ज्ञवत्कृमः अन्नाभावे तु कर्तव्यं शाकमूल-

फलादिनेति अत्रपुनरौषधिग्रहणं आरण्याौषधिभावे विहितप्र-
 तिषिद्धौषधिप्राप्त्यर्थः । तथाचमार्कण्डेयः गोधूमैरिनुभिर्मुद्गे क्षी-
 नकौश्लकैरपि श्राद्धेषुदत्तैः प्रीयन्ते मासमेकस्मितामहाइति ।
 मुद्गादन्याः क्षीणकस्तृणधान्येषुकं गुभेदः उशनापि नौवारमाषमुद्गा
 प्रवगोधूमाः शालयस्तथा यवाश्च चणकाश्चैव कं गुभेदः प्रशस्यतइति ।
 ततश्चग्राम्या आरण्या विहितप्रतिषिद्धाः फलानि मूलानि पूर्वपूर्वा-
 भावे उत्तरोत्तराणिक्रमेणग्राह्याणीत्यर्थः अथवासमुच्चयार्थमौषधीग्र-
 हणं तैमौषधिसहितान्येवफलादीनि तृप्तिकराणिइत्यर्थः तथाहिउ-
 त्तरसूत्रं संहान्नेनेति मयुरपि भक्ष्यं भोज्यं च विविधं मूलानि च फला-
 नि च हृद्यानि चैव मांसानि सर्वन्दद्यादमत्सरीति मूलफलैरङ्गिर्वेति
 पाठः तथाचसूचान्तरम् मूलफलैरङ्गिर्वेति सर्वाभावेऽङ्गिस्तृप्तिरित्य-
 र्थः तथाच पराधीनः प्रवासी च निर्धनो वापि मानवः मनसा भावशुद्धे
 न श्राद्धे दद्यात्तिलोदकम् अनुकल्पोपलक्षणञ्चैतत् तेनोपवासा-
 दिकमपि ज्ञेयम् आपोनिषिद्धातिरिक्ताः । तथाचभरद्वाजः नक्तोष्ठ-
 इतन्तु यत्तोयमाल्वलाम्बुतथैव च वर्जयेदिति शेषः मार्कण्डेयोपि
 दुर्गन्धिफेनिलञ्चाम्बु तथाह्यप्रदरोदकं यन्नसर्वार्थमुत्सृष्टम् यच्चा-
 भोज्यन्निपानजम् तद्वर्जं सलिलन्तातसदैवश्राद्धकर्मणीति मूलग्र-
 हणन्दशविधशाकोपलक्षणम् तथाच मूलपत्रकरीराग्रफलकाण्डा
 धिरूढकम् त्वक्पुष्पङ्गवचञ्चेति शाकन्दशविधं स्मृतमिति ।
 मूलं मूलकादि पत्र पालक्यताण्डीवादि करीरखंशंकुरादि अग्रं
 आम्रपुल्लवेत्रादीनां फलकूष्माण्डादि काण्डं सार्षपवास्तुकादि अ-
 धिरूढकन्तालास्थिमज्जादि त्वद्भातुलिङ्गादि पुष्पान्तिन्तिडीक-
 काञ्चनादि कवचं शिलीघ्रादि ॥ मार्कण्डेयः विदार्थैश्चभुरण्डैश्च
 विमैः शृङ्गाटकैस्तथा केन्दुकैश्च तथाकन्दैः कर्कधुवदरैरपि पालैव-

तैरानुकैश्चाप्यक्षौटैः पनसैस्तथा काकोलैः क्षीरकाकोलैस्तथापि-
 ण्डालुकैः शुभैः लाजाभिश्चशिलाभिश्च तपुसीर्वारुचिर्भटैः ।
 सर्वपैराजशाकाभ्यां इंगुदैराजतन्तुभिः प्रियालामलकैर्मुख्यैः ।
 फलभिश्चातिलम्बकैः वेदाङ्कुरैस्तालकंदैश्चुक्रिकाक्षीरकावचैः
 मोचैः समोचैर्लकुचैस्तथावैबीजपुत्रकैः मुंजातकैः पद्मफलैः भक्ष्य-
 भोज्यैः मुसंस्कृतैः रागखाण्डववैश्यैश्च त्रिजातकसमन्वितैः दत्तै-
 स्तुमासम्प्रीयन्ते विधिवत्पितरो नृणामिति अस्यार्थः विदारीतस्याः
 कन्दमिति शेषद्वयत्वयः भुक्खण्डोजलप्रभवः कन्दविशेषद्वयमञ्ज-
 रीकारः केन्दुकः कचूराख्यशाकः जलप्रभवः कन्दविशेषद्वयत्वयः ।
 विसंमृणालम् शृङ्गाटकम् जलजं विकण्टकफलं सिंछारद्वयं प्र-
 सिद्धः कन्दः सूरणकन्दः कर्कन्धुस्वादुवदरीफलम्बदरमन्यवदरफलं
 पालेवतञ्जम्बीराकारं फलङ्काश्मीरप्रसिद्धं आरुकं आरुकन्दः । अक्षौ-
 टः पार्वतेयपीलुफलम् पनसैः कण्टकिफलैः कटहरद्वयं प्रसिद्धैः
 काकोलैर्मधुराफलैः क्षीरकाकोलैस्तद्भेदैः पिण्डालुकैश्चतुर्भेदैः ।
 तथाचमनुः पिण्डालुकमक्षगन्धमध्वालुस्यात्तुरोमशं शङ्खालुशङ्ख-
 सङ्काशं काष्ठालुस्वल्पकाष्ठकमितिलाजाभिर्भृष्टधान्यैः तथाचशंखः
 लाजन्नमधुयुतान्दद्यात्सक्तून् शर्करया सहेति शिलाशैलेयं तपुसं तपु-
 सीफलम् उर्वारुस्वादुकर्कटी चिर्भटः कटुककर्कटी सर्षपोगौरस-
 र्षपशाकः राजशाकः शाकविशेषः कृष्णसर्षपशाकमिति माधवीये
 तन्न तस्य प्रतिषेधात् इंगुदस्तापसतरुः राजतन्तुः प्रियालोराजोद-
 नम् निघण्टोक्तेः प्रियालाद्राच्यावा फलुका कौटुम्बरिकाफलम्
 अतिलम्बकैस्तालकदैस्तालमूलैः कन्दैः चुक्रिकाचिलिकाफलम् ।
 तिन्तिडीफलमित्यर्थः । नागरण्डातिन्तिडीति स्मृत्यन्तरवचनात् ।
 तिन्तिरीकाफलाध्यक्षं मोचाकदलीफलम् लकुचैर्लकुचफलैः बी

जपुवकैः मुञ्जातकैः पद्मफलैर्वदरद्वलिप्रसिद्धैः भक्ष्यलङ्कामो-
दकादि भोज्यव्यञ्जनमोदकादिसूपयुक्तम् रागखाण्डवाः रसालादि-
पानविशेषाः तथाचनिघण्टुः मार्जताशिखरिन्युक्ता रसालारभित
स्तथा ओषधिषाण्डवाख्याचचतुर्जातकसंयुतेति चतुर्जातकं वक्ष्य-
माणम् सुसंस्कृतेरिति मेलकविशेषैः तथाचसूपकारशास्त्रं अर्द्धा-
टकं सुचिरपर्युषितं स्यदध्नः खण्डस्य षोडशपलानि शशिप्रभस्य सर्पिः
पलम् मधुपलम्परिवद्विकषं शुण्ठ्यापलाहं मथवाहं पलञ्चतुर्णां श्लक्ष्णे-
पटेललनयामृदुपाणिष्ठकप्रैर्धूलिसुरभिकृतभाण्डसंस्था एषा-
वृकोदरकृता सरसारसालायास्वादिता भगवतामधुसूदनेन ।
चोष्यैरामादिकैः फलैर्विजातकं लवंग एलागन्धपत्रमेलनं । तथाच
निघण्टुः त्वगेलापत्रकैस्तुल्यैस्त्रिसुगन्धिविजातकम् नागकैसरसंयुक्तं
चतुर्जातमुच्यत इत्यादि वायुपुराणे विल्वामलकमृद्वी कापनसाम्रा
तदाडिमञ्चव्यग्रालेखताक्षोऽट खर्जूरामफलानि च कसेरुः कोवि-
दारश्च तालकन्द तथा विसं तमालं शतकन्दञ्च गन्धालू शीतक-
न्दकम् कालेयं कालशाकञ्च सुनिषण्डं सुवर्चला मांसशाकन्दधि-
क्षीरं वेचुवेवाङ्कुरस्तथा वधूलः किङ्किणीद्राक्षा लकुचमोचमेव च
कर्कशुग्रीवकम्भारान्तिन्दुकम् मधुसाह्वयं नैकङ्कतनालकेरं शृगाटक
परुषमम् पिप्पलीमरिचञ्चैव पटोलं बृहतीफलं सुगन्धिमन्त्यमांसञ्च
कलायाः सर्व एव हो एवमादीनि चान्यानि स्वादूनि मधुराणि च ।
नागरश्चात्र वैदेयं दीर्घमूलकमेव चेति । अस्यार्थः मृद्वीकागोस्तनीद्रा
क्षापनसो व्याख्यातः । आमातकः कपोतनः । चक्षुश्च विकारः । पा-
लेवतमुक्तं । आक्षाटोऽद्युक्तः कसेरुर्भद्रमुक्ता । तालकन्तालमूलीति
प्रसिद्धा । शतकन्दं शतावरी । गन्धालूः कर्चुरशाकम् । शीतकन्दं
शालूकम् । कालेयकन्दः रुहरिद्रा । करालाख्यशाकमिति गोवि-

न्द्रराजः । सुनिषंग्यावितुल्लशाकं । सुखुमीति ख्यातञ्जलभवं-
 शाकमितिकश्चित् । सुनिषंगं वांगेरीसदृशशाकम् । वांगेरीस-
 दृशैः पत्रैः सुनिषंगकमुच्यते । शाकञ्जलाशयेदेशे चतुः पत्नीतिगच्छ-
 न्तइति सुश्रुतोक्तेः । सुवर्चला ब्रह्मसुवर्चला । सूर्यावर्तइति गोवि-
 न्द्रराजः । वधुलः श्रीकणिका । किङ्किणीद्राक्षाक्षुद्रद्राक्षा । लकु-
 चोलिकुचः मोवाकदलीफलं कर्कशुक्तः ग्रीवकञ्जकपुष्पधार-
 म्पियालु विशेषः तन्दुकोसितसारः शृंगाटकमुक्तम् परुषकफले-
 लरुसइति प्रसिद्धफलम् दृढतौविदिग्धिकालं वरेहटाइति प्रसिद्धम्
 दीर्घमूलतिग्धिक्केरीफलम् मूलकमित्यन्यः पटोलीदीर्घपटोलीरा-
 जीफलमित्यर्थः विचेण्डाइतिलोके यत्तु गस्थारिकापटोलीनिशा-
 दकर्मणिवर्जयेदिति पटोलीनिषेधः सत्तुद्रपटोलीविषयः तथा च निष-
 ण्टः पटोलीयाद्वितीयाद्यास्त्रादुपवफलावसेदिति शेषप्रसिद्धं कु-
 मारेश्वरसंवादेपि । पालेवतप्रमृद्धीकाखजूराम्रकसेरुका बिलवा-
 मलकमाक्षौटपनसाभ्यातक्रान्तिच । वेदुर्वेत्तांकुराः शाकंलकुचम्भो-
 चमेवच शीतकन्दं विसम्भालिङ्गरकभूलकस्तथा । इत्यादिमेष्यम-
 न्यत्रप्रदेयं प्रादकर्मणि । वेदुःशणभेदः इतरस्य निषेधात् । वेदुर्म-
 टाकंशाकमित्यन्यः वर्ग्यशाकान्याहविष्णुः भृस्तुणाशिशुसर्पं पसुर-
 सार्कजकूष्माण्डालांशुवार्त्ता कपालक्यतः दुलीयककुसुमः दिवर्ज-
 येदिति भृस्तुणाराहिसः गन्धवणाख्यं शाकमित्यन्यः शिशुसर्पहज-
 नाइति प्रसिद्धं सर्पपोराजसर्पः इतरस्य विहितत्वात् सुरसाखे-
 तनिर्गुण्टी अर्कजः श्वेतार्कजः कुहेरइति प्रसिद्धः । पालक्यः पल-
 कीति प्रसिद्धः तंदुलीयकञ्जोराइति प्रसिद्धं वार्तकं श्वेतदन्ताकं ।
 उशना । नाशिकाशण्डवाककुसुमानां बुविह्वान् । कुम्भोकम्बु-
 इत्ताकहोविदारांश्च वर्जयेत् । वर्जयेद्दृष्टान्नं प्रादं काञ्जिकम्पिण्ड-

मूलकं करंजं येपि चान्येवैरसगम्योत्कटास्तथा । नालिकाप्रसिद्धा ।
दीर्घनालाग्रैलापल्लवेति माधवीये कृत्वा कंशिलिन्धः कुम्भीशीपर्णिका
कम्बुकं उत्तालावु वृन्ताकं श्वेतं कोविदारश्चमकरकम् गृध्रनोहरि-
द्रावण्यः पलाण्डुविशेषः कांजिकम्प्रसिद्धम् करंजश्चिरिविल्वफलम् पुरा
येपि वंशङ्करीरं पुरसं सर्जकम्भूस्तृणानि च अवेदोक्ताश्चनिर्यासालवणा
न्यौखराणि बाभरद्वाजोपि स्वल्पांशुकृष्णान्डकलम्बज्जकन्दञ्चपिप्पली
विविकानिकरीराणि कोविदारगवेधुकाः । कुलत्थशणजस्वीरक-
रम्भाणितथैव च । अजाद्रन्यद्रक्तपुष्पं शिग्रुच्चारन्तथैव च । एतानि
नैव देयानि सर्वस्मिन् आह्वकर्मणीति । पैठीनसिः वृन्ताकं नालिका
पोतकुसुंभाश्मन्तकाश्चेति शाकनामभक्ष्यादिति । स्मृत्यन्तरं पिण्डा
लुकञ्च शुण्डीरङ्गरम हृच्च नालिकम् । कूष्माण्डं वहुवीजानि आह्वे
दत्वा त्रजःप्रधः । भविष्येपि लशुनं गृध्रनञ्चैव पलाण्डुङ्गवकानि च
वृन्ताकमालिकालावुजानीया ज्जातिद्रुषितादिति । एषामर्थः । वंश
ङ्करीरवंशांकुरः सरसं पर्णसद्व्यन्यः सर्जकं शालफलम् । पीतमा-
रकद्व्यन्यः अवेदोक्ताः निषिद्धनिर्यासाः ब्रह्मण प्रभवादयः । तथा-
च मनुः लोहितावृक्षनिर्यासा ब्रह्मण प्रभवांस्तथेति । लोहितावृक्ष
निर्यासालाक्षादयः तेन पाटलश्चेतवर्णानां हिङ्गुकर्पूरादीनामनि-
षेधः । हिङ्गवादीनां विषयमग्रे वक्ष्यामः औखराणिकृतलवणानि
वर्जस्तत्रमसूराश्च कोद्रवा लशुण्डकृतमिति वचनात् । सैन्धवसामु-
द्रादीनां सिहितत्वात् । तथाच लवणे सैन्धवसामुद्रे इति अपि च
सैन्धवं लवणं यच्च यच्च मानससम्भवं । पवित्रे परमेष्ठेते प्रत्यक्षे अपि
नित्यशः मानससम्भवं सांभरीति प्रसिद्धमिति । हलायुधः करीरं
गूढपत्रङ्करीलद्विति प्रसिद्धम् कोविदारोक्तः वज्रकदम्बोद्भवः । सूर-
गगवेधुका शणं शणपत्राणि । जंवीरोदन्तशठफलम् करम्भाणि

क्षारयवक्षारसौवर्चल सौवर्चकादिलवणानि । पोतम्पौतिका-
 णकम् अश्मन्तकोमहोलीवृक्षइति प्रसिद्धस्तच्छाकम् । वृन्ताकंश्वेतं
 तथाचदेवलः काण्डूरंश्वेतवृन्ताकं कुम्भाण्डञ्चविवर्जयेत् । उपमन्यु-
 रपि नाश्रीयाच्छ्वेतवृन्ताकं मातुलानींतथागडकं अण्डकञ्छत्वाकं
 मातुलानिभङ्गेति काण्डूरंकपिकच्छूः । तत्फलङ्गुर्जूरफलमित्यर्थः ।
 कुम्भाण्डवृन्तालावुसदृशफलम् पिण्डालुपेडरुइतिप्रसिद्धं शुण्डीरं
 करमर्दः करवन्दफलानि । बहुबीजानिबहुबीजपूरकादीनि
 पलाण्डुःश्वेतकन्दः पलाण्डु विशेषः लशुनन्दीर्वपचञ्चपिच्छाग
 भोमहौषधम् । करण्यश्चपलाण्डुश्च लताकाश्चपरालिका ।
 गृञ्जनम् पतनेष्टश्च पलाण्डोदशजातय इति सुश्रुतोक्तेः । कवलं
 शिलीभूः कुमारसंवादेपि वर्ज्यास्तत्रमसूरास्तुकोद्रवालवणङ्कृतं ।
 भूस्तणं सरसं शिग्रुम्पालकासुमकं तथा । पिण्डंमूलञ्च वंशाग्रं
 लोहितं ब्रश्चनानिच । पलाण्डुं विडुराहच कृत्वा कंथामककुटं
 लशुनं गृञ्जनं जंबूफलानिकवकानिच तण्डुलीषक मुहालराज-
 मापासुरीरपि । कृष्णाजात्यतसीतैलम्यश्च जाविका दिकमिति
 सुमकह्लादिरीसं ज्वकञ्जलभवंशाकं कुहालः कोविदारः आसुरीरा-
 जिका । कृष्णाजातीकृष्णजीरकः करोञ्जीतिप्रसिद्धश्च अतसी-
 क्षुमा शेषप्रसिद्धं हारीतः नवटं प्लक्षौन्दं वरदधित्यनेल मातुलिङ्ग-
 फलानिभक्षयेदिति । लक्षःपर्कटीः दधित्यः कपित्थः मातुलिङ्गी-
 बीजपूरकः अत्रैतद्विन्यसे । किम्पिप्पलीमरीचहिङ्गूनां निषेधः
 उत्तविधिः उक्तयथावचनदर्शनात् । तथाचविष्णुः पिप्पलीसुमक-
 भूस्तणेत्यादि शंखोपि पिप्पलीमरीचञ्चैव तथावैपिण्डमूलकम् ।
 कृतन्तुलशणं सर्वसाग्रं शिग्रुञ्चवर्जयेत् व्यासः अथाइयानिधान्या-
 निको द्रवापुलकास्तथा हिङ्गुन्द्रयेषु शाकेषुकालानाश्चशुभास्तथा

द्रव्येषु हिंशुशकेषु कालानशचशुभानिच निषिद्धेत्यर्थः पुलकाह-
 खच्छान्दसः । कालानलः कृष्णार्जकः कुहेरइतिप्रसिद्धः शुभाशुभा-
 ख्यः शाकविशेषः इत्यादिनिषेधः विधिस्तुपिप्लीमरिचञ्चैवपटोलं
 दृहतीफलमितिबायुपुराणे कुमारेश्वरसम्वादे पिप्लीमरिचंहीगुप
 टोलं दृहतीफलमित्यादि आदित्यपुराणे पि सधूकं रामठञ्चैवकर्पू-
 रंमरिचङ्गुडमित्यादि रामठंहिङ्गुः एवंबचनविपतिप्रतीकैचिदाहुः पि
 प्लीमरिचं हिङ्गुनांसंस्कारकत्वेनविधिर्युक्तःप्रतिभाति केवलाना-
 म्प्रतिनिषेधः अपरेतु संस्कारान्तराभावेविधिरन्यथानेत्याहुः । षोड-
 शीग्रहणाग्रहणवद्विकल्पद्वत्येके एवञ्चसतिसंस्कारकत्वेन विधिर्युक्तः
 प्रतिभाति । संस्कारत्वेनखाटूनिमधुराणिचेतिखाटुत्वविधित्वो
 पपत्तेः तथाच शुंठीमरीचमिप्ल्योधान्यकाजाजिहिङ्गुकम् पिप्ल-
 लीमूलसंयुक्तसंस्कारइतिस्मृतमिति शङ्कः कृष्णाजाजीविडञ्चैव-
 सीतपाकीतथैवच वर्जयेत्त्वणं सर्वंतथाजम्बूफलानिच । कृष्णाजा
 जीकृष्णजीरकः विडंविदाख्यम् । लवणं सर्वसैम्भवसामुद्रसाम्भरि-
 व्यतिरिक्तम् ब्रह्माण्डपुराणे आसनारूढमन्नादंम्पादोपहतमेव
 चअमेध्यादागतै । स्पृष्टम्भुक्तम्पयुषितञ्चयत् द्विःस्विन्नम्परिदग्ध-
 च्चतथैवाग्रावलेहितम् शर्कराकीटपाषाणैःकेशैर्यच्चाप्युपद्रुतम्
 पिण्याकम्भथितञ्चैवतथातिलवणञ्चयत् सिद्धाःकृताश्चयेभक्ष्याः-
 प्रत्यक्षलवणाकृताः वाग्भावादुष्टांश्चातथादुष्टैश्चोपहृतांस्तथा वास-
 साचावधुतानिवर्ज्यानिश्राकर्मणीति आसनारूढमासनोपरिकृतं
 पादोपहतंपदास्पृष्टम् अमेध्यादागतैःचर्मकारादिअपवित्रस्थाना-
 दागतैरशुद्धैःस्पृष्टम् द्विःस्विन्नद्विः पक्वम् परिदग्धमतिदग्धम् अ-
 ग्रावलेहितंश्राद्धात्पूर्वमाखादितम् पिण्याकन्तिलकल्कःमथितङ्गरे-
 णविलोलितन्निर्जलन्दधि करेणमथितन्दधौतिनिषेधात् मथि-

तन्तक्रमित्यन्यः । सिद्धाभक्ष्याः आमलकादयः प्रत्यक्षलवणे नमि-
 श्रिताः तथा दधिशकान्याभक्ष्यं शुक्रञ्चौषधिवर्जितम् वर्जयेच्च-
 तथान्यत्तुसर्वानभिषवानपि अभक्ष्यन्दधिशकञ्चवर्जयेदित्यन्व-
 यः । अग्न्यन्निषिद्धमित्यर्थः अभिषवाः सन्धानानि शुक्लमनम्लं वस्तु
 कालान्तरेण द्रव्यान्तरे वा त्यक्तं न स्वभावतो त्यक्तम् तथा च ब्रह्मस्यतिः
 अत्यल्लं शुक्लमाख्यातं निन्दितं ब्रह्मवादिभिरिति अत्रापवादः श-
 ङ्गे नोक्तः दधिभक्ष्याञ्च शुक्लेषु सर्वंच दधिसम्भवम् ऋचीसपक्वम्भ-
 क्षास्यात्सर्पियुक्तमिति स्थितिः अनग्निकमुष्माञ्च चीसन्तेन पक्व-
 मास्मादिष्टतयुक्तम्भक्ष्यमित्यर्थः । वायुपुराणे पिभक्ष्याप्येव करम्भा-
 रचद्रष्टकादृतपूरिका कृशरोमधुसर्पिश्चपयः पायसमेव च दधिग-
 व्यामसंसृष्टभक्ष्यान्नाविधानपि । शर्कराक्षीरसंयुक्ताः पृथुकाभि-
 त्यमक्षयाः । सक्तूँल्लाजांस्तथापूपान्कुलमाषाव्यञ्जनैः सह । सर्पिः क्षि-
 रधानिसर्वाणि दधनासंस्कृत्य भोजयेत् आह्वेष्वेतानि यो दद्यात्पित-
 रः प्रीणयन्ति तमिति करं भादव्यक्तः सक्तवः द्रष्टकाः कासारखंडा-
 नि पृथुकाश्चिपिटाः असंसृष्टभक्ष्याः स्वकीयभक्ष्या लाजाभ्रष्टवी-
 हितगडुलाः अपूपाः मण्डकाः कुलमाषायावकाः एतानि पर्युषिता-
 न्यपिष्टतस्त्रिगधानि दध्नामधुना च संस्कृतानि भक्षयेदिति पर्युषिता
 पवादइत्यर्थः यत्किञ्चिन्मधुना मिश्रं गोक्षीरदृतपायसैः दत्तमक्षय्य-
 मित्याहुः पितरः पूर्वदेवता इति मत्स्यपुराणवचनादित्यलम्बहुना शिषं
 स्मृतिभ्यो नुसन्धेयम् अन्नाभावे फलमूलैस्तृप्तिरित्युक्तन्तत्रोपाय-
 विधिमाह ॥

मू० सहान्ने न नरास्तर्पयन्ति ॥ ५ ॥

फलमूलैरन्ने न सह नराः पितृस्तर्पयेयुर्न केवलैरित्यर्थः लटोलि-
 ङ्गत्वात् अत्रान्नेनेति तृतीययैव सहार्थे लब्धे सहेति ग्रहणं विस्प-

एतान्नान्नस्याप्राधान्यार्थं अयमहयुक्ते प्रधान इति पाणीनिस्सरण-
विरोधादस्यस्य कथमप्राधान्येनेति उच्यते अविवक्षितत्वेनास्यदो-
षपरिदूषितत्वात् तथाच विवक्षस्य हि शब्दस्य प्रधानङ्कारणमत्र चा-
स्तु सतेति न चान्नमन्तरेण तृप्तौ मूलफलादेः सामर्थ्याभिप्रायः प्रधा-
ननगुणसम्भावसम्भवोपत्तौ तस्माद्विषयार्थमेव सहेतुत्वं । सहा-
न्नेनोत्तरास्तु र्पयन्तीति क्वचित्पाठस्तत्रोत्तरामूल फलादयस्तेनैव स-
हतर्पयन्ति तद्वन्नुर्वन्ति न केवलानित्यर्थः एवं न हि स्यात्सर्वभूतानी-
त्यहिंसाधर्मेण तृप्तिमभिधायेदानीं हिंसाधर्मेणाह ।

मू० छागोस्रमेघानालभ्य ॥ ६ ॥

छागोर्वर्करः उल्लसूपरः सचशृंगहीनच्छागादि तथाचश्रुतिः
स्तूपरोवाअविषाण इति मेषोमेद्रः एतान्पितृद्देशेन हत्वापचेदित्य-
र्थः तथाचात्रिः मधुपर्कश्च सोमे च दैवपित्र्ये च कर्मणि अत्रैव पशवो हिं-
स्यान्नान्यत्रेति कथञ्चन स्कन्दसंवादेऽपि अर्थे दैवपितृणां हियो हि न-
स्ति पशून्विजः सयज्ञफलमाप्नोति ते च यान्ति पराङ्गतिम् । जावालो-
पि हि न स्तितयः पशून्स्वार्थं मुद्दिश्यैव सपापभाक् । आजापदेशतो हिं-
सन्नपि स्वार्थेन दुष्यतीति अत्रैकआहुः । उल्लोवलीवर्दः तथाच म-
होक्ष्वामहाजंवाओवियायोपकल्पयेदिति तदयुक्तम् महोक्षत्व-
शब्देन तूपरस्योक्तत्वात् तथाच जावालः विषाणोद्भवकालेतुयोवि-
षाणविवर्जितः तं महोक्षं वदन्त्याद्यास्तूपरञ्चापि पावनमिति महो-
क्षः पक्षीवामहोक्ष इति प्रसिद्धः तथाच जातूकर्ण्यः क्रिञ्चिलोहित-
वर्णो हि दीर्घपुच्छी गुरुस्वरः ह्रस्वचोटित्वयः पक्षी समहोक्षेति पाठन-
इति किञ्च वृषस्याभक्षत्वमुक्तम् तथाचेश्वरः साक्षाद्मोदृषः-
प्रोक्तो मन्मूर्तिर्ममबाहनः तं यदापि हियो हन्ति तेनाहं स्कन्दताडितः

वृद्धदेवलोपि वेमरांश्चगजश्वांश्चवृषभांश्चकरिमाचलं रासभम्प्राशयच-
 भवेद्विदृक्कृमिर्वाभवेभवन्निति करिमाचलः शृगालः । उक्तः शतवह्नि-
 न्नामद्वत्यनो उक्तः शतवलादुक्तस्तूपरोक्षगभस्तिष्वित्यभिधानात् ।
 तदपि न पश्वालम्भप्रकरणात् न हन्यान्मत्स्यसूकराविति निषेधात्
 अतश्चोक्तशब्देन कलौकागमेषावेव पशुपञ्चकमध्येतयोरेव भक्ष्य-
 त्वाहवनीकृत्वाच्च तथाचश्रुतिः पुरुषोश्वोगौरविरजीभवन्तेताव-
 न्तोवैशर्वेपशवइति गोभिलसूत्रेण कागोक्तमेषाञ्चालभ्याइति ।
 ननु च कागमेषग्रहणेनैव तल्लब्धेः किमर्थमुत्सृज्यग्रहणं उच्यते विशेष-
 विध्यर्थत्वादित्यदोषः । तथाच स्कन्दसंस्कारादे बाध्नीनसंस्काराहाश-
 लकोलाहाजस्तुपरंघृतमिति । दद्यादेतद्भवेदत्तं मानन्त्यायतिला-
 मधु अन्यच्च अनन्ताखड्गमांसेनलोहकागाच्च नूपरादिति । अत्र-
 कश्चिद्वाप्यक्तदाह । कागोत्सृष्टेषानिति पुंस्त्वमविवक्षितं उपादीय-
 मानत्वा त्पशुनायजेतेतिवत् सर्वासांपशुजातीनांमारणंभक्षण-
 न्तथा । विधानेतुनदोषस्यादन्यथामरकं व्रजेदिति । अन्येत्वाहुः
 पशुनायजेतेत्यत्रापि पुंस्त्वस्यैववक्षितत्वात् पुंस्त्वव्यक्तिरेव ध्यानस्वी-
 व्यक्तिरिति । अत्रानूचानाः प्रमाणम् ॥

मू० क्रीतालब्ध्वावाऽस्वयम्भृतानाहृत्यपचेत् ७

वाशब्दः पशुवन्त्वाभावे अस्वयंभृतग्रहणम् । निषिद्धेवर्जनोप-
 लक्षणं तेन पश्वभावेविहित मृगपक्षादिमांसानि क्रय लाभाभ्या-
 माहृत्यपचेन्न निषिद्धमित्यर्थः । विनामांसेनयच्छादं कृतमप्यकृतं भ-
 वेदिति । श्राद्धवैकल्यापत्तेः पद्मपुराणे विनामांसेनयच्छादन्तन्न
 तृप्तिकरमवेत् । क्रय्यादाः पितरोयस्मात्तस्मातेनैव तान्यजिदिति
 अत्रैकश्रकारविश्लेषम बुध्वास्वयंभृतानपिपचेदित्याहुः । तदयुक्तं

तेषां निषिद्धत्वात् तथा स्मृतिः उक्किष्टस्य वृतादानं मृतमांसस्य भक्षण-
म् अगुल्यादंतकाष्ठचतुर्ल्यंगोमांसभक्षणैः तथा शणशाकम्भृत-
मांसङ्करेण मयितं दधिअगुल्यादन्तघर्षचतुर्ल्यङ्गोमांसभक्षणै रिति
महाभारतेऽपि विषकृद्ग्रहतच्चैव व्याधितिर्यग्घतन्तथा न प्रशंसन्ति
वैश्राड्ये यच्च शस्त्रविवाजितम् विषकृद्धारण्येपतितपलादौ विषप्रक्षेप-
स्तेन हतं तिर्यग्घतं संहति रित्तृकादिहतं तयोरभ्यनुज्ञानात् ।
तथा च सिंहव्याघ्रहतं च यत् इति प्रशस्तमिति शेषः अथवा श्राद्धे त-
स्यापि निषेधो विधिर्नित्यभोजनविषयः एकमूलकत्वात् शस्त्रविव-
र्जितं स्वयं मृतं अनुपाकृतमांसानि सौनं वल्लूरमेव च स्मृतिलोकनि-
षिद्धांश्च मृगमीनाण्डजानपि सौनं हिंसास्थानभवम् । अनुपाकृतं सं-
स्कारहो नम् वल्लूरं शुष्कं वर्जयेदिति । पृष्टमांसं वृथामांसं वर्ज्यमांसं
सच्च पुत्रक । न भक्षयन्ति सततम्पुत्रक्षलवणानि चेति । मार्कण्डेयः ।
पृष्टमांसं स्मरद्वतिप्रसिद्धं तथा च बामनपुराणे पृष्टमांसां शिनोमूढा
स्तथैव क्रौञ्चजीवनः क्षिप्यन्ते वृषभक्ष्ये ते न रकेरजनीचरोत्त शेषम-
न्यतोक्षेयम् ननु बाफलमूलैरौषधीभिर्वेत्य हिंसाधर्मेण हृदि मुक्त्वा-
नन्तरं कागोस्तृमेषानालभ्येति हिंसाविधायेदानीं क्रयलाभौ भू-
यता वा शब्देन हिंसानिषिद्धेति । तथा च कन्दमूलफलाभावे मांसा-
न्याहुर्मनीषिणः पुण्यानि मुनिगीतानि लब्धानि च बध्मिनेति । च-
तुर्विंशतिमते महाभारतेऽपि क्रीत्वा स्वयम्वाप्युत्पाद्यपरोपहतमेव वा ।
देवान्पितृन् चर्चयित्वा खादन्मांसं नन्दुष्यति एष उक्तो विधिर्ब्राह्मणः ।
सर्वकामफलप्रद इति तस्माद्वा शब्देन हिंसानिषिध्य क्रयलाभावेव
सूत्रकाराभिमतमिति । अत्रोच्यते यदुक्तं । हिंसानन्तरं क्रयला-
भौ सूत्रयता हिंसानिषिद्धेति । तन्न पशुबन्धासम्भवे क्रयलाभयोरनु-
क्तत्वात् तथा च स्कन्दसम्वादे । मांसाभावे कृतेश्राद्धे ध्यायन्ते पितृ-

देवताः करिष्यतिसुतोलाश्चाश्वं पञ्चाक्षमामिषं । ददातिल-
 व्यामांसन्नतंशपन्तिरुषामुहुरिति मांसाभावेपश्वसंभवे । यत्त्वभि-
 हितं कन्दमूलफलाभावइत्यनेन हिंसा निषिद्धेति तदप्युक्तं ।
 कन्दमूलफलाद्यभावेवधंविनेत्यहिंसाधर्मेण प्रतिपादकत्वाद्वाहिंसा-
 निषिद्धेति । यच्चाभ्यधायिक्रीत्वास्वयंवाप्युष्माद्येत्यादिनाब्राह्म-
 विधिरिति तदपिमन्दमिति तस्याप्यमांसमुग्दाक्षिणात्यपरत्वेन-
 तद्देशविषयत्वात् दृश्यतेच देशविषयात्याचारः तथाच बृहस्पतिः ।
 उदुह्यतेदाक्षिणात्यैर्मातुलस्यसुताद्वैजैः । मध्यदेशेचर्मकाराः शि-
 ल्पिनः खगवासिनः मत्स्यादाश्चनराः सर्वेगस्थान्तरांरजस्वलाः ।
 पर्वतेमद्यपानार्योनैतेदण्डस्यचार्हकाइत्यादि पठन्तिच पृथिव्या-
 स्त्रिषुभागेषुमांसमक्षण माचरेत् यत्तु बृहत्पचेतोवचनम् । नदे-
 शानानविप्राणानयुगानां द्विजोत्तमाः । धर्म शास्त्रेषुवैभेदोदृश्य-
 मांसमक्षणइति । तद्दक्षिणव्यतिरिक्तदेशविषयमित्यविरोधः किञ्च-
 यद्येवन्नामभविष्यतह्यग्नीषोमीयम्पशुमालभते ह्यगोस्त्रमेषानाल-
 स्येत्यादिविहितहिंसाप्रतिपादकानिवाक्यान्यनर्थकान्यभविष्यन्निति
 तस्मात्पशुवधासंभवेक्रीत्वाल्लभ्यते सूक्तमितिसिद्धं । इदानीं
 मृगोरभ्रकिरिक्कागपर्षतेणपतविणाम् । मांसंविशाणशशयोरु-
 श्चक्रमतः सुरान् धिनोतिचपितृंश्चैवमांसान्पायसमेवचेत्यादिव-
 चनविहितांष्टमिमुपक्रमते ॥

मू० मासद्वयन्तुमत्स्यैः ॥ ८ ॥

मत्स्याः पाडीनादयोविहिता ननिषिद्धाः तैर्द्विमासंष्टमिरित्यर्थः । त-
 थाचमनु । द्वौमासौमत्स्यमांसेनेति तुशब्दोविशेषणार्थः तेनमत्स्य-
 विशेषकालविशेषइत्यर्थः तथाचापस्तम्बः शतवलेर्मत्स्यस्यमांसेना-

अथातृप्तिरिति यत्तु न तस्यैव तुरो मासानिति पैठीनसि वचनन्त-
 शब्दविषयम् । तथा च यमः । शशत्काश्च तुरो मासानिति । प्रीण-
 यन्तीति शेषः । ननु च मत्स्यांश्च कामतो जग्ध्वासोपकासस्त्राहं वसे-
 दिति प्रायश्चित्तस्योक्तत्वात् कथमेवमिति उच्यते तस्य नित्यभोज-
 नविषयत्वाद्देवपितृनिवेदनविषयत्वाच्च तथा चागस्त्यः । ऋतेयो-
 हव्यकव्याभ्यां मत्स्यमांसं समश्नुते लभते पातकमसौ सर्वमांसाशिनो-
 नृणाम् । काण्वोपि । कालशकञ्च मत्स्यांश्च परमान्तिलोदनं ।
 अनिवेदनमुञ्जीतपितृणां देवतैः सहेति एवं तर्ह्येकतः सर्वमांसा-
 नि मत्स्यमांसानिवैकतः एकतः सर्वपापानि ब्रह्महत्यातथैकतः ।
 तथा मत्स्यादः सर्वमांसादः इत्यादिवचनवृद्धिर्निरर्थकमिति मैवं-
 वोचः कार्तिकादिकालविशेषविषयत्वेन सामर्थ्यकत्वाद्दिनादि-
 देशे निषेधकत्वाच्च । तथा च नारदीये न मात्स्यं च येन मांसं न कौर्म-
 न्नान्यदेव हीति कार्तिकादिवैष्णवकाल इति शेषः । मत्स्यादाश्च नराः
 सर्ववृत्ति मध्यदेशे वृहस्पतिनोक्तं । किञ्च एकतद्व्यर्थान्तरम् । स-
 र्वमांसानि भक्ष्यामांसाः येकत्वतया भक्ष्यमत्स्यमांसानि चैकत्र तथा
 पापानि सर्वेयज्ञाः एकत्वहत्याब्रह्मज्ञानं चैकत्वेति पापायज्ञादिक-
 कर्मैति शब्दरत्नावली हत्यास्याङ्गमनेज्ञान इति चन्द्रगोमी एकत्वश-
 शादि सर्वमांसान्येकत्वमत्स्या एकत्वसर्वेयज्ञा एकत्वब्रह्मज्ञानमेकत्वसु-
 खायांसमानमित्यर्थः । तथा च प्रचेताः याज्ञवल्किः पितृणां स्यादजवा-
 धी नसादिभिः साभवेन मत्स्यमांसेन दत्तं न श्राद्धकर्मण्येति तस्माच्छ-
 वे मत्स्यैः पितृन्सन्तर्प्य स्वयमपि भुञ्जीतेति निरवदम् । तथा च ब्रह्म-
 पुराणम् हव्यकव्यार्थतो विप्रान्भोजयित्वा विधानतः वैसारिणां-
 स्तु भुञ्जानो न लियेते न साद्विज इति । मत्स्यानाहयाच्च वल्क्यः राजी-
 वान् राजतुण्डांश्च स शल्कांश्चैव सर्वशः शङ्खोपि राजीवान् सिंहतु-

गडांश्च सशल्कांश्चविशेषतः । पाठीनरोहितौ भक्ष्यातेमत्स्येष्वतिपा-
 वनादिति । राजीवाःपद्मवर्णाः सिंहतुण्डासिंहमुखाः सशल्काःश-
 क्त्याकारावयवयुक्ताः जातूकण्योपि शशश्चमत्स्येष्वपिहि सिंहतुण्ड-
 क रोहिताः । क्षुद्रमत्स्येषुक्लेङ्कोतिमेध्यो रोहितवन्मतइति निषि-
 द्धमत्स्यानाहसएव । गोमत्स्योगुच्छमत्स्यश्च चर्मकाराह्वयस्तथा
 नेलेद्विजातिभिर्भक्ष्यास्तथा चिलिचिमाभिधः । शृङ्गीन्नेकेचिदि-
 च्छन्तिप्रशस्तोन्हयकव्ययोः अयं विकल्पोनित्यभोजने व्यवस्थितः ।
 प्राघुणकादौ तथा मत्स्यश्चिलिचिमो नाम नभक्ष्योहिद्विजन्मनां
 चिलिचिमः मितगौरोनरवाजसदृशः ससुद्रजद्वत्यायुर्वेदः । ना-
 न्यावर्तालिमत्स्यइल्लिसद्वगं विकण्टकग्राहिप्रभृतयः क्षुद्रमत्स्य-
 श्चस्मृत्यन्तरेतावदेवावगन्तव्याः ॥

मू० मासत्तृयन्तुहारिणेन ॥ ६ ॥

हरिणस्ताम्रमृगस्तन्मांसेन त्रिमासन्तृप्तिरित्यर्थः । एषः कृ-
 ष्णमृगः प्रोक्तस्ताम्रोहरिणउच्यतेइति सुश्रुतत्वात् । कृष्णसारे-
 णाधिकतप्तेः तथोचोशनाः चतुरोमासान्कृष्णसारिणेति । यत्त्वष्टा-
 वैणेयेणेतिपैठीनसिनोक्तम् अष्टावैणेयमांसेनेतिच मनुनातत्तूपर
 कृष्णसारविषयेभवतुमर्हति । तूपरस्यविशिष्टोक्तेः अन्यथोशनसा-
 विरोधात् । तथाचोक्तम् स्मृतिद्वैधेतुविषयः कल्पनीयः पृथक्पृथ-
 गिति । तुशब्दोविशेषार्थः तेनमृगविशेषेकालविशेषइत्यर्थः । तथा-
 चमार्कगडेयः करोतितृप्तिन्नववैरुरो मांसंनसंशयः । रुरुःशम्बरः
 शरदिगलितशृङ्गद्वत्यायुर्वेदः । मनुरपि रौरवेणनवैवतु यत्तु रुरुः
 प्रीणातिपञ्चवैइति यमोक्तंयच्चपञ्चरौरवेणेति । गोभिलसूत्रम्
 तद्वज्रशाखंशृङ्गरुविषयं यत्पुनर्देवलेनोक्तम् । त्रीन्मासान्कुरुभि

मृगैरितितद्वरिणसदृशरुविषयम् । नचयथागृह्यविषयोविकल्पः
 शक्यतेऽर्तुं गृह्याणामनेकत्वात्तद्विषयानुपलब्धः । तस्याज्जीववि-
 षयोविकल्पोभवतुमर्हति । मार्कण्डेयः पुष्पातिचतुरोमासाञ्छश-
 स्य पिशितंपितृनिनि यत्तुदेवलेनोक्तम् शशैःप्रणमासिकीतृप्तिरिति
 शशःप्रोणातिप्रणमासानितिचयमेनतद्वृहच्छशविषयमिति अवि-
 रोधः अन्यथाविरोधाद्धर्मवाधापत्तेः । तथाचव्यासः धर्मयोवाधतेध-
 र्मो न स धर्मः कदाचन । अविरोधात्तुयोधर्मः स धर्मः सङ्गिरुच्यते ।
 तस्याविरोधे धर्मस्य निश्चित्यगुरुत्वाधवं । तयोर्भूयंस्तरं विद्वाः कुर्या
 धर्मविनिर्णयं तत्वेविप्रतिपन्नानां वाक्यानामितरेतरं । विरोधप-
 रिहारोवनिर्णयस्तत्त्वदर्शिन इति । नचश्वापदजातेरनेकत्वादेवं
 नघटतइतिवाच्यम् । तथाबामनः कदलीकन्दलीचीनश्चमूसूप्रि-
 यकावपि समुत्सृजेति हरिणा अभी अजातयोनयः । कृष्णसारसु
 न्यंकुरं कुशम्बररोहिणाः गोकर्णपृषतैणस्य रोहिताश्चमरोमृगाः
 गन्धर्वः शरतो गामशृंगयो गवयः शशा इत्यादयो मृगेन्द्राद्या इति ।
 एवमन्यत्रापि ॥

मू० चतुरऽश्रौरभ्रेण ॥ १० ॥

पितृणान्तृप्तिरित्यर्थः । तथाचमनुः अरसणोश्चतुर इति
 उरभ्रश्चारण्येमेपः नवमेपमांसेनेति ग्राम्यस्यवक्ष्यमाणत्वात् ।
 अन्वेत्वाहुर्मेष एवेति । तदयुक्तम् श्रुतिविहितत्वात्पौनरुक्त्यदोषाच्च
 तथाचश्रुतिः । वरुणावारण्येमेप इति यत्तु मेषेणषड्मासानिति
 पैठीनसिनोक्तम् । तदारण्यरूपविषयं अत्रैतत्सन्दिह्यते किंगवय-
 मांसंभक्ष्यमभक्ष्यञ्चेति तत्रैक आहुः विहितत्वाद्ब्रक्ष्यमिति तथा-
 यमः । गावयंरुद्रसन्नितात् एकादशमासांस्तृप्यन्तीतिशेषः मार्क-

ण्डेयोपि गवयस्यतुमांसेनतृप्तिः स्याद्दश मांसिकीति तदुक्तम्
 श्रुतिविरुद्धत्वात् तथाचश्रुतिः । सयंपुरुषमालभन्तस किंपुरुषोभव
 त्यावश्वंगाञ्चतौगौरश्वा गवयश्वाभवनांयम विमालभन्तसउष्ट्रो-
 भवश्मजमालभन्त सशरभो भवत्तस्मादेतेषां पशूनां नाशितव्यम-
 पक्रान्तमेधाहैतेपशवइति । श्रुतिस्मृतिविरोधे तु श्रुतिरेववलीयसी-
 तिश्रुतेर्वलवत्तत्राच्च । नचश्रुतिविरुद्धस्मृतिरादरणीया तथाचचतु-
 विंशतिमतं स्मृतिर्वेदविरोधेन परित्याज्यायथाभवेत् । तथैवलो-
 किकंशक्यं स्मृतिवाधापरित्यजेदिति आइविषयत्वेन गवयस्यवि-
 धिरित्यन्ये । अत्रानूचानाः प्रमाणम् ॥

मू० पञ्चशाकुनेन ॥ ११ ॥

शाकुनिर्भक्ष्यपक्षीतन्मांसेनेत्यर्थः । तथाचमनुः शकुनेनाथप-
 चैवइति । यत्तु शाकुनैश्चतुरोमासानिति देवलेनोक्तम् यच्चचतुरः
 शाकुनेनेतिचगोभिलेन तद्विहितप्रतिषिद्धहारीतादि पक्षिविषयं
 यच्चशकुनेनसप्तेति पैठीनसिनोक्तम् तदतिप्रविवेकपिञ्जलादि
 पक्षिविषयं सोमपानोद्भवत्वेन पात्रिच्यात् । तथाचश्रुतिः सयत्सो-
 मपानमासततः कपिंजलः समभवदिति । जरत्कारुरपि गौरः क-
 पिंजलोमेध्यः कृकषालाचवर्हिणइति । वर्हिनीलकण्ठः सुमेधाः
 किञ्चिन्नोहितवर्णोति दीर्घपुच्छोगुरुतरः । ऋक्षत्रोटिसुयः पक्षीस-
 महोक्षेतिपावनइति त्रोटिशचंचुः भक्षगानाह शङ्खः तित्तिरञ्च-
 मयूरञ्चलावकञ्चकपिंजलम् वार्धीनसंवर्त्तकंचभक्षगानाहयमः
 सदा सदेतिआइदेरन्यत्रापि जावालः भक्षगः कपिंजलोनीलत्वा-
 टीवन्यपदायुधाः भक्षगाविति नीलः कृष्णतित्तिरिः कपिंजलगौ-
 रः वन्यपदायुधोवन्यवृकुटः वनेजलेभवो जलकुर्कुटइत्यन्ये तन्न

कलविङ्गलवंहंसमितिमनुना प्लवशब्देनतस्यनिषिद्धत्वात् च-
क्रवाकंप्लवङ्गोक्तमितिशङ्कनिषेधाच्च भारद्वाज्यामांसेनेतिकात्या-
यनोक्तेर्भरद्वाजोभक्ष्यः यत्तु नखादेत्तुभरद्वाजमिति सुमन्तुनेक्तम् त-
त्रभरद्वाजोन्यहङ्कुविषयः कौजिडिषादितिप्रसिद्धः तथोचनिघण्टुः
वटोवटकद्वयुक्तोभरद्वाजोन्यहङ्कुटः वटङ्गोद्योदितोयस्तुखंजरी-
विनपुच्छकः इति सुमन्तुः भक्ष्यास्तुनौकण्टः स्याद्वरीतोलावति-
त्तिरी हारीतोविहितप्रतिषिद्धः । कुकुटहारीतभक्षणेद्वादश-
रात्रमनाहारइतिशङ्कप्रतिषेधात् अन्यत्स्मृतिव्योक्षेयम् वर्ज्याना-
हमनुःक्रव्यादः शकुनीन्सर्वांस्तथाग्रामनिवासिनः अनिर्द्दिष्टांश्चै-
कशफांतिट्टिभञ्ज विवर्जयेत् । कलविङ्गल्लवहंसंश्चक्राह्वंग्राम-
कुकुटम् सारसंरज्जुदालञ्चदात्यूहंशुकसारिका । प्रतुदाञ्ज-
लपादांश्चकोयटिनखविष्करान् निमज्जतश्चमत्स्यादान्सौलं-
लूरमेवच । वक्त्रं चैववलाकांश्चकाकोलङ्गञ्जरीटकम् । मत्स्या-
दान्विडूराहांश्चमत्स्यानैवचसर्वशङ्कति । क्रव्यादोगृध्रादयःग्रामवा-
सिनःपारावतादयः अनिर्द्दिष्टभक्ष्यत्वेनाज्ञातः एकशफाअ-
श्वादयःटिट्टिभोनिष्ठुरशब्दभाषीटिट्टिहीतिप्रसिद्धः कलविङ्गो-
गृहवचकः प्लवोजलकुकुटः चक्राह्वःचक्रवाकः रज्जुदालोवृक्षकु-
कुटः दात्यूहः कालकण्टः प्रतुदःश्येनःजालपादाजालाकारपादाः
कोयटिःशिखरी नखविष्किराश्चकोरादयः निमज्जन्तोमत्स्यादान्नि-
मज्ज्यमत्स्यादा काकोलोगिरिकारः मत्स्यादाचनिमज्जन्तोपि अ-
न्येप्रसिद्धः देवलः उल्लूककुररश्येनगृध्रकुकुटवायसाः चकोरःको-
किलोरज्जुदालकश्चकमज्जकौ पारावतकपोतौचनभस्याः पक्षिणे
स्मृताः । जरत्कारुः कारापिकांस्कपोतञ्चस्तोतकंरक्तगुण्डकम् स-
कृ प्रजंसारिकाञ्चकलविङ्गञ्चवर्जयेत् कारापिकाशकुनशास्त्रो-

क्ताः स्तोतकश्चातकः रक्ततुण्डःशुकः सकृत्प्रजःकाकः लोमशःगा
मकुकुटः । आतापीमांसानपिवर्जयेत् आतापीचिह्नःवेदनिधिः
काकारिपिङ्गलाक्रौञ्चः वकोटोटेह्वसारसौ कपभासौ भृङ्गराजश्चा
न्द्रज्जग्ध्वाव्रतश्चरेत् काकारितुल्लूकः पिङ्गलामुखमरद्वतिप्रसिद्धः
वकोटोवकः चापीनीलपक्षी स्वर्णपक्षीतिप्रसिद्धः जग्ध्वाप्राश्य-
चान्द्रञ्चान्द्रायणमित्यर्थः । शङ्खःहंसश्चक्रकङ्काकङ्काकोलङ्क-
ञ्जरीटकम् मत्स्यादाश्चतयामत्स्यान्वलाकांशुकसारिके । चक्रवा-
कश्चक्रकङ्कोकश्चक्रकङ्कश्चक्रकङ्कश्चक्रकङ्कश्चक्रकङ्कश्चक्रकङ्कश्चक्रकङ्क-
जयेत् मद्गुर्जलवायसः व्रतञ्चान्द्रायणम् मत्स्यव्यवस्थाप्रागुक्ता
निषिद्धमत्स्यावाञ्चनेत्यर्थः । धौम्यः पारावतरथांगञ्चमरालञ्चकु-
लिङ्ककम् जग्ध्वाहिकुक्कुरंग्राम्यं व्रतेनापिनशुध्यति रथांगञ्चक्र-
वाकः मरालोहंसः कुलिङ्कोव्रतेनचान्द्रायणेनेत्यर्थः अन्यत्स्मृति-
भ्याञ्चेयम् ।

मू० षट्छागेन ॥ ११ ॥

पितृणां हस्तिरित्यर्थः तथाचमनुः । षण्मासञ्छागमांसेनेतिष्ठा-
गोमहोक्षः वार्ध्नीनसादन्यः तद्विधेर्विशिष्टत्वात् । यत्तु । छागलं-
सप्तवैमासानिति मार्कण्डेये नोक्तम् तदारण्यजविषयम् तथा-
चश्रुतिः । सोमायकुलुङ्गश्चारण्योजइति । यच्चनचट्पयंत्यजेनत्वि-
तिदेवलेनोक्तम् तद्वार्ध्नीनसव्यतिरिक्तपक्षिविषयं यत्पुनर्द्वादशमा-
सांछागेनेति पैठोनसिनोक्तम् तत्तूपराजविषयम् तस्य्रातिपावन-
त्वात् तथाचसमहोक्षतिपावनइतिप्रागुक्तमित्यविरोधः ।

मू० सप्तकौर्मेण ॥ १२ ॥

कूर्मःकच्छपःस्तन्मांसेनेत्यर्थः तथाचदेवलः कूर्मैःस्यात्सप्तमासिकी

ति यमोपि कूर्मः प्रीणातिसप्ततिवति यत्तु शशकूर्मयोर्भासेनमासैरे-
कादशभिस्त्विति मनुनोक्तम् तद्बृहत्कूर्मविषयमारण्यविषयमेवेत्य-
विरोधः यत्तु नखादेत्कूर्मसूकराविति निषेधस्तद्विषयमग्रेवक्ष्यामः ।

मू० अष्टौवराहेण ॥ १३ ॥

वाराहआरण्यसूकरस्तन्मांसेनेत्यर्थः तथाच देवलः अष्टौमा-
सान्वराहेणेति यत्तु दशमासास्तु त्वन्तिवाराहमहिषामिषैरि-
ति मनुनोक्तम् । तन्मांसलवराहविषयं तस्य घृतसम्भूतत्वेनौचि-
त्यात् । तथाच श्रुतिः अग्नौ हवे देवा घृतं कुम्भमप्रवेशयांचक्रुस्ततो वरा-
हाः सम्बभूवुस्तस्माद्वराहमेदुरोष्टताद्विसम्भूत इति यत्तु प्रणमासा-
च्छूकरामिषमिबिमाकं गण्डयेनोक्तम् तदमांसलविषयम् भवितुमर्ह-
ति अथवा विरोधात् अत्रैकआहुः । नखादेत्कूर्मसूकराविति नि-
षेधाद्वराहकूर्ममांसन्नभक्ष्यामिति । तन्न । तस्यार्त्तिकदिवा-
वकालविषयत्वाच्छूतवराहविषयत्वाद्वा तथाच नारदीये । का-
र्त्तिके सूकरं मांसं यस्तु भुंक्तेति दुर्मतिः तद्भुक्तेर्जीयते पापो विष्टा-
शी प्रामसूकरः नमात्स्यं भक्षयेन्मांसन्नकौर्मनान्यदेव हि इति तद्भु-
क्तौ रौरवान्भुक्ता नेत्यनुवृत्तौ हारीतः पारावतपाण्डुसूकरसारि-
केति उपमन्युरपि ग्राम्यश्वेतवराहौ तु न भक्षौ द्विजपुङ्गवै रिति ।

मू० नवमेषमांसेन ॥ १४ ॥

मेषोग्राम्यभेदः तन्मांसेनेत्यर्थः । तथाच यमः मेषैः प्रीणातिवैन-
वेति यत्तु त्वयत्येकादशाविकैरिति देवलेनोक्तम् । यच्च तथैकादश-
मासं वा अरभ्य त्वत्तमिति च मार्कण्डेयेन तत्तू परविषयम् अच-
विकारप्रत्यये प्रकृते तत्परिहारेण पुनर्मांसग्रहणम् मांसविकारप्रा-
प्त्यर्थं तेन तद्विकारादधिकालान्तरसाधितादेया इत्यर्थः । तथा-

चस्कन्दसम्बादे अस्नेहाग्रपि गोधूमयवगोरसविक्रियाः तथा नांस-
विकाराश्चदधिक्षीरगुडस्यचेति । भक्षयेदितिशेषः ।

मू० दशमाहिषेण ॥ १५ ॥

दृष्टिरित्यर्थः तथाचदेवलः । दशमाहिषमांसेनेति । यत्वे-
कादशमासान्माहिषेणेतिपैठीनसिनोक्तान्तदारण्यविषयंतुपरविष-
यं त्रामहिषभक्षणञ्च देशविशेषेव्यवस्थितम् तथाचयमः । कासरो-
हिगिरौमेध्याद्विति आहप्रजापतिरिति कासरोमहिषः । ननुचअ-
भक्ष्याः पशुजातीनाङ्गोखरोष्ट्राः सकुञ्जराः सिंहव्याघ्राक्षरभाः ।
सर्पाजगरकास्तथा शशमूषकसार्जोरनकुलग्रास्यसूकराः सुगा-
लवृषभद्वीपिगोलांगलमर्कटाद्विति तथा वार्दमौर्दञ्चनारञ्चहारङ्गा-
रंचरासभं । कौंगलौमशिकमांसं जगध्वाभवतिविट्कमिः । वेशरो-
ध्रुगजवाश्ववृषभान्करिमाचले रासभम्प्राश्यचभवेद्विट्कमिर्वाभवे
भवद्वितिदेवलव्याघ्रपादवृद्धदेवलादिवचनैरभक्ष्यमध्येमहिषानुक्तेः
सार्वत्रिकमाहिषभक्षणद्विन्नस्यादितिचेत् मैवंभाषीः गिरिमन्तरे-
णतद्भक्ष्यमहादोषाप्रप्तेः । तथाचभारद्वाजः । शशमूषकसर्पास्तुसै-
रभंचगिरिंविना । जगध्वादिजानशुध्यन्तिप्रायश्चित्तशतैरिति ।
तस्माद्देशविशेषएवतद्भक्षणं व्यवस्थितमिति सूक्तम् वार्दंवार्षभंउ-
र्दोजलपशुस्तस्य । जलमानुषद्वत्येके । नरस्मादुषमं हारंहरिश-
ब्दवाच्यानांसिंहाश्वकयहिमेकादीनां कारङ्कारिणां कौगोवन्धः
श्वातस्य लोमशिकालोखरीतिप्रसिद्धा । तस्य लोमकम् विट्कमि-
विडाकमिः । द्वीपीव्याघ्रविशेषः गोलांगुलोवानरविशेषः मर्क-
टहृगणशवादिपञ्चनखोपलक्षणम् ।

मू० एकादशपार्षतेन ॥ १६ ॥

पृषतश्चित्तमृगस्तन्मांसेनेत्यर्थः । तथाचगोभिलः एकादशपार्ष-

तेनेति । तत्रैतद्वक्तव्यम् पृषतशब्देन किञ्चित्त्वगुणोवाच्यः किंवाचित्त्व
मृगजातिरिति तत्र यदि चित्त्वगुणोवाच्यः स्यात्तर्हि रुरुणादीनामपि
पृषतः गुणे एकादशमासतृप्तिहेतुः स्यात् । ततश्च विहिताः सर्वेपि
पृषताः सन्ताः एकादशमास तृप्तिहेतव इत्यर्थः स्यात् । अथ पृषत-
शब्देन चित्त्वमृगजातिर्वाच्यं स्यात्तर्हि तज्जातेर्देववशात्कथञ्चिदपृ-
षतत्वे एकादशमासतृप्तिहेतुत्वं न स्यात् प्रत्युत विहितजातेः परि-
त्यागश्चेत्यर्थः स्यात् । तस्मात्पृषतशब्दस्य कथञ्चित्तिरित्याक्षेपः इतुग्य
ते व्याख्याततो विशेषः प्रतिपत्तिरितिन्यायेन व्याख्यातचित्त्वमृगसंज्ञै
वैतरस्यावर्त्तकत्वाच्चित्त्वमृगस्यैव तावन्मासतृप्तिहेतुनान्यसेति
एवं सति पृषतशब्दस्या न्वेषणाच्छागादिवाचकत्वाभावात्पृषतत्वे
सत्यपि न तस्यान्वययुक्तः तस्माच्चित्त्वमृगेणैव तावन्मासतृप्तिरिति
सिद्धम् । ततश्च पञ्चतृप्यन्तिपार्षतेः पार्षतेणेह सप्तवै नवमासान्पार्ष-
तेन एकादशपार्षतेनेति देवलमनुपैठीनसि कात्यायनवचनानां
विषयानुपलब्धेर्विकल्पाएव शक्यन्ते वक्तुं न विषयाः । अथ वा सर्वमृ-
गजातिषु पृषतत्वं विशेषस्तेनैकादशेति सर्वेभ्यस्तृप्तिराधिक्यमित्यर्थः
ततश्चैवं विषयः । पञ्चतृप्यन्तिपार्षतेरिति देवलवचनं हरिणसादृश्य
चित्त्वमृगविषयं पार्षतेणेह सप्तवा इति मनुनोक्तं वङ्गशाख शृङ्गचिच
रुरुविषयं । नवमासान्पार्षतेनेति पैठीनसिनोक्तं वरचित्त्वमृगविषयं
एकादशपार्षतेनेति चित्त्वमृगविषयमित्यविरोधः अयमाशयः । या-
न्मासान् रुरुभिर्मृगैरिति त्रिमासतृप्तिविषयस्य रुरोः पृषतत्वेन पञ्च-
तृप्यन्तिपार्षतेरिति तृप्तिविशेषः रुरोः प्रीणातिपञ्चकैरिति पञ्च-
मासतृप्तिविषयस्य तु रुरोः पृषतत्वेन एकादशपार्षतेनेह सप्तवै इति
तृप्तिविशेषः । रौरवेण न वैवात्विति नवमासतृप्तिविषयत्वेन एका-
दशपार्षतेनेति तृप्तिविशेषः । सर्वपृषतानां तूपरत्वे सति अनन्ता-

तृप्तिरिति । अनन्ताखड्गमांसेन लोहकागाच्चतूपरादिति वच-
चनादेवंविषयविभागा हरिणमेषवाराहमहिषशशानाम् षष्ठतत्वा-
संभवात् एवङ्कल्पनागौरवमध्यविरुद्धं । प्रमाणकल्पनेदोषाभावात्
तथाचाङ्गिराः । प्रमाणानिप्रमाणद्वैः परिकल्प्यानियत्नतः सीद-
न्तिहिप्रमाणानि प्रमाणैरव्यवस्थितैः भक्षोपि । प्रमाणवन्तिक-
ल्पानि सामान्यानिवहन्त्यपि अदृष्टशतभागोपि नकल्प्योनिः-
प्रमाणकइति ॥

मू० सम्वत्सरन्तुगव्येनपयसा ॥ १७ ॥

गव्यग्रहणमितरव्युदासार्थं । तुशब्दोविशेषः इतरपयोनिषेधे
प्यारण्यमहिषीक्षीरं प्रशस्तमिति विशेषेत्यर्थः । तथाचब्रह्मपुराणम्
आरण्यमहिषीक्षीरं शर्कराशुंठिसंयुतं । मधुयुक्तान्तुहितं दद्या-
दमृतमेवच तदिति निषिद्धमाहयाज्ञवल्क्यः । सन्धिन्यनिर्द्दशाव-
त्सागोपयः परिवर्जयेत् । औष्ट्रमैकशफंस्त्रैणमारण्यक मथाविकं
सन्धिनौष्टपाक्रान्ताकामुक्ती अनिर्द्दशाऽअनतिक्रान्तदशाहा अव-
त्सावत्सरहितान्यवत्साच । स्त्रैणंस्त्रीभवं द्विस्तन्युपलक्षणमेतत् यच्च
सर्वासांस्तिनीनां क्षीरमभोज्यमजावर्जमिति शंखेनाजाक्षीरस्य
भक्ष्यत्वमुक्तम् तच्छाङ्गेतरविषयं । कृष्णाजाऽज्यतसीतैलं पयश्चा-
जाविकादिकम् । महिषज्जामरक्षीरं जलमल्पजलाशयादिति ।
स्कन्दसंवादोक्तत्वात् वर्ज्यमितिशेषः । महिषं ग्रास्यं आरण्या-
नाञ्च सर्वेषां मृगाणांमहिषींविनेतिमनूक्तेः । गौतमोपि यमसू स्य-
न्दिनीनाञ्चेति पयोवर्जमितिशेषः । यमसूर्युग्मप्रसूः स्यन्दिनीस्त्र-
वत्य यस्तक्षीरमपेयं विवत्साया अन्यवत्सायाश्चेति बौधायनः ॥

मू० पायसेनवा ॥ १८ ॥

पयसाशृतंपायसं पयोविकारश्च तेनवासंवत्सरंतृप्तिरित्यर्थः ।

तथाचविष्णुः संवत्सरन्तुप्रयसा तद्विकारेणवेति । अपिचमार्कण्डेयः
संवत्सरन्तथागव्यम् प्रयःपायसमेववेति । आदित्यपुराणे विविध-
पायसन्दद्यादिति तथामांसविकाराश्च दधिक्षीरगुडस्येतिवचनात्
पयोविकाराः कूर्चिकाक्षीरवटकादयः ॥

मू० वाध्रीनसमांसेनद्वादशवर्षाणि ॥ १६ ॥

तृप्तिरितिशेषः वाध्रीनसस्तिविधः तथाचविष्णुधर्मोत्तरे ।
विपिवन्त्विन्द्रियक्षीणम् यूयस्याग्रहणन्तथा । रक्तवर्णानुराजेन्द्र
क्वागम्बाद्ध्रीनसंविदुरिति मुखकर्णौजलपानेपतन्तौ जलन्विपिव-
द्रत्यर्थः । विपिवन्त्विन्द्रियक्षीणम् श्वेतं हृदयमजापतिम् । वाध्रीन
सन्तुतंप्राहु र्याज्ञिकाःपितृकर्मणीत्यन्यत्र निगमोपि । कृष्णग्रीवो
रक्तशिराः श्वेतपक्षीविहंगमः सवैवाध्रीनसःप्रोक्त इत्येषानैगमीशु-
तिरिति । अत्रानूवानाःप्रमाणं रक्तवर्णोवाध्रीनसो ऽक्षयतृप्ति
विषयोवेत्यविरोधः वाध्रीनसंमहाशल्को लोहाजस्तूपरोक्षतं । अ-
नन्त्यायभवेद्वद्वेति वचनात् । लोहामिषङ्कालशाकं मांसंवाध्री-
नसस्यवेति याज्ञवल्क्यवचनाच्च । वाध्रीनसशब्देणत्वोच्चारणमना
लोचितं । उद्गोष्ठणीवान्वाध्रीनसस्तेमत्या अरण्यायस्मरोरुहुरौद्रः
इतिश्रुतेस्तवर्गीयपाठात् । आद्विशिष्टस्यामांसस्यावश्य भक्षणत्वम-
वगन्तव्यम् । तथाचविश्वामित्रः धर्मशास्त्रात्तुविज्ञाय भक्ष्यञ्चाभक्ष्य-
मेववा प्रदायपितृदेवेभ्यो भुञ्जीतातिथिपूर्वकमिति । अत्ररागप्राप्ते
भोजनेभुञ्जीतेतिनियमार्थः । तथाचोपमन्युः सृगजाविचमद्याणां
मांसंशाकादिमेध्यवदिति । पवित्रताभिधानादिति ॥

इति श्रीआदिकाशिकायां सूत्रवृत्तौ तृप्तिकरणसामान्यं समाप्तमिति ॥

सप्तमीकण्डिकाचसमाप्ता ॥

इत्थं ग्रास्यारण्यौषधिमूलफलै रनेकमत्स्यमांसैश्च तृप्तिमभिधाया-
ऽधुना क्षय्यतृप्तिं विवक्षुः सूत्रमारभते ।

मू० अथाक्षय्यतृप्तिः ॥ १ ॥

अथशब्दः प्रश्ने कात्स्न्ये वा अक्षय्यात् तृप्तिः कथं हि वाक्षय्यतृप्ति-
करन्द्रव्यमिति प्रश्नमित्यर्थः कात्स्न्ये नाक्षय्यतृप्तिरुच्यत इति वार्थः ।
अक्षय्योन्नतता तथाचमनुः कालशाकम् महाशल्कः खड्गो लोहा-
मिश्रं मधु । आनंत्यायैव कल्प्यन्ते मुन्यन्नानि च सर्वं शहति । प्रश्नोत्त-
रमाह ।

**मू० खड्गमांसं कालशाकं लोहच्छाग-
ञ्च मांसे ॥ २ ॥**

खड्गस्तूपरः खड्गमृगस्तन्मांसं निषिद्ध एण्यादिव्यतिरिक्तम् ।
तथाच विष्णुः कालशाकं महाशल्को मांसं वाघ्रिणसस्य च विष्णो-
वर्जाये खड्गानां सूयतां स्तुभन्नाह इति यत्तु खड्गमांसं नवयोदशमा-
सानिति प्रैठीनसि नोक्तं तत्सृङ्गविषयम् लोहः सर्वलोहितश्चागः
तथाच प्रैठीनसिः सर्वलोहश्चाग्नेना नं त्यमिति लोहितशब्देन वावयव-
वृत्तिः एवमादिद्रव्यमक्षय्यतृप्तिकरमिति पूर्वप्रश्नस्योत्तरमित्यर्थः ।
खड्गलोहितयोर्मध्ये कालशाकोक्तिस्तत्तु ल्यफलार्थः ।

मू० मधुमहाशल्कः ॥ ३ ॥

मधुमाक्षिकः महाशल्को मत्स्यभेदः महसेन इति मध्यदेशे प्रसिद्धः
महाशल्कामहाकालिनो मत्स्या इति यमस्मृतिः बृहन्निबल इति य-
स्य कृटिरिति हलायुधः टेकार्यादौ प्रसिद्ध इति कल्पतरुः कंवलाख्य इ-
ति कश्चित् शल्लको वेत्यन्ये एवमनेकविप्रतिपत्तौ पुलस्त्योक्ते एवाह-

सर्व्वः एकशतकोर्द्धचन्द्रश्चललाटेखड्गसंयुतः शुक्लवर्णस्तुमत्स्यो-
हिमहाशतकः स उच्यते इति अत्रैकआहुः । कलौश्राद्धे मधुनिषि-
द्धमिति । तथाचश्राद्धे मांसं न तथा मध्वितिलिखितस्माक् । तन्नवि-
चारसहम् निवन्धकृद्भिर्निर्मूलप्रतिपादनादित्युक्तम् । कलौविधाय-
कवचनोपलब्धे च तथाचपैठीनसिः परमान्नं कालशकम् मधुमांसं-
घृतम्पयः मुन्यन्नानितिलाविषाः प्रकृत्याहविरष्टधा । शस्तान्यष्टौ-
तु सर्वेषु युगेषु मुनिसत्तमाः पितृणां देवतानाञ्च दुर्लभानि कलौ युग-
इति । परमान्नम्पायसम् । देवलोपि दर्भास्तिलागजकायादौ हि त्रं
मधुसर्पिणी कुतपोनीलकण्ठश्च पवित्राणीह पैतृके इह कलौ तथा
तुलसीमधुदर्भाश्च तिलाः सर्पिर्मृगामिषं एतन्मेध्यतमन्नित्यंसदा-
चाराश्च ये द्विजा इति सुमेधा अपि विमांसं विमधुश्राद्धं विष्टतमप्रीति
भोजनम् विना समतरङ्गामो व्योमालिङ्गनवचयमिति ॥

मू० वर्षासुमघाश्राद्धम् ॥ ४ ॥

वर्षातो मघानक्षत्रे श्राद्धमक्षय्यतृप्तिकृदित्यर्थः एतच्चापि ण्ड-
कं ज्येष्ठपुत्रिणा कर्त्तव्यं तथाच देवीपुराणम् तत्रापि महती पूजा क-
र्त्तव्या पितृदेवते ऋक्षे पिण्डप्रदानन्तु ज्येष्ठपुत्रीविवर्जयेदिति तथा म-
घायां पिण्डदानेन ज्येष्ठः पुत्रो विनश्यतीति अत्रैकआहुः ज्येष्ठः आ-
द्यगर्भो द्वव इति । तदयुक्तम् । तद्वर्गतिरिक्तसर्गापि ज्येष्ठत्वात् तथा-
च शातातपः अनाद्यपुत्रोज्येष्ठोपि भ्राता पुत्रो निगद्यत इति अत-
श्च ज्येष्ठपुत्ररहितेन मघायां सर्पिण्डमेव कर्त्तव्यमिति गच्छते महा-
फलत्वात् एतच्च मघान्वितदिनान्तरेन त्रयोदश्यां मघायां पिण्ड-
दानेन ज्येष्ठपुत्रो विनश्यति कनीयांस्तु त्रयोदश्यां क्षयाद्वाभ्युदयादते
इत्युभययोगोपुलिमात्रस्य पिण्डनिषेधात् अत्र वा विभक्तभ्रातृणां पौत्र

स्यचपुत्राभावे महाफलत्वात्पृथग्पृथग्धिकारः । तथाचपैठीनसिः
 अत्रापिपितृगीतागाथा क्वागेनसर्वलोहेनवर्षासुच मघासुच पुत्रो-
 वायदिवापौत्रोयोनोदद्या त्रयोदशीमिति तथाविभक्तावाविभक्ता-
 वाकुर्युःश्राद्धमदैवतम् । मघासुचततोन्न्यवनाधिकारः पृथग्विना
 अदैवतक्षयाहैकोद्दिष्टं पृथपदमुभयत्रान्वैविभक्ताअविभक्तावादैवम-
 घासुचश्राद्धं पृथक्कुर्युः ततोन्न्यत्पृथग्विनानधिकारइत्यन्वयः अथ-
 वाततइतिसार्वविभक्तिस्तसिः । ततोविनादैवतंमघाश्राद्धञ्चविना-
 न्यत्पृथङ्नाधिकारइत्यन्वयः उभयान्वयेपिक्षयाहमघाश्राद्धयोरे-
 वविभक्ताविभक्तयोः पृथक्पृथग्धिकारोन्यत्वनकिंत्वविभक्ते नैवैकश्रा-
 द्धं कर्त्तव्यन्नपृथगित्यर्थः । तथाचप्रचेताः अर्वाक्संवत्सरात्सर्वंकुर्युः
 श्राद्धं समेत्यवे । संवत्सरेव्यतीतेतुकुर्युःश्राद्धं पृथक्पृथक् । पठन्ति-
 च । एकादश्यामघामशोजेष्टस्य विधिवत्क्रियां । कुर्युर्नैकैकशः
 श्राद्धमाद्धिकतुपृथक्पृथगिति किञ्च नवश्राद्धंसपिण्डत्वंश्राद्धा-
 न्यपिवषोडश । एकेनैवतुकार्याणिसविभक्तधनेष्वपि । अपिश-
 द्धादविभक्तेष्वितिपरिगणनात् यत्तुविभक्तास्तुपृथक्कुर्युःप्रतिसंव-
 त्सरादिकम् एकेनैवाविभक्तेषुकृतेसर्वेषुतत्कृतम् यच्चभातृणाम-
 विभक्तानामेकोधर्मप्रवर्तते विभागेसतिधर्मोपिभवेत्तेषांपृथक्पृ-
 थगितिवचनादविभक्तामयदेशादावेकमेव कुर्वन्तितदशक्तविषय-
 मित्यविरोधः । वर्षास्त्रितिचन्द्रमासाभिप्रायं ननुवर्षास्त्रित्यभिधा-
 नान्मासइयात्मकस्यत्वेकमासेमघाश्राद्धमितिसन्देहः । मैवं ।
 अपरपक्षे श्राद्धमितुरपक्रमादित्यदोषः अतश्चापरपक्षमघायामिति
 तथाचदृष्ट्याज्ञवल्लभः । यास्यंवापैतृकंवापिपितृपक्षेविशेषतः तत्र
 सङ्कल्पनंकुर्यात्पितृणांपुष्टिदःसदेति ।

मू० हस्तिच्छायायाञ्च ॥ ५ ॥

श्राद्धमक्षय्यकृदिति शेषः । साचावगजस्यैव छायापूर्वदिशिव-
र्त्तते सामुख्या । तथाच विश्वामित्रः परमान्नन्तुयोदयात्पितृणां-
मधुना सह छायायान्तु गजेन्द्रस्य पूर्वस्यान्दक्षिणामुख इति परि-
भाषिक्रीतु सागजस्य छायेव छायायस्याः सागजछायाव्युत्पत्त्या गौ-
णी । तथाच । नानावचनानि ब्राह्मणादिषु सैहिकेयो यदा सूर्य-
ङ्गसते पर्वसन्धिषु हस्तिछाया तु साप्रोक्ता तत्र श्राद्धं प्रकल्पयेत् । प्र-
चेताः हंसे हस्तस्थिते या तु मघायुक्ता त्रयोदशीति तिथिर्वैश्रावणीया-
तु सा छाया कुञ्जरस्य तु तथा हंसे हस्तस्थिते या सप्तादमावास्याकरा-
न्विता सा ज्ञेया कुञ्जरछाया इति बौधायनी स्मृतिः वायवीये वन-
स्पतिगते सोमे छायाया प्राङ्मुखी भवेत् गजछाया तु साप्रोक्तेति चका-
रो रक्तवार्ध्नी नसादिद्रव्यसमुच्चयार्थः तथाचापस्तं वः खड्गोपस्तर-
णेन खड्गमांसेनेवाऽनन्तकालांशतवलेर्मत्स्यस्य मांसेन वार्ध्नी नस-
स्य चेति खड्गोपस्तरणं खड्गासनं वार्ध्नी नसश्च रक्तः । तथाच-
मार्कण्डेयः । वार्ध्नी नसामिषं लोहं कालशाकन्तयामधु । अनन्ता-
ञ्च प्रयच्छन्ति तृप्तिं गौरमुतस्तथा । अष्टवर्षा विवाहिता गौरो तत्सुतो
गौरः । महाभारते । वर्धमानतिलं श्राद्धमक्षय्यं मनुरव्रवीत् सर्व-
कामैः स यजते यस्ति लैर्यजते पितॄन् न वा कामेन दातव्यं तिलश्राद्धं ।
कथञ्चनेति वर्धमानतिलं तिलवहुलम् स्कन्दसम्बादेऽपि काल-
शाकं महाशल्को लोहाजस्तूपरोष्ठतं आनंत्यायैव भवति तथा पैठीन-
रोहिताविति घृतं घृतवहुलं घृतेन भोजयेद्विप्रांश्च शृतम् भूमौ समुत्सृ-
जेदिति वायवीयवचनात् । भूमौ समुत्सृजेदिति । तथा पादम्पूरणी
यं यथा घृतम् विपततीति घृतवहुलमित्यर्थः एवमक्षय्यतृप्तिं कृत्-
द्रव्यमुक्त्वा तत्तृप्तिहेतून् पक्तिराव नानाह ॥

मू० मन्त्राध्यायिनःपूताः ॥ ६ ॥

पङ्क्तिपावना इति शेषः । मन्त्रशब्दः संहितावचन बहुवच-
नमेकद्वितययापेक्षं षट् वेदाद्यनेकसंहितापेक्षं वा मन्त्राध्यायि-
त्वमात्रै र्यैवकेवलमपङ्क्तिपावना एते पूता इति विशेषणं । तच्चौचित्या-
दुत्तरत्रापिसार्वत्रिकम् मनोवाक्यायकर्मभिः । शास्त्रोक्तवृत्तातिश-
येन निषिद्धवर्जनेन च बाह्याभ्यन्तः शुद्धियुक्ताः पूताः इत्युच्यन्ते ।
अथवा पूताः पञ्चविधाः । तथाच विष्णुः । तीर्थपूतो यज्ञपूतः पयः
पूतः सप्तपूतो मन्त्रपूत इति उच्यते ॥

मू० शाखाध्यायी ॥ ७ ॥

पूतः पङ्क्तिपावन इति शेषः शाखाशब्दे मन्त्रब्राह्मणात्मकवे-
दापेक्षः । अंगानां वक्ष्यमाणत्वात् । तथाच शङ्खः यजुषां पारगो-
यश्च ऋचां साम्नाञ्च पारगः अथर्वशिरसोध्येता ब्राह्मणाः पङ्क्तिपाव-
ना इति ।

मू० षडङ्गवित् ॥ ८ ॥

षडङ्गो वेदस्तु मर्थतः पाठतश्च यो वेत्ति स पूतस्तादृश इति शेषः अ-
नूचान इत्यर्थः । तथाच स्कन्दसंवादे अनूचानाः श्रोत्रियाश्च ब्राह्म-
णाः पङ्क्तिपावना इति शिक्षाकल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषां गतिः
कुन्दो विवितिरित्येतैः षडङ्गो वेद उच्यते । अत्र मन्त्राध्यायिनः प्रभृ-
त्येतावत्पर्यंतगुणाधिक्योपक्रमादुत्तरोत्तरं प्राशस्त्यं सूचितम् । अत्र-
कश्चिदाह षडङ्गानि तेषामेकं वापि यो वेत्ति स एवेति । तन्मोक्षितं ।
बहुव्रीह्युपलब्धेः । अनूचानोक्तिपरित्यागप्रसक्तेश्च । एवं वेदाध्यय-
नेन पङ्क्तिपावनत्वमुक्त्वा तदसंभवेऽप्याह ॥

मू० ज्येष्ठसामगः ॥ ९ ॥

ज्येष्ठसामगश्चोद्देधाविब्रक्षितः तथाहि ज्येष्ठसामसंज्ञकं साम-
वयंयोगायतिसतथा अथवा ज्येष्ठसामसंज्ञकं वृतं तद्योगकृत्याचरि-
तुञ्जानाति सज्येष्ठसामगः ज्ञानार्थस्यगमेर्द्धप्रत्ययः । ततश्च ज्येष्ठसा-
मत्रयंगायतायेनतद्वृतं चीर्णं सज्येष्ठसामगस्तावन्मात्रेणैव पावनद्वत्यर्थः

मू० गायत्रीसारमात्रोपि ॥ १० ॥

गायन्तन्वायतइति गायत्री ॥ सैवगायत्रीतांवेदसारत्वेनो-
पादायतञ्जपादिमात्रपरोगायत्रीसारमात्रः । तथाचविष्णुः । गा-
यत्रीजपनिरतइतिअथवागायाः प्राणास्तांस्त्रायतेगायत्रासैवगाय-
त्रीसारमात्रं सर्वमन्त्रभूतं यस्यनमन्त्रान्तरं सगायत्रीसारमात्रः ।
तथाचश्रुतिः । माहैषागया ७ स्तत्रप्राणो वैमयां स्तत्रास्मां स्तत्रत-
दाङ्गयां, स्तत्रै तस्मान्नायत्रीनामेति । मनुरपि । गायत्रीसारमात्रोपि-
वरंविप्रः सुयंक्षितः नोयंक्षितस्त्रिवेदे । पिसर्वाशीः सर्वविक्रयीति ।
गायत्रीव्रतचारीति कश्चित् अपिशब्दादन्ये पिशास्त्रोक्ताः तथाच-
यमः येसोमपाविरजसोधर्मज्ञाः शान्तबुद्धयः व्रतिनोनियमस्यासृष्ट-
तुकालाभिगामिनः अथर्वगिरसोध्येतासर्वेते पंक्तिपावनाइति ॥

मू० पञ्चाग्निः ॥ ११ ॥

पूतस्तादृशइतिशेषः सभ्यावसथ्यौवेताचयस्यस्युःसपंचाग्नि-
होत्री अथवा पञ्चाग्नयोमनुष्येणपरिचर्यःप्रयत्नतः । मातापिता-
चाग्निरात्मागुरुं श्वभरतर्पभेतिमहाभारतोक्तः पञ्चाग्निः पञ्चा-
ग्निर्व्रतचारीतिकश्चित् । उपनिषत् पठ्यमानपञ्चाग्निविद्याचे-
त्यन्यः पञ्चाग्निरैकान्तरूपलक्षणम् तथाचमनुः त्रिणाचिकेत-
एकाग्निरिति ।

मू० स्नातकः ॥ १२ ॥

व्याख्यातचरः इहपुनस्तद्गृहणञ्चांद्रायणादिव्रतचारिप्राप्त-
र्थम् । तथाचयमः । चांद्रायणादिव्रतचरः सत्यवादिपुराणवित् ।
निष्णातः सर्वविद्यासुशान्तोब्रिगतकलमपः । गुरुवेदाग्निपूजामुप-
सक्तोज्ञानतत्परः । विमुक्तः सर्वदाधीरोब्रह्मभूतोद्विजोत्तमः । अन-
मितोनचामितोमैत्रात्माविदेवच । स्नातकीजपनिरतः सदापुष्प-
बलिप्रियः ऋजुर्दुःक्षमादान्तः शान्तः सत्यव्रतः शुचिः विद्वज्जः सर्व-
शास्त्रज्ञः उपवासपरायणः । गृहस्थोब्रह्मचारीचतुर्वेदविदेवच
वेदविद्याव्रतस्नाताव्राह्मणाः पंक्तिपावनाइति ।

मू० त्रिणाचिकेतः ॥ १३ ॥

पंक्तिपावनइतिशेषः अवाहुः । तउग्रन्हवैवाजश्रवसः सर्ववेदस-
न्ददावित्यादावनुवाकेचश्रुतौ पठमानेत्रिणाचिकेतनाम्नोमुनिपु-
त्रस्यप्रश्नत्रयविषयउच्यतेइतिव्युत्पत्त्याचिनाचिकेतस्तत्पाठस्तदर्थी
भ्यांव्राह्मणोपित्रिनाचिकेतइति । त्रिश्चितोनाचिकेतोऽग्निर्येनसद्व-
त्यग्न्यः । तन्नोचितम् । त्रिणाचिकेतशब्दस्ययौगिकस्यपरिभाषिक-
स्यवाविवक्षितत्वात् । तथाहि कितज्ञानेधातुः व्रतातिशयेनतपो-
विशेषेणचक्षणवत्सर्वमाचिकेतिजानातीतिहणाचिकेतः तथाच
बृह्मपुराणम् । आचिकेतोतियोविश्वंतृणवत्सर्वनिस्पृहः हणाचि-
केतःसगृहीरागद्वेषविमत्सरइति पठन्तिच फलमूलदधिक्षीरगो-
मयांबुहताशनः त्रिणाचिकेतउक्तोसौयोज्ज्वलजतिनित्यशइति ।
अथवा अथर्ववेदभागस्तद्वृत्तौनियतोद्विजः त्रिणाचिकेतःसज्जो-
यस्तद्गोमातृपुरुषोपियद्विवृह्मपुराणोक्तोवा ।

(१) त्रिणाचिकेतोयजुर्वेदेकदेशस्तद्व्रतचरन्सइतिकर्कः ।

गदावरस्तु अथर्ववेदभागस्तद्व्रततदुभययोधोतेयश्चकरोतिसोपितद्योगात्रिणाचिकेतः ॥

मू० त्रिमधुः ॥ १४ ॥

तादृशइतिशेषः त्रिमधुः ऋग्वेदेकदेशस्तद्वृत्तञ्चतदाचरणेनत-
दध्यायीत्येको त्रिमधुरयर्ववेदवृत्तञ्चतद्वारोत्यन्ये । अपरेन्यथोचुः
वीणित्रीणिविशुद्धानिविद्यायोनिश्चक्रमंच ॥ पुरुषत्रयविख्याता-
स्त्रिमधुः परिकीर्तितइति ॥

मू० त्रिसुपर्णी ॥ १५ ॥

पङ्क्तिपावनइतिशेषः । त्रिसुपर्णमृग्यजुषयोरेकदेशस्तद्वृत्तञ्च
तदाचरणेनतद्वृत्ताध्यायीत्रिसुपर्णीत्येको तैत्तिरीयशाखापठितस्य-
ब्रह्मवेनुमात्यादिब्राह्मणास्त्रिसुपर्णी पठन्त्याआसहस्रात्पंक्तिपुनं-
तितैः सोमस्यानुवन्तितस्यानुवाकत्रयस्यार्थतो गृह्यतश्चाध्योतात्रिसु-
पर्णीइत्यन्यथोचुः पितरः सप्तपूर्वेचयज्वानोभूरिदक्षिणाः । यस्ये-
दृशोमातृवंशस्त्रिसुपर्णीतिसस्मृतइति ॥

मू० द्रोणपाठकः ॥ १६ ॥

पूतस्तादृशइतिशेषः । द्रोणशब्दोऽवयववृत्तिः । धर्मद्रोण-
इत्यर्थः । तथाचगोभिलसूत्रम् धर्मद्रोणपाठकइति धर्मद्रोणोधर्म-
शास्त्रं । तथाचस्कन्दसम्भादे । पुराणस्मृतिवेत्तारः कृतव्याकरण-
श्रमाः अनूचानाः श्रोत्रियाश्चब्राह्मणाः पंक्तिपावनाः यमोपि
मन्त्रब्राह्मणविच्चैवयश्चस्याधर्मपाठकइति ॥

मू० ब्राह्मोटापुत्रश्चेतिपंक्तिपावनाः ॥ १७ ॥

ब्राह्मविवाहेनोटा ब्राह्मोठास्तत्पुत्रः पूनः पंक्तिपावनइत्यर्थः
चकारोब्रह्मोटापत्यादिसमुच्चयार्थः तथाचशङ्खः । ब्रह्मदेयानुसं-
तानोब्रह्मदेयाप्रदायकः । ब्रह्मदेशोपतिश्चैवब्राह्मणाः पंक्तिपाव-
नाइति । ब्रह्मदेया ब्रह्मविवाहेनदत्तातदनुसन्तानस्तत्सन्ततिः ।

इतिशब्दश्राद्धयेनसमाप्तौइत्याद्यन्येपौत्वर्थः । तथाचमनुः । वेदा-
र्थवित्पवक्ताचब्रह्मचारीसहस्रदः शतायुश्चेतिविज्ञेयाब्राह्मणाः पं-
क्तिपावनाइत्यादि । ब्रह्मचार्यधीयानः जटिलम्बानधीयानमित्यन-
धीयानस्यतेनैवप्रतिषिद्धत्वात् । यमोपि । गृहस्थोब्रह्मचारीचचतु-
र्वेदविदेवचेति चतुर्वेदविदितिब्रह्मचारिविशेषणत्वात् सहस्रदोगवां
सुवर्णस्यवा स्कन्दसंवादोपि अग्न्याःसर्वेषुदेवेषुसर्वप्रवचनेषुच ।
दानवज्ञतपः सत्यतीर्थपूताः कुलान्विताः श्रोत्रियान्वयजाश्चैव-
विज्ञेयाःपंक्तिपावनाइति

मू० वागीश्वरोयाज्ञिकश्चपावनाः ॥ १८ ॥

उच्यतेसर्वमनयेतिवाक्योत्तरात् ईश्वरशब्दः समर्थव्याख्यातपरः
यज्ञवेत्तीतियाज्ञिकःकृतकृत्यादित्वाष्टक् पुनःपावनग्रहणमपंक्तिपा-
वनेष्वपिपावनत्वज्ञापनार्थं तथाचोक्तं यश्चव्याकुरुतेवाचंयश्चमी-
मांसतेध्वरम् । उभौतौपुण्यकर्माणौपंक्तिपावनपावनाविति चका-
रोन्यच्चसमुच्चयार्थः तथाचष्टहस्पतिः यदेकस्मिन्जयेच्छास्त्रंकुंदोगन्त-
वमोजयेत् ऋचोयजुंसामानिवितयन्तवविद्यते अष्टेत्तुष्टथिर्वीस-
र्वांसशैलवनकाननां यदिलभ्येतपितर्यसाम्नामक्षरचिन्तकम् ऋचा-
तुष्टयतिपितायजुषातुपितामहः । पितुःपितामहसाम्नाकुन्दोगेभ्यो
धिकोह्यतइति अक्षरचिन्तकः सामविभागज्ञः तथाचगोभिलः आ-
मन्वितेजपेदोहान्नि युक्तस्तृषभांजपेत् अतिषङ्गांश्च तत्रैवत्यक्त्वा
श्रीयात्समंततः भुक्त्वाचभ्यपदस्तोभांजपेत्तदसमाहितः गोसूक्तञ्चा-
श्वसूक्तञ्चवृद्धसूक्तञ्चसामनी तरत्समस्ययत्सामतच्चजहैकधीर्वुधः
गांत्रासौनः शुचौदेशेत्रामदेव्यन्ततो जपेत् एवंसामभिराकृन्तोभुं-
जानस्तुद्विजोत्तमः श्राद्धभोजनदोषैश्चमहद्भिर्नोपलिप्यते । अन्यथै

वहिभुञ्जानो हव्यकव्येषु मन्त्रवित् आत्मानमन्नदातृश्च गमयत्यासु
रौज्जतिमिति । आज्यदोहं विदो हव्यत्याद्या आज्यदोहाः सुरूपकानुसु
तयेपि वा सोममिन्द्रमन्दतुत्वा । स्वादोरित्याविविषूवत इति अश्वान्त-
र्गदितासूतपन्नानि सामानोत्पन्नानि सामानि ऋषभाः स्त्रियः पु-
राजितो वा न्वस इति । असर्जिवक्त्रारथ्येयघाजाविति अमीनवते अन्दु
ह इति अश्वान्तर्गदितासूतपन्नानि सामानि अनिषङ्गा चत्वारः घर्ता
दिवः पचते रथ्योत्तरस इत्यादि ऋगुत्पन्नानि सामानि पदस्तोमाः
गोमूक्तानि सर्वसामगप्रसिद्धानि । अश्वसूक्तं प्रसिद्धं यदिन्द्राहं ।
यदाथमस्वांगीति भेदेनेन्द्रशुद्धे सामानी । एतोन्विन्द्रंस्तवामेत्य-
सांसामद्वयंतरत्तमन्दौ धावतीत्येकम् । कथानश्चित्वाभुवेत्यादि
वामदेव्यम् । एवं सामभिराच्छन्नोरक्षितः । आह भोजनदोषैर्न लि-
प्यते मन्त्रविदित्यर्थः ।

मू० नियोज्याभावेऽप्येकं वेदविदमपि न
ईदं निनियुज्यात् ॥ १६ ॥

नियोज्याः पूर्वोक्ताः स्मृत्युक्ताश्च तेषामभावप्राप्तौ एकस्वेद-
विदविदं वेदार्थज्ञमेव मुख्यपंक्त्यादौ नियुज्यादुपवेशयेत् । तेनैवेतरपं-
क्त्युपविष्टा अमुक्याः पूता भवन्तीत्यर्थः । अथवा वेदविदं वेदपारगम् तल्ल-
क्षणञ्च उत्पत्तिप्रलयौ चैव भूतानामगतिङ्गतिम् वेत्ति विद्यामविद्या
ञ्च स भवेद् वेदपारग इति अपिशब्दोभावेन कुल्य विशेषसमुच्चयार्थः ।
तथाचापस्तंभः । ब्राह्मणान् भोजयेद्ब्रह्मविदो योनि गोत्रमन्त्रान्ते वा
स्य संवन्धीनिति योनि संवन्धाः मातुलश्वशुरादयः । गोत्रसंवन्धाः
सपिण्डसगोत्रादयः मन्त्रसंवन्धा वेदमन्त्रादि अनुशिष्टाः । अन्ते वा-
सिसंवन्धाः शिष्यानुशिष्टादयः एवंविधसंवन्ध रहितानभावे भो-

जयेदित्यर्थः । ननुचाभावोपिशिष्यानित्यत्वापि शब्देनानुकल्पसंगृ-
हीतस्तत्कथं पुनरिहापिशब्देनानुकल्पे विशेषाभिधानमिति ।
उच्यते अनुकल्पेपिविशिष्ट विध्यर्थमित्यदोषः । तेनमातामहमातु-
लञ्चस्वस्त्रीयंश्चशुरंगुरुं दौहित्रं विट्पतिंवन्धु मृत्विग्याजौचभोजये
दित्यत्र मन्वादिवचनेद्वितीयेति विशेषेणवन्धुमातुलशिष्याणां मनुकल्प
उक्तस्तत्रविशेषविधिः पुनरपिशब्देनगृहीतइत्यर्थः । तथाचपराशरः
पञ्चभिःपुरुषैर्युक्ता अश्राद्धेयाश्चगोत्रिणाः । षड्व्यस्तुपरतः पुंभ्यः
श्रोद्धे भोज्याःस्वगोत्रिणः । पञ्चभिर्युक्ताः पञ्चपुरुषपर्यन्तं अश्राद्धेया
इत्यन्वयः । मातुलेतुस्कन्दसंवादः स्वमां हिमातुलमुतां यस्तामुद-
हतेद्विजः गुरुतल्यगएवासौ सचास्यात्पङ्क्तिदूषकः सचेतिमातुलः
शिष्यस्त्वधनहारीति विशिष्टविधिरिति । श्वसुरस्वस्त्रीयादीनां
गुणत्वविधिर्निर्गुणत्वे योनिसंबन्धत्वेननिषेधइत्यविरोधः । नियो-
ज्याभावेवेदविदेकेनैव सिद्धिरित्यत्रहेतुमाह ॥

मू० आसहस्रात्पङ्क्तिं पुनातीतिवचनात् । २० ॥

यतः सहस्रविप्रयुतांपङ्क्तिमेको वेदवित्पुनातीतिवचन न्तस्मा-
देकमपितादृशंपङ्क्तिं मूर्धन्युपवेशयेदित्यर्थः वचनञ्चात्रभवति तेषा-
मेकंपङ्क्तिमूर्धनियुक्तो वेदवित्सहस्रैरप्युपकृत्युतां पङ्क्तिं पुनातीति ।
नित्ययोगपरोविद्वान्ममलोष्टा श्मकाञ्चनः । ध्यानशीलोयतिः
शान्तोब्राह्मणः पङ्क्तिपावनइति । वज्र्यानाहमनुः यस्तेनाःपतिताः
क्लीवायेचनास्तिकवृत्तयः । तान्हव्यकव्ययोर्विप्राननर्हामनुरव्रवीत्
जटिलंवानधीयानन्दुर्बलम् कितवन्तथा । याजयन्तिचये पूगां
स्तांश्चश्राद्धेनभोजयेत् । धिकित्सकान्देवलका न्मांसविक्रयिण
स्तथा विपण्णेनचजीवन्तो वज्र्यास्युर्हव्यकव्ययोः । प्रेष्ठोग्राम्यस्यरा-

क्षश्च कुनखीश्यावदन्तकः । प्रतिरोद्धागुरोश्चैव त्यक्ताग्निर्वोर्द्धुष
स्तथा यक्ष्मीचपशुपालश्चपरिवेत्तानिराकृतिः ब्रह्मद्विष्टपरिवि-
त्तिश्चगणाभ्यं तरएवच कुशीलवोवकीर्णीच वृषलीपतिरेवचपौ-
नर्भवश्चकाणश्चयस्य चोपपतिर्गृहे भृतकाध्यापकश्चैवभृतका-
ध्यापितस्तथा । ब्राह्मैर्योनैश्चसंबन्धैःसंयोगस्पतितैर्गतः आगार-
दाहीगरदःकुण्डाशीसोमविक्रयी । समुद्रयायीवन्दीचतैलिकःकू-
टकारकः पित्राविवदमानश्च(१) कितवोमदापस्तथा पापरोग्यभि-
शस्तश्चदांभिकोरसविक्रयी धनुःशराणांकर्त्तायचयश्चाग्नेदिधिषूप-
तिः मित्रघ्नृद्रूतवृत्तिश्चपुत्राचार्यस्तथैवच भ्रामरीगण्डमालीच-
श्विच्यथोपिशुनस्तथा । उन्मत्तोधश्चबर्ज्यास्युःवेदनिन्दकएवच ह-
स्तिगोश्वोष्ट्रदमकोनक्षत्रैर्यश्चजीवति पक्षिणांपोषकोयश्चयुद्धाचा-
र्यस्तथैवच स्त्रोतसांभेदकश्चैवतेषांचावरणे रतः गृहसंवेशकोद्रूतो
वृक्षारोपकएवच । श्वक्रीडीश्येनजीवीचकन्याद्रूषकएवच हिंस्रो-
वृषलवृत्तिश्चगणानांचैवयाजकः आचारहीनःक्लीवश्चनित्ययाच-
नकस्तथा कृषीजीवीशिल्पजीविसद्भिर्निन्दितएवच औरभिकोमा-
हिषिकः परपूर्वाप्रतिस्तथा प्रेतनिर्यातकश्चैववर्जनीयाःप्रयत्नतः ।
एतान्विगर्हि ताचारानश्चाज्ञेयान्नराधमान् । द्विजातिप्रवरोविद्वा-
नुभयविविर्जयेदिति एषामर्थाः स्तेनोब्रह्मस्त्रान्यद्रव्यहारी तस्य-
पतितत्वेनोपादानात् नास्तिकानास्तिकधर्मफलमित्यभिमानि-
नस्तेभ्योर्दृष्टिर्येषांते जटिलोब्रह्मचारीअनधीयानस्तद्विशेषणम्
अधीयानस्यश्चाज्ञेयत्वात् दुर्बालःखल्वाटकःकपिलकेशोवा दुश्च-
र्मैतिकश्चत् कितवोद्रूतासक्ताः पूगयाजकागणयाजकाः चिकि-
त्सकाभिषजः देवलकाधनार्थंदेवार्चकाः देवार्चनपरोविप्रोक्षितार्-
थोवत्सरवयम् असौदेवलकोनामहव्यकव्येषु गर्हितवृत्तिवचनात्

मांसविक्रयिण आपन्नपि विपणो न च जीवन्तदुत्तनेनैव निषेधसिद्धौ-
 प्रेष्यो धनार्थमादेशकारी प्रतिरोधाविरोधी त्यक्ताग्निविहितत्याग-
 भ्विनैर्बोभयाग्नित्यागी वार्धुषिः द्रव्यशुधुपजीवीयथासमर्थधाम्य-
 मुद्धृत्य महर्षयः प्रयच्छति सवैवाद्भुषिको नामेति यक्ष्मीक्षयी पशु-
 पालो नापदिह्यर्थः । परिवेत्ताऽकृतविवाहाधाने जेष्ठे भ्रातरि-
 कृतदाराग्निसंग्रहः निराकृतिरधीतनष्टवेदः अधीत्य विस्मृत्येवेदे-
 भवेद्विप्रो निराकृतिरिति देवलोक्तेः यस्याधायाग्निमालस्याद्देवा-
 दीन्नेभिरिष्टवान् निराकर्त्ता मरादीनां सविज्ञे यो निराकृतिरिति वा-
 व्रत्ताद्विष्टात्तन्नेपी नानाजातीया अनियमकृतयोगणास्तन्मध्य-
 वर्त्ती गणाभ्यन्तरः ग्रामीण इतिकश्चित् कुशीलवो नटवृत्तिः अव-
 कीर्णी स्खलितवृत्तचर्यः वृषल्यनेकविधा तत्पतिः । तथा च बंध्यासु-
 वृषलीक्षेया वृषलीक्षेयमृतप्रजा चाण्डाली चरिताया च कुमारी यार-
 ज बलेति । स्कन्दसंवादेऽक्तेः रस्य गृहे भार्यायाः उपपत्तिर्जारः ।
 वाग्दुष्टो निष्ठुरः । पुनर्भूरनेकविधात्पुत्रः पौनर्भवः भृतको भृत्या-
 परिक्रीतो ध्यापकः तेनैवाध्यापितस्तच्छिष्यः गुरुश्चेति शूद्रस्ये त्वनुष-
 ङ्गः अकारणमपातित्यक्ते नपि श्रीगुरोश्च त्यागी ब्राह्मैरध्ययना-
 ध्यापनैर्योनैर्वैवाहिकैः संवन्धैः पतितैः साक्षित्वा पतितैर्व्यात्यैश्च यः संये-
 गंगतः स विवक्षितः गरहो विषदो विप्रादन्येषां तस्य दाने महापात-
 किर्त्त्वं न संग्रहात् कुण्डं वष्टिपलाभितावत्परिमिता भोजी जार-
 जान्नभक्षीत्यन्यः । समुद्रयायी नौकया बन्दी स्तावमानः । केकरो-
 ध्यावद्दृष्टिरितियावत् । मद्यपो द्राक्षादिमद्यपः । पापरो गोकुष्ठा-
 दिनिन्दारोगी । अभिगतो वाच्यमुक्तः । दाम्भिकः पाखण्डकुटध-
 र्मशरीरसविक्रयी गुडलवणादिविक्रीता अग्रेदिधिषूपतिर्ज्येष्ठा-
 यामनूठायां कनिष्ठेष्ठा तत्पतिरिति दूतवृत्तिजीवकः । पुत्राचार्यो-

चरपाठकः । पुत्रानुशिष्टइतिकश्चित् । भ्रामरीभ्रमरवदर्थार्जकः ।
 अपञ्जारीतिकश्चित् । गृहसंवेशकोवाङ् किधर्मेवर्त्तमानः मूल्यो-
 गृहकारीत्यन्यः हस्तिगोश्वोष्टदमकोदमनेनजीवनः नक्षत्रे ज्योति-
 षट्पत्याजीवकः युडाचार्योयुद्धोपदेष्टातदुपायी स्त्रोतसामेदकःस्त्रो-
 तोनिरोद्धातेषामाचरणेरतः सेतुकृत् दूतोदूतवृत्तिः दृक्षारोपको-
 वृत्त्यर्थः श्वःक्रीडोश्वभिः क्रोडावान् कन्यादूषकोमूल्यादिनायोनि-
 बिदारकः वृषलपुत्रोवृषलएवपुत्रोस्यनान्यः क्लीबोधर्मोदामशून्यः
 प्रवृत्तस्योक्तत्वात् सङ्घिर्निन्दितोऽकारणेपिअथवाकृषिजीवीविशेषणं
 चीर्णवृतागुणैर्युक्ताभवेयुर्येपिकर्षकाः सावित्रीज्ञाःक्रियावन्तस्ते-
 राजकनराधमाइति धार्मिककार्षकाभ्यनुज्ञानात् औरभि-
 कामेषपोषकः माहिषिकोमहिषीपालः व्यभिचारिणीपुत्रः महि-
 षीत्युच्यतेभार्यासाचैवव्यभिचारिणी तस्यांयोजायतेगर्भःसवैमा-
 हिषकःस्मृतइतिवचनात् परपूर्वाप्रागन्यस्मैदत्तातस्याःपतिःपरि-
 णेताद्वितीयविवाहेनसंस्कृत्येत्यपौनरुक्तांपुनर्वा प्रेतनिर्यातकोमू-
 ल्येनप्रेतहारकः अप्रांक्तेशानित्येषांपंक्तावपिनभोक्तव्यमित्यर्थः उभ-
 यत्रेतिदैवेपिअथ यमोपि काणाःकुजाश्चपण्डाश्चकृतज्ञागुरुतल्प-
 गाः वृद्धा वृद्धासुरापाश्वस्तेनगोघ्नाचिकित्सकाः राष्ट्रकामास्तथोन्मत्ताः
 पशुविक्रयिणश्चये मानकूटास्तुलाकूटाःशिल्पिनोग्रामयाजकाः रा-
 जभृत्यभ्रवधिरामूकखलवाटपुंगवाः वाणिज्योमधुहर्तारोगरदावन-
 दाहकाः समयानांचभेत्तारः प्रदानांयेनिवारकाः प्रहजोपनिह-
 त्ताश्च दृष्ट्याप्रवृजिताश्चये यश्चप्रवृजिताज्जातःप्रवृज्यार्वासितश्चयःस-
 मुद्रयायीवांताशीकेशविक्रयिणश्चये अवकीर्णचिवीरघ्नोगुरुघ्नःपितृ-
 दूषकः अस्वार्थः गुरुतल्पगः गुरुराजमुहृद्वधूत्तमाधमजनस्त्रियःसु-
 तास्वसृमखीर्गच्छन्गुरुतल्पगउच्यते इत्येवंलक्षणः राष्ट्रकामान्दप-

धर्माभिलाषकः मानकूटाधान्यादिमानपात्रवञ्चकाः मधुहर्तारो-
 माक्षिकधोराः प्रव्रज्योपनिवृत्ताः संन्यासिनः वृथाप्रव्रजितः पुत्रा-
 ननुत्पादोयमन्यासीप्रव्रज्यावसितो नवविधप्रत्यवसितोपलक्षकः वां-
 ताशीभुक्तं वमित्वा लालसयापुनर्भोजी केशविक्रयीचामरादिवि-
 क्रेता वीरघ्नस्त्यक्ताग्निः पुत्रहाशाऽपाठयता । शासनाप्रदानाभ्यु-
 तपुत्रस्य स्मृतिष्वदोषात् स्कन्दसंवादे । वर्जयेत्कुण्डगोलौतुना
 स्तिकां रंगजीवनम् । जपहोमविरक्तञ्च शाकुनं राजसेवकम् चिकि-
 त्सकञ्च गणकङ्कितवं हेतुवादिनम् वृथामिषपरित्यागिवृथापाकभु-
 जौ द्विजौ ब्राह्मणायै विकर्मस्या वैडालव्रत्तिकाः शठाः रोगहीनाति-
 रक्तांगाः क्रूरो धूर्त्तपुरोहितौ अनध्यायेष्वधीयानाः सूचकश्च नियाम-
 कः स्त्रीजितशचकदर्यश्च सुदूष्यश्चाहितुण्डकः ग्रामयाजीशूद्रया-
 जीवेदसोमोपजीवक इत्यादि । अस्यार्थः कुण्डगोलौ प्रसिद्धौ रंगजी-
 वीवस्वादिरञ्जकः शाकुनः पच्युपजीवी हेतुवादी तर्कवलेन सर्वत्र सं-
 शयकृत् वृथेति शब्दादौ मांसत्यागी एवं पाकरुचिः विकर्मस्थो नि-
 षिद्धकर्मा वैडालव्रतिकः पारिभाषिकः तथाच यस्य धर्मध्वजो नि-
 त्यं सुरध्वज इवोद्धितः प्रकृन्तानि च पापानि वैडालं नाम तद्वत् तदस्या-
 स्तीति वैडालव्रती को लोकदम्भक इत्यर्थः । तथाच । धर्मध्वजी सदा-
 लुब्धः कृद्विको लोकदंभिकः । वैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाति स-
 त्वक इति शठो वञ्चकः । अनध्यायेष्वपूर्वपाठी सूचको राजकर्णे-
 जपः नियामको विवादद्रष्टा कदर्यः परिभाषिकः यथा आत्मान-
 न्धर्मकृत्यञ्च पुत्रदारांश्च पीडयेत् । लोभाद्यः पितरो भृत्या न्सकदर्य-
 इति स्मृत इति । सुदूष्यः कुत्सिताचारः अहितुण्डकः सर्पदन्तोत्पाटी
 वृद्धयाज्ञवल्क्योऽपि । सदासेवी च खल्वाटः कुप्रतिग्रहकारकः अज्ञात
 कुलगोत्रो यो द्विर्गन्धः शिल्पिकर्मकृत् । अब्रतानासु पाध्यायः काण्ड-

पृष्ठाश्चयेद्विजाः । अयतिर्मोक्षवादी च चतुर्थाश्रमवर्जितः कुणपायु-
धजीवी च पुत्रप्रतिनिधिश्चयः । धर्माचारविहीनाये श्राद्धेष्वेतान्वि-
वर्जयेत् । अस्यार्थः अब्रतानामुपाध्याय इत्यक्षरादिशिक्षकः काण्ड-
पृष्ठा मातुलस्य सुतोद्वाही विप्रो यश्चाद्जीवकः । काण्डपृष्ठस्तु वि-
ज्ञेयः श्राद्धेयश्चातिनामिषमित्युक्तः । तथा द्विजशाघनिकाये च
पुत्रप्रतिनिधिस्तथा सर्वे ते ह्यविणाप्रोक्ताः काण्डपृष्ठानराधमाः ।
हारीतोपि शुद्रा पुत्रश्च दत्तश्चये तथा क्रीतका सुतः । सर्वे ते मनुना-
प्रोक्ताः काण्डपृष्ठाद्विजाधमा इति अयतिर्गृहस्थो मोक्षवादी
मुक्तिवादेरतः तथा च ब्रह्माण्डे । श्राद्धार्हगुणयोगेपि नैते जातुकथञ्चन
निमन्त्रिणीयाश्चाद्धेषु सम्यक्फलमभीप्सतेति । श्राद्धार्हगुणावेदा-
ध्ययनादयः । शेषं स्मृतिभ्यो विज्ञेयमित्यलं प्रपञ्चेन ।

इति श्रोतृश्रमिश्रकृती श्राद्धक श्रियां सूत्रवृत्तौ

अक्षयत्सिप्रकरणं समाप्तम् ॥

अष्टमी कण्डिका च समाप्ता ।

इत्थं श्राद्धोपयोगि सर्वमभिधाय ददानीं गृहस्थस्य काम्य कर्मौ
चित्याच्छाद्धेषु काव्यकालानुपचक्रंसुः सूत्रमारभते ॥

मू० अथ काम्यानि भवन्ति ॥ १ ॥

श्राद्धानीति शेषः तत्रायं शब्दः काव्यार्थः । न केवलं तिथय एव
काव्यकालाः किन्त्वपि स्मृत्युक्ता ज्ञेया इत्यर्थः । तथा च संक्रान्तिवि-
षुवच्चैव विशेषेणायनद्वयं । व्यतीपातो जन्मरुद्धं चन्द्र सूर्यग्रहौ तथा
तिथिनक्षत्रवाराश्च उद्दिश्याभ्युदयन्तथा । एतांस्तु श्राद्धकालान्वैका-
म्यानाह प्रजापतिरिति । संक्रान्तिविषुवायनादित्यनयोः पुण्या-
तिथयेन विशेषोपादानात् । व्यतीपातस्त्रिविधः महाल्पमित्यभेदेन

तथाच सिंहस्थौगुरुभौमौच मेषस्थौचरविसितः । द्वादशीहस्तसंयु-
क्ताय्यतीपातो महान्सुसः अन्यस्तु । श्रवणाश्विधनिष्ठा द्रानागदैवत-
मस्तके यद्यमारविवारेणव्यतीपातः सउच्यते । इत्युक्तेः नित्योनि-
त्ययोगः अभ्युदयःशरीरोपचयादिः । अन्येपि स्मृत्यन्तरोक्तायोगाच्चा-
तव्याः एतेषुश्राद्धविधानं स्मृत्यन्तरेभ्यउपलब्धव्यम् ग्रन्थगौरवभया
ब्रह्मलिखितम् । ननुचाथशब्दोनस्मृत्युक्त कालस्यासंगृहीतत्वादत्र
भाद्रपदीमारभ्यकिमिति श्राद्धं सूत्रकृताबुद्धिस्थ एवेत्यविरोधः । त-
स्मात्पौर्णमास्यामेवोपक्रमः श्राद्धषोडशकस्येति प्रागुक्तम् । तथाच
वायुपुराणं पुष्टिञ्जाम् स्मृतिं मेधां पुत्रानैश्वर्यमेवच । कुर्वाणः पौ-
र्णमास्यानुसम्पूर्णं फलमश्नुते । प्रतिपदनलाभायेत्युपक्रमस्य अमा-
याञ्चप्रयत्नेन श्राद्धङ्कुर्याच्छुचिः सदा । सर्वान्कामानवाप्नोति स्वर्ग-
स्थानंसमश्नुतइति श्राद्धषोडशकमप्रतीतं । प्रपञ्चितञ्चास्माभिरादि
सूत्रद्वयलम्पौनस्त्येनेति । फलानिति थिष्याह ॥

मू० स्त्रियोऽप्रतिरूपाः प्रतिपदि ॥ २ ॥

श्राद्धकल्लभतइतिशेषः । अप्रतिरूपाः अद्वितीयरूपाः स्त्रियो-
भार्याः एतच्चकामनान्तरोपलक्षणम् । तथाचमनुः कुर्वन्प्रतिपदि
श्राद्धं सुरूपं लभते सुतामिति । वायुपुराणेपि प्रतिपदन लाभाय-
लब्धञ्चास्यननश्यतीति । कन्यामिति याज्ञवल्क्यद्वत्यादि अवैत-
च्चिन्त्यते । मृतपितृकोजीवन्मातामहः किंषट्पिण्डकंश्राद्धङ्कुर्या
दुतविपिण्डकमिति । अवैकेश्राद्धः द्विपार्वणस्यविहितत्वा जीव-
न्मातामहमतिक्रम्यापिकुर्वीतेति । तथाचमनुः म्रियमाणे तु पितरि
पूर्वेषामेवनिर्वपेत् । विप्रवद्वापितंश्राद्धे स्वकं पितरमाशयेत् पिता-
यस्यनुवृत्तः स्याज्जीवेद्वापिपितामहः पितुः सनामसङ्कीर्त्यकीर्तये

अपितामहं । पितामहोवातच्छाडम् भुञ्जीतेत्यब्रवीन्मनुरिति
तद्विचारितरमणीयं । अस्य नार्द्रलोकद्वयस्य साग्नेरन्वाहार्या-
दिनियतश्राद्धविषयत्वात् । तथाचनिगमः योवाजीवत्यितृणा-
न्तपिण्डस्थानइत्येके जीवतांवादेयमिति हिरण्यकेतुः । कस्मा-
दाज्ञविधित्वाद्दशाङ्गत्वादिति । नन्वेवञ्जीवत्यितृकस्य होमा-
न्तमनारंभोवेति कात्यायनेनान्वाहार्यादिनिषेधात्कथमेवमिति
सत्यम् कात्यायनेनोक्तेर्वाजसनेयि मात्रनिषेधविषयत्वा दित-
रसाग्नीनामनुवचनैर्जीवदतिक्रम्यविहितत्वात् । किञ्चार्थान्त-
रसूत्रस्यवाजसनेयि मात्रस्यपितास्वांशेजीवति तदाहोमान्तमना-
रंभोवाविकल्पितः । यदिचसंन्यासीपतितोवा जीवति तदावाज
सनेयिनोपिजीवदतिक्रमः सूत्रकृतोभिप्रेतइति । तथाचकात्या-
यनः ब्राह्मणादिहतेताते पतितेसङ्गवर्जिते । व्युक्तमाच्चमृतेदेयं
येभ्यएवददात्यसाविति । किञ्च नजीवत्यितृकःकुर्याच्छाड मग्नि-
मृतेद्विजः येभ्यएवपितादद्यात्तेभ्यो दद्याच्चसाग्निकइत्यनेनसाग्नि
जीवत्यितृकस्यैवातिक्रमोविहितो ननिरग्नेरिति । अपिच दर्शश्राद्धं
गयाश्राद्धंश्राद्धं चापरपक्षिकं नजीवत्यितृकःकुर्यात्तिलैः कृष्णैश्चत-
र्पणमित्यादौपितृग्रहणम् जीवन्मातामहादुपलक्षणमतेनापिजीव-
न्मातामहस्यनिषेधः अन्यच्च । उवाहेपुत्रजननेइत्यत्रापिषड्ग्रहणे-
नापरपक्षिकन्नविहितम् । यत्तु जीवत्यितरिवैपुत्रः श्राद्धकालंवि-
वर्जयेत् तेषांवापिपितादद्यात्तेषामेके प्रचक्षतेइतिहारीतोक्तेः यच्च
पितुः पितृभगोवादद्यात्सपितेत्यपराश्रुतिरिति कात्यायनादिभिरु-
क्तम् तत्सपिण्डीकरणविषयमाभुग्दयिकविषयंवा तथाच वृद्धौतीर्थेच
सन्यस्तेतातेचपतितेसति । एभ्यएवपितादद्यात्तेभ्योदद्यात्स्वयंसु-
तःयत्पुनः पितरोयत्पूज्यतेतत्तमातामहध्रुवम् अविशेषेणकर्तव्यं-

विशेषान्नरकं ब्रजेत् यच्च पिण्डास्यः षडिति स्थितिरित्यादिवचनम्
 वृद्धमातामहश्चात्र विधायकं तन्मातृवर्गद्वयविषय मित्यविरोधः ।
 तस्माज्जीन्मातामहकर्तुः पितृवर्गोद्देशेनैव द्विपिण्डकं श्राद्धमित्यु-
 चितं तथाच स्मृतिः । पितृवर्गे मातृवर्गे तथा मातामहस्य च जीवेत्स-
 यदिवर्गादौ तद्वर्गं च परित्यजेत् । चशब्दो मातामहौ संग्रहार्थः प्र-
 जापतिरपि संक्रान्ता बुपरागे च वर्षोत्सवमहालये । निर्वपेदत्र पि-
 ण्डांस्त्रीनिति प्राह प्रजापतिरिति । अतएव प्रातैकवर्गे श्राद्धस्य त्र-
 योदश्यानिषेधः । श्राद्धत्रैकस्य वर्गस्य त्रयोदश्यामुपक्रमेदिति एव-
 मन्यपंक्तावपि । अत्र च जीवेत्स यदिवर्गादावित्यनेन वर्गादावेव जी-
 वतो नातिक्रमो न जीवत्पितामहा देरपीत्यर्थादुक्तम् । तेन मृतपि-
 तृको जीवत्पितामहादिकमति क्रम्यापि दद्यादित्यर्थः । तस्मान्निर-
 ग्निजीवत्पितृकस्य सपिण्डनाभ्युदयिक श्राद्धयोरेव सागनेस्तु सर्वं
 श्राद्धेषु जीवदतिक्रमेण श्राद्धं नेतरत्वेति चतुरस्रम् ॥

मू० द्वितीयायां स्त्रीजन्म ॥ ३ ॥

श्राद्धकर्तुः स्यादिति शेषः स्त्रीजन्मेति कन्याजन्मेत्यर्थः । तथाच
 मनुः कन्यका तु द्वितीयायामिति उपलक्षणञ्चैतत् । तथाच वायु
 पुराणम् द्वितीयायान्त्यः कुर्या द्विपदाधिपतिर्भवेत् । मार्कण्डेयोपि
 द्वितीयाहिप्रजाप्रदेति । कन्यावेदिन इति याज्ञवल्क्य इत्यादि क-
 न्यावेदीजामाता । अत्रैतच्चिन्त्यते किमवपितामहादि तृतीयौ-
 त्वेण श्राद्धकार्यमुतनेति । तत्रैकैधिकाराभावान्नैत्याहुः तदयुक्तम्
 विहितत्वात् । तथाच खलपमात्यं नान्दीमुखानामप्रत्यब्दं कन्यारा-
 शिङ्गतेरवौ पौर्णमास्याञ्च कर्तव्यम् वाराहवचनं यथेति । नान्दीमु-
 खाः पितामहादयः चकारादग्न्यतिथावपि । तथाच वृद्धयाज्ञवल्क्यः

तृश्रद्धमृथक्प्रशस्तमिति रेणुरपिमातुर्गयाष्टकाष्टज्ञैर्मृताहेचम-
हालये अत्रश्राद्धं पृथग्देयंतन्त्रं चानुगतापदीति अयंविशेषः मृतेपि-
तरितमूर्ध्वं कजीवतितुम्तर्गस्यैवेति पृथक्श्राद्धं जीवत्पितृकस्थने
तेनकेनवर्मविषयमित्यन्ये ।

मू० पुत्राः पञ्चम्याम् ॥ ६ ॥

कर्तुः स्युरिति शेषः पुत्रशब्दः पुन्नामनरकघ्नः पुत्रहेतुः पूर्णाति-
थित्वात् । तथाचमनुः । पञ्चम्यां शोभनान्मुतानिति उपलक्षणं चै-
तत् तथाचवायुः पञ्चम्यां चैव कुर्वाणः प्राप्नोति महतीं श्रियं मार्कण्डे-
योपि श्रियं प्राप्नोति पञ्चम्यामिति अत्रैके मातुः क्षयाहे पार्वणं स्था-
दितगङ्गः तथाचष्टइयाञ्चवल्क्यः पितृपक्षेत्वमायां वापितृमातृक्षये-
यदि पितृस्तु पार्वणं कुर्यादेकोद्दिष्टं तु मातृकं तथापितृस्तु पार्वणं कु-
र्यादेकोद्दिष्टं तु मातृकम् तथापितृस्तु पार्वणं कुर्यात्प्रेतपक्षे मृतस्य तु
पितृभ्रातृमातृणामेकोद्दिष्टं सदैव हि प्रेतपक्षेति धियस्य पितुरेक-
स्य पार्वणम् मातृभ्रातृपितृव्याणामेकोद्दिष्टं सदैव हीत्यादिवचने भाः
तदयुक्तम् एकोद्दिष्टस्य सापत्नविषयत्वेनाविरोधात् तथाचपुराण-
समुच्चये अमायाञ्चक्षयो यस्य प्रेतपक्षे तथाभवेत् निरग्निरपि कु-
र्वीत मातापित्रोस्तु पार्वणम् अग्निरपि पार्वणं योनमातापित्रोः क्षये ह-
नि करोति बुद्धिमोहेन स भवेत्पितृघातकः जमदग्निरपि आप-
यसहपिण्डत्वमौरसौ विधिवत्सुतः कुर्वीत दर्शवच्छ्राद्धं मातोपित्रो-
क्षये हनि गौतमोपि आप्राप्त्याः पंचमे पक्षे प्रेतास्थे तु क्षयो यदि पा-
र्वणान्तं कुर्वीत वर्जयित्वा च उर्ह्यशौम् हेमाद्रावपि सपिण्डीकरणादूर्ध्वं
पित्रोरेव हि पार्वणम् पितृव्यं नातृमातृणामेकोद्दिष्टं सदैव हीत्य-
लं वज्रना ॥

मू० षष्ठांदातर्द्धिः ॥ ७ ॥

कर्तुः स्यादिति शेषः ऋद्धिर्द्युतत्रिजयः उपलक्षणञ्चैतत् ।
तथा च वायुः षष्ठांश्राद्धं तु कुर्यात्तद्विजास्तं पूजयन्ति हि मार्कण्डे-
योपि षष्ठां पूज्यो भवेन्नर इति अत्र विशेषः पुराणसमुच्चयेपि एक-
माह द्विपितृकौ मातरावन्यगौ तजौ मातुः श्राद्धं तु कुर्यात्तां षष्ठां पुत्रा-
वुभावपि स्मृतिसमुच्चयेपि देयं श्राद्धं तु षष्ठां तैर्यै हिरं शायनाः सुताः
क्षेत्रिणश्च पितृश्चादौ दद्यात् पश्चात्तु वीजिनः अनेकमाह कस्य विशेषो-
गालवेनोक्तः अनेकमातरो यस्य श्राद्धं चापरपक्षिके । अर्घदानं पृथ-
क् कुर्यात्पण्डमेकं सन्निर्वपेदिति ।

मू० कृषिः सप्तम्याम् ॥ ८ ॥

कर्तुः स्यादिति शेषः उपलक्षणञ्चैतत् तथा च वायुः कुरुते य-
स्तु सप्तम्यां श्राद्धानि सततं नरः महामन्त्रमवाप्नोति गणानां चाधिको-
भवेत् मार्कण्डेयोपि गणाधिपत्यं सप्तम्यामिति अत्रैतन्निश्चित्यते
रजस्वलायां पत्न्यामत्र श्राद्धं कार्यं न वा । तत्रैक आहुः नेति तथा च ।
श्राद्धीयाहनि संप्राप्ते यस्य भार्या रजस्वला । श्राद्धं न च न कर्त्तव्यं क-
र्त्तव्यम्यच्च मेहनीति तन्न मृता हि अपुत्रपत्न्याः स्वयङ्कर्त्तृकानि प्रे-
धत्वात् तथा च गौतमः न पुत्रा तु यदा भार्या संप्राप्ते भर्तु रादिके ।
रजस्वला भवेत्सा तु कुर्यात्तत्पञ्चमेहनीति ।

मू० वाणिज्यमष्टम्याम् ॥ ९ ॥

कर्तुः स्यादिति शेषः वाणिज्यशब्देन यथा वाणिज्योऽनेकलाभः
स्तथाष्टमी श्राद्धे नानेकफलमित्यर्थः तथा च वायुः संपूर्णं ऋद्धिमाप्नो-
तियोष्टम्यां कुरुते नरः मार्कण्डेयोपि अष्टम्यां ऋद्धिमुत्तमा मिति
उपलक्षणञ्चैत् ते गयाफलमपीत्यर्थः । तथा च ब्रह्माण्डे आषाढ्याः

पंचमेपक्षे गयामध्याष्टमीस्मृता चश्रोदशीगजक्यागयातुल्यन्तुदै-
 तृकमिति अत्रैतदुच्यते किमपरपक्षिकंश्राद्धं सूतकान्तेसादृतनेति
 तत्रैकश्राद्धः सांसिकेद्वेतुसम्प्राप्तेअन्तरासृतसूतके वदन्तिशुद्धौ-
 तत्कार्यं दर्शयामिविचक्षणइत्यादि वचनान्सासिकाब्धिकयोरेवाशौ-
 चान्तेविहितत्वादपरपक्षिकत्वेन तदयुक्तम् अस्यापिविहित-
 त्वात् तथाचपुराणसमुच्चये पक्षश्राद्धे समारब्धेसूतकग्निपतेद्यदि
 समाहृताहिपितरःसूतकांतेविसर्जयेत् यदिनैवंनरःकुर्यात्सूतकां-
 तेक्षमापनम् प्राग्दत्तानिमलुष्येणश्राद्धान्यसुरतृप्तये इति पक्ष-
 श्राद्धंइत्यापरपक्षकोपलक्षणम् ऋष्यशृङ्गोपि शुचीभूतेनदातव्यं-
 यातिथिःप्रतिपद्यते सातिथिस्तस्यकर्त्तव्यानन्वयावैकदाचनेति ।

मू० एकशफन्नवस्याम् ॥ १० ॥

कर्तुःस्यादितिशेषः एकशफाअश्ववेसरादयस्तेषांष्टन्दमेकश-
 फम् समूहेत्युपलक्षणंचैतत् तथाचवायुः श्राद्धंनवस्याङ्कर्त्तव्यमैश्व-
 र्यंस्त्रीपुकांचतेति स्त्रियोनवम्यामप्राप्नोतीति मार्कण्डेयः अत्रैत-
 त्संदिह्यते जीवत्पितृकःकिन्मातुः श्राद्धन्नवस्याङ्कुर्यादृतनेति तत्रै-
 केश्राद्धः अमाश्राद्धज्ञयाश्राद्धं श्राद्धंचापरपक्षिकम् नजीवत्पितृकः
 कुर्यात्पितृहादुपजायतइत्यादिवचनान्गिरग्निर्नेति अन्येत्वाहुः ।
 अन्वष्टक्यस्यविहितत्वात्कुर्वीतेति तदेतद्विचारणीयम् नजीवत्पि-
 तृकशब्देनकिमुत्थजीवत्पितृकमातृविव क्षयापरपक्षिकश्राद्धस्यैव-
 निषेधः आहोस्विज्जीवत्पितृकशब्देनजीवन्मातामहादुपलक्षकेन
 जीवद्वर्गश्राद्धनिषेधः तत्रयदिजीवत्पितरिमुख्याधिकारिणोदाना-
 भावाच्छ्राद्धमावस्यैवनिषेधइत्युच्यते तदाजीवैत्सयदिवर्गादौतद्व-
 र्गंनुपरित्यजेदित्यस्यमृतवर्गश्राद्धविधायकस्यवैयर्थ्यस्यादन्यत्रक्षया-

हेपिमाट्प्रादस्याकरणाप्रसङ्गश्चसत् अथक्षयाहत्वेनतत्कर्त्तव्य-
 न्तर्हिमृतवर्गेविधायकवचनस्यवैयर्थ्यतदवस्थमेव यदिजीवत्पितृक-
 शब्देनजीववर्गश्चाद्वनिषेधः इत्युच्यते तर्हिमृतमातृकेसदाचारप्रा-
 प्ताकरणस्यपरित्यागस्यादितितस्मात्कथमत्रसमाधिः उच्यते य-
 द्यपि धर्मजिज्ञासमानानांप्रमाणम्यरमंश्रुतिः द्वितीयधर्मशास्त्रं-
 तुतृतीयलोकसंग्रहइतिपराशरेणलोकसंग्रहस्यप्रमाणमुक्तम् तथा-
 पिस्मृतिसदाचारयोर्वाधेश्रुतिविरोधं विनास्मृतिवाधस्यान्याय्यत्व-
 स्मृतिविरुद्धाचारस्यवाधोन्याय्यइत्युक्तम् । तथाचचतुर्विंशतिमतम्
 स्मृतिर्वेदविरोधेनपरित्याज्यायथाभवेत् तथैवलौकिकंवाक्यंस्मृति-
 वाधात्परित्यजेत् । वसिष्ठोपि श्रुतिस्मृतिविहितोधर्मस्तद्विरोधि-
 शिष्टाचारःप्रमाणमिति तस्मात्सर्वोपिजीवत्पितृकोमृतमातृवर्गंन-
 वमोश्चाद्वस्वीकुर्यादित्यर्थः तथावचनमपि अन्वष्टकांगयाप्राप्तौ-
 सत्यायच्चमृतेहनि मातुःप्रादंसुतः कुर्यात्पितर्यपिचजीवति गया-
 प्राप्तःप्रासङ्गिको नतूद्देशतः । ननुचैवन्मन्वाद्यादौसर्वत्रजीवत्पि-
 तृकःकुर्यादितिनचवाच्यम् अन्वष्टकादिकालत्रयस्यैवविशेषविधे-
 रितरत्रनिषेधसिद्धेः यत्तन्वष्टकासुनवभिःपिण्डैःप्रादमुदाहृतमि-
 तिनवदैवतमुक्तम् तत्सार्गेरन्वष्टकात्रयविषयम् जीवन्मातामही-
 विषयंवा नवभ्यांविपिण्डकादिनिबोरकंवा अतश्चात्रविदेवत्यादि
 कंयथाधिकारङ्कर्त्तव्यमिति सिद्धं । अन्यथाजीवत्पितृकोऽवक्षया-
 हादिकंकुर्यान्मृतमातृकोनवभ्यानेत्यनुचितापत्तेः एवमेकादशा-
 हादावपिनियतश्चाद्वेषेवगन्तव्यमितिसर्वसमञ्जसं द्वादशदैवत्यं-
 वात्रप्रपञ्चितमस्माभिरादिसूत्रइतिनात्रयुनरुक्तम् । निमित्तवज्जत्वे-
 त्वत्रप्रतिनिमित्तंश्चाद्वानिकुर्यात् । तथाचकात्यायनः । देवहूनि-
 निमित्तानिजायेरन्नेकवासरे । नैमित्तिकानिकार्याणिनिमित्तो-

त्यत्यनुक्रमात् । यत्तु नैकः श्राद्धद्वयंकुर्यात्समानेह निकुलचिदिति प्र-
चेनसोक्तो निषेधः स एकनिमित्ते नैव पुनः करणविषयः । तथा च जा-
वालः । श्राद्धकृत्योत्तमैव पुनः श्राद्धन्ततद्दिने नैमित्तिकन्तुकर्त्त-
व्यन्निमित्तानिक्रमेणत्विति ।

मू० दशम्यांगावः ॥ ११ ॥

गावद्वतिद्विशफादुपलक्षणम् । तथा च मनुः दशम्यां द्विखुरं व-
हः । वायुरपि । कुर्वन् दशम्यां तनरोवा ह्यौ श्रियमवाप्नुयादिति अत्र-
गवांसर्वसम्पत्तिमूलत्वात्तदभिधानेन दशम्यां प्राशस्त्यं सूचितम् ।
तथा च पुराणसमुच्चये प्रशस्ताः पूर्णिमासु ख्यास्तिययः षोडशैव ताः ।
तासां श्रेष्ठतमा प्रोक्ता दशमी श्राद्धदायिनामिति दशम्यां पूर्णं काम-
तामिति मार्कण्डेयः गवांसम्पत्तिमूलत्वाच्छ्रुतिराह । गौर्वाद्दृष्टं
सर्वं विभर्त्तोति दुग्त्राजादिना देवादिदृष्टे रित्यर्थः तदुक्तं ह्यग्नौ-
प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते आदित्याज्जायते दृष्टिर्दृष्टेरन्न-
न्ततः प्रजाइति । अत्रैतदुच्यते पार्वण्यैकोद्दिष्टयोरेकदिनसम्भवे कि-
म्पार्वण्यं पूर्वकं कर्त्तव्यमुतैकोद्दिष्टमिति तत्रैकश्राद्धः । यद्येकन्नभवेत्ता-
वदेकोद्दिष्टन्तु पार्वणम् । पार्वण्यं त्वभिनिर्वर्त्य एकोद्दिष्टं समाचरे-
दिति जावालोक्तत्वात् पूर्वपार्वण्यमिति । तन्न । पाठादर्थस्य बलव-
त्वात् अतश्चैकोद्दिष्टं निर्वर्त्य पार्वण्यं समाचरेदिति तत्त्वान्वयः ।
तथा वयुद्वयान्नवलक्यः एकाहिके समुत्पन्ने पार्वण्ये च क्षयाहिके प्राक्-
क्षयाहं प्रकुर्वीत पश्चात्पाकेन पार्वणम् । अन्यच्च दर्शक्षयाह आस-
न्ने कथं कुर्वन्तियाज्ञिकाः । पूर्वं क्षयाहं निर्वर्त्य पश्चाद्दर्शं समाचरे-
त् । अथवा पार्वण्यस्य पूर्वमुक्तिः पित्रोः पार्वण्यविषयः एकोद्दिष्टस्य-
पश्चादुक्तिः सपिण्डैकोद्दिष्टविषयेयुक्तमेव न चैकपाकेन श्राद्धद्वय-

माशङ्कनीयम् । एकपाकेनयः कुर्यादेकोद्दिष्टपार्वणम् सभ-
वेद्गाम्यवाराहोविष्टाशीसप्तजन्मस्त्रितितेनैवोक्तत्वात् ।

मू० परिचारकाएकादश्याम् ॥ १२ ॥

भवन्तीतिशेषः परिचारकादास्यादुपजीविनः । उपलक्षणञ्चै-
तत् तथाचमनुः । एकादश्यान्तथारूढं ब्रह्मवर्चस्विनः सुतानिति
वायुरपि वेदाश्चैवाप्रयात्सर्वाच्चिप्राणांसंपदन्तथा । एकाश्यांपरं
स्थानमैश्वर्यंसन्ततिन्त्येति । अत्रैतच्चिन्त्यते अपुत्रादीनामेकोद्दि-
ष्टेक्षकान्तिथिनियमोस्ति वानवेति तत्रैकआहुः संबन्धिवान्धवा-
दीनामेकोद्दिष्टंमदैवहि । अपुत्रायेमृताकेचित्पुरुषावा स्त्रियोपिवा
तेषामपिचदेयंस्यादेकोद्दिष्टंनपार्वणम् । सपिण्डीकरणादूर्ध्वयव
यत्रप्रदीयते । भावेभगिन्यैपुत्रायस्वामिने मातुलायच मित्राय-
गुरवेश्राद्धमेकोद्दिष्टं महालयइति कात्यायनापस्तंबादि वचना
न्महालयेयवतत्वापीति । तदयुक्तं तिथिनियमस्योक्तत्वात् तथाचपु-
राणसमुच्चये अपुत्राणाञ्च बन्धूनामृत्विगाचार्ययोर्गुरोः । एकोद्-
दिष्टंसदाकार्यंपितृपक्षे विशेषतः । नपार्वणेऽधिकारोस्तियेषा
ङ्गन्यागतेरवौ । एकादश्यांतुक्त्वायां तेषांश्राद्धंसमाचरेत् अन्यच्च
एकादश्यांनकुर्वीत एकोद्दिष्टानिक्त्वाशः । यस्माद्विदेवतौविष्णुः
पितृवर्गस्यनित्यशः । दृष्टशातातपोपि पितृस्वसृमातृस्व स्रादिपितृ
व्यभ्रातृमातुलैः अनपत्यासुभार्यासु एकोद्दिष्टंसमाचरेत् । मातु-
लोभागिनेयाश्चस्त्रस्त्रीयोभ्रातृजस्तथा । श्वशुरश्चगुरुश्चैव सखामा-
तामहस्तथा एतेषाञ्चैवभार्याणांस्वसुर्मातुः पितुस्तथा । श्राद्धमात्र-
नुकर्तव्यमिति वेदविदांस्थितिरिति । भागिनेयः पितृव्यपुत्रीपुत्र-
इत्यपौनरुक्त्यं मातामहः सपत्नमातृ पितासाग्नेरप्यत्रैकोद्दिष्टमेव ।

तथाचपुराणसमुच्चये अग्निमन्तोद्विजायोतु तेषांकन्यागतेरवौ ।
पितृव्यभातृ वन्धूनामेकोद्दिष्टमशस्यतइति ॥

मू० धनन्धान्यमुत्तृपशून्रौप्यं हिरण्य
न्वादश्याम् ॥ १३ ॥

कर्तुः स्यादिति शेषः धनं रजतादि । तथाचमनुः द्वादश्यां जात
रूपन्तुरजतं रूप्यमेव चेति । उपलक्षणञ्चेतत् तथाचवायुः द्वादश्यां
जनलाभञ्च राज्यमाहुर्वसूनि चेति । अत्रैतदुच्यते दैववशात्पित्रोः
क्षयाहेत्येकथंक्रमइति । तत्रकाष्ठाजिनिः पित्रोः श्राद्धे च सस्त्राप्तेन वे
पर्युषितेपि वा पितृपूर्वसुतः कुर्यादन्यत्वासन्नियोगतः । अन्तः सपि-
ण्डश्राद्धेषु आसत्तिः संवन्धासत्तिः संवन्धनैकटङ्कक्रमेणेत्यर्थः । तथाच ऋ-
ष्यशृङ्गः भवेद्दादिसपिण्डानान्तन्त्रेण श्रपणन्तथा । संवन्धासत्तिमालो-
च्यतत्क्रमाच्छ्राद्धमाचरेदिति । ननु चापत्तौः क्षयाहेकिमेकपाकेनोत-
पृथक्पाकेन श्राद्धद्वयमिति । तत्रैके एककाले गतासूनां बहुनामथवा
द्वयोरित्यादिना एकपाकेनेत्याहुः । तदयुक्तम् तस्य एककालविष-
यत्वात् अन्यदैकदिनेतुपृथग्विधिः । तथाच पठन्ति मातापितृमृता
हेक्यंकालेनापि भवेद्दादि । पृथक्पाकं पितृश्राद्धं मातुश्च तदनन्तर-
मिति सपिण्डान्तु नृसिंहपुराणे । एकेनैवतुपाकेन सपिण्डानांम-
हालये तन्त्रेण श्रपणं कुर्याच्छ्राद्धं दद्यात्पृथक्पृथगिति । विष्णुध-
र्मोत्तरे च प्रेतपक्षे गयायाञ्च गतासूनांसमेहनि । तन्त्रेण श्रपणं कुर्या-
च्छ्राद्धन्दद्यात्पृथक्पृथगिति ॥

मू० कुप्यं ज्ञातिश्रेष्ठञ्च योदश्याम् ॥ १४ ॥

कर्तुः स्यादिति कुप्यं हेमरजतेभ्योन्यधातुजम् । उपलक्षणञ्चेतत्

तथाचमाकण्डेयः । प्रजांमेधाम्पशुपुष्टिम् स्वातन्त्र्यदृष्टिमुत्तमाम्
 दीर्घमायुरथैश्वर्यं कुर्वाणस्तुतयोदशीमिति । ननुचतयोदश्यां कृष्णा
 पक्षे यः श्राद्धं कृतेनरः । पञ्चत्वं तस्य जानीयाज्जेषु तस्य निश्चित-
 मिति अङ्गिरसाश्राद्धस्यैव प्रतिषिद्धत्वात्कथं फलश्रुतिरिति उच्यते
 तस्यैकवर्गश्राद्ध विषयत्वादित्यदोषः । तथाचकाष्णीजिनिः श्राद्धं-
 नैकस्य वर्गस्य तयोदश्यामुपक्रमेत् । अतृप्ता अस्य येऽवस्युः प्रजां हिंसन्ति
 तत्र तद्वति अत्रैतच्चिन्त्यते । किमनुगमनमृतानां स्वमृताहेश्राद्धं
 स्यादुत भर्तृमृताह इति । तत्रैके आहुः मासपक्षतिथिस्मृते यस्मि-
 न्याम्रियते हनि । प्रत्यद्भक्ततथाभूतं क्षयाहं तस्य तद्विदुरित्यादि
 वचनात्स्वमृताह एवेति । तदयुक्तम् भर्तृक्षयाहे विहितत्वात् तथाच
 पुराणसमुच्चये अग्रतः पृष्ठतो वापि तद्वक्त्या म्रियते तु या । तस्याः
 श्राद्धम्प्रादातव्यं भर्तु रेवक्षये हनि । रेणुरपि एकचित्यां समारूढादि-
 तीयेऽङ्गिपतिव्रता । तस्याः पिण्डोदकम्युतः प्रकुर्यात्पितृवासरे ।
 पठन्ति च प्रत्यक्षे वापरोक्षे वा तद्वक्त्या म्रियते तु यः । तस्याः श्राद्धम्पकु-
 र्वीत भर्तु रेवक्षये हनि । अत्रैतत्सन्दिह्यते भर्तृक्षयाहे किन्तस्यापृथ-
 क्पिण्डतैक पिण्डे द्वयोरुद्देशः । तत्रलौगाक्षिः मृते हनि समासेन
 पिण्डनिर्वपणमपृथक् । नवश्राद्धन्तु दम्पत्योरन्वारोहण एव तु अस्यार्थः ।
 दम्पत्योरन्वारोहणे मृता हे समासेन पिण्डनिर्वपणं नवश्राद्धमपृथगित्य-
 न्वयः नवश्राद्धं षोडशोपलक्षणम् । समासः पाकादौक्यन्तु शब्दो विशेषः
 ततश्च दम्पत्योरेकचि तांवारोहणे षोडशश्राद्धेष्वेव पृथक्पाकैः
 पिण्डौ अन्यत्र पाकैक्येनैकपिण्डे द्वयोरुद्देशः मृततिथौ भिन्नेत्यादिक-
 प्रेतश्राद्धयोः पृथक्पिण्ड एवेति । निश्चितप्रेतदिनेत्येव शब्दार्थः । त-
 थाच एकचित्यां समारूढौ दम्पतीनिधनंगतौ । पृथक् श्राद्धन्तयोः ।
 कुर्या दोदनञ्च पृथक्पृथगिति तथा । एकचित्यधिरोहे च तिथिरेकौ

वजायते एकपाकेनैकपिण्डेद्वयो गृहीतनामनीइति देशकालद्वय-
 देवकत्रै कोतान्त्रिकोविधिरिति च । अत्रैके भर्तुः क्षयाहेसर्वासामेव
 पृथक्पिण्डइत्याहुः । तन्न तस्यपतिव्रताविषयत्वात् तथाचभृगुः
 यासमारोहणकुर्याद्भर्तुः श्रित्यांपतिव्रता । तांमृताह्निसंप्राप्ते पृथक्
 पिण्डेनियोजयेत् । प्रत्यब्ज्जनवश्राडं युगपत्तुसमापयेत् । अपिच
 पुराणसमुच्चये । याकाचिन्म्रयतेनारी प्रत्यासहपतिव्रता तस्याः
 श्राडंपृथक् कुर्यादेकोद्विष्टविधानतः । विधानतइति युगपत्समा-
 पयेदिति च । भर्तुः क्षयाहेपूर्वं भर्तुर्द्विजोपवेशनंपश्चात्स्त्रिया इत्ये-
 वंक्रमेणैकदैवतसर्वं श्राडमित्यर्थः । पतिव्रातत्वात् तथा अथकेचि-
 न्नचेच्छंतिपृथक् श्राडन्तुयोषितां । वदन्तिपतिनासाडं मूढास्तेमेम-
 तेनतु सपिण्डीकरणादूर्ध्वं पृथक्कामविधीयते । नबालिशानांतेषां
 वैग्राह्यांवाक्यमजानतां पृथक्श्राडञ्चमातृणां कर्तव्यंवाप्रदक्षिण-
 मिति । पठन्ति परदेशेऽमृतोभर्ताश्रुत्वानारीपतिव्रता तिथिरेकावि-
 शुद्धौस्यात्पिण्डन्दद्यात्पृथक्पृथगिति । अत्रविशेषः अनेकस्त्रीभिर-
 नेकभृत्यैर्वास्वामिना सहस्नेहान्मरणे पाकैक्येनैव स्वामिगोत्रेणैव
 पृथक्पिण्डदानं कर्तव्यम् । तथाचपुराणसमुच्चये मृतानामथभृत्या-
 नांभार्याणांपतिनासह । तन्नेणश्रपणंकृत्वा श्राडंस्वामिभ्योहनि
 श्राडम्पृथक्पृथक्कुर्यात्स्वामिगोत्रेणकृत्स्नशः । स्वामिचित्यधिरोहे
 णभृत्याः तस्यस्वगोत्रतइति । भृगुरपि एककालेगतासूनां बहूना-
 मथवाह्वयोः तन्नेणश्रपणंकृत्वा श्राडंकुर्यात्पृथक्पृथक् । पूर्वकस्य
 मृतस्यदौर्द्वितीयस्यततः पुनः । तृतीयस्यततः कुर्यात्स्मिन्निपातेष्व-
 यंक्रमः पूर्वकस्यमृतस्येति ज्येष्ठानुक्रमेणलघूना मुत्तमाधमक्रमेण-
 त्यर्थः । यत्वेकचित्यांसमारूढाविति वचनेपृथक्पिण्डदानमुक्तम्
 तदेकपतिव्रतस्त्रीविषयमित्यविरोधः । स्मृत्यर्थसारे सहदहनेतुपि-
 ण्डश्राद्धादौ पाकैक्यङ्गालैक्यङ्कर्तव्यमिति ।

मू० युवानस्तत्रस्मियन्ते शस्त्रहता- श्चतुर्दश्याम् ॥ १५ ॥

युवानोऽस्मियन्ते तेशस्त्रहताश्च तत्रापरपक्षे चतुर्दश्यामेको-
द्दिष्टमप्राप्नुवन्तीत्यर्थः । तथाचस्मृतिचन्द्रिकायां । चतुर्दश्यां-
तु यच्छाङ्गं सपिण्डीकरणे कृते । एकोद्दिष्टविधानेन कुर्याच्छ-
स्त्रेण घातिन इत्यादि । मार्कण्डेयोऽपि युवानः पितरो यस्य मृताः श-
स्त्रेण वाहताः तेन कार्यं चतुर्दश्यान्ते षाष्टद्विमभीप्सतेति । ननु-
चात्र शस्त्रहतस्यैवान्यस्येति मिताक्षरादिनिबन्धकृद्भिर्नियमित-
त्वात्कथं युवान इत्युक्तम् । तत्र चष्टडयान्नवलक्यः । श्राद्धदाने चतु-
र्दश्यां विनाशस्त्रहतं मृतम् । ज्येष्ठपुत्रो विनश्येत्पितृणाञ्चाप्यधो-
गतिरिति अतो युवान इति त्रयोदश्यां योजनीयमिति चेन्नैवम् युव-
शब्दस्य विशेषादिना दंशसर्पहताद्युपलक्षकत्वात् । तथाचष्टडयान्न-
वलक्यः । मृत्काष्ठोपललोहेषु विदुर्द्व्यालविषादिभिः न खिदंष्ट्रि-
पन्नायेतेषां शस्ता चतुर्दशी जलादिषु विपन्नायेव न्हौवाकरकाग्नि-
ताः पक्षिसर्पविपन्नायेतेषां शस्ता चतुर्दशी कण्ठपाशविपन्नाये योगि-
नौचापहत्युना लूतादृष्टि विपन्नाये विप्रशापहताश्च ये शीतवातवि-
पन्नाये शस्त्रघातहतास्तथा पापमृत्युहता ये च तेषां शस्ता चतुर्दशी ।
अथवा युवानस्तत्र स्मियन्ते इति पाठस्तत्र यतस्त्रयोदश्यां श्राद्धं प्रशस्तम्
तस्मात्तद्गृहे युवानो न स्मियन्त इत्यर्थश्च त्रयोदश्यामेव । तथाच महा-
भारते जीतो नांतूतरे श्रेष्ठः कुर्याच्छाङ्गन्वयोदशीम् नावश्यन्तु युवानो-
स्य प्रमादाय तनिग्रह इति शस्त्रहत इत्येकस्त्वन्त वै कर्पावर्णं सूचय-
ति तेन पित्रादि त्रयेण शस्त्रहतेषां पार्वणमित्यर्थः अत्रैकश्राद्धः । तथा-
णामपि शस्त्रहतत्वे पृथक्पृथगेकोद्दिष्टमेवेति तदयुक्तम् । पार्वण-

स्यैवातिदेशात् तथाच स्मृतिदर्पणे एकस्मिन्वाद्भयोर्वापि विदुश्छ-
 स्त्रेण वामृतौ एकोद्दिष्टं सुतः कुर्यात्त्रयाणां दर्शवद्भवेत् तथापि वा-
 दयस्त्रयोयस्य शस्त्रघाताद्यनुक्रमात् ससुतः पार्वणं कुर्यात्त्रिचादेर्न-
 पृथक्पृथगिति एकोद्दिष्टमिति शेषः स्मृतिचन्द्रिकायामपि ।
 एकस्मिन्द्भयोर्वैकोद्दिष्टविधिरिति त्रयाणां पार्वणमित्यर्थः अत्रै-
 कश्राद्धः । रणे संमुखप्रहारैर्हतशूराणामपिशस्त्रहतत्वाच्चतुर्दश्या-
 मेवेति । तदयुक्तम् । तेषां परमगतिच्चात् तथाच पुराणसमुच्च-
 ये वितत्यरण्यज्ञं ये गोब्राह्मणहितैषिणः स्वामिपादाग्रसंलग्नायां-
 ति शस्त्रैश्च खण्डशः नतेशस्त्रहतैस्तुल्या पुराणज्ञैरुदाहृताः । न च-
 तिर्यङ्मायांति प्रयांति मुरमन्दिरम् । श्रूयते चावगाथेयं भार्गवांगि-
 रसोर्मते द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ परिव्राड्योगयुक्त-
 श्वरणे चाभिमुखो हत इति । यत्तु म्रियन्ते पितरश्चास्य येशस्त्रै-
 श्चरणे हता इति मनुना चतुर्दश्यामुक्तम् । तत्पराङ्मुखहतादिवि-
 षयमित्यविरोधः । न च संमुखपराङ्मुखादिशस्त्रहतयोः साम्यसूचि-
 तम् तस्मात्संमुखरणहतानां चतुर्दश्यां श्राद्धमेवेति । अत्रात्र्येऽप्यपवा-
 दापुराणसमुच्चये मृताश्चान्याश्च वज्रशो ब्रह्मक्षत्रिविशंखयः मृता-
 श्चपतिभिः सार्द्धं प्राप्ता लोकं सनातनम् । नैताश्च हतैस्तुल्याः प-
 श्यात्याः पतिना सह म्रियन्ते पतिभक्त्या तु दुर्लोकं प्राप्नुवन्ति ता न च-
 सन्यासिनां श्राद्धं कर्त्तव्यञ्च चतुर्दशीं तपः सन्यासयोगेन न ते यां-
 ति परांगतिं ये म्रियंत्या तु रत्वेन भृग्वग्न्यनशनां वुभिः नैव शस्त्रहता-
 स्तेऽपि अवस्थांतरगर्हिताः न शस्त्रहतिभिस्तुल्या आतुरत्वान्मृता-
 यतः एतेषां नापमृत्युतं पुराणज्ञावदन्ति हि अत्यातुरत्वात् सन्यासे-
 नात्र श्रुतिविरोधनम् । यथाव श्रूयते गीतपुराणज्ञैः पुरातनैः न वेदव-
 चनात्तातनलोकवचनादपि । सतिरुत्क्रमणी जाते प्रयागे मरणं प्रति

एतद्द्व्यतिरिक्तेऽन्यश्चतुर्दश्यां श्राद्धकरणेतवैवोक्तः जन्मांधपंगु-
विकलावाग्जडालुबुबुकाः नकुर्वन्तिचयेश्राद्धङ्गणपक्षेचतुर्दशीम्
ज्ञात्वाशस्त्रहतान्वंधूंस्तेम्रियन्तेचिरायुषः प्रयांतिपरमंधोरन्तेषामे-
वहिशस्यतइति नचैतेचतुर्दश्यामेवप्राप्नुवन्तीतिवाच्यम् पिताम-
हाद्यदृष्टिप्राप्तेः तथाचतवैव अदत्वाषण्माषं प्राग्वै योददातिच-
तुर्दशीम् पिटहाचोच्यतेसङ्गिरिहलोकेपरत्रच तस्माच्छ्राद्धम्पितृ-
णान्तुप्राकृपश्चाच्चतुर्दशीम् दद्याच्छस्त्रहतभ्यश्चइति प्राहपुराशु-
तिरितिच । चतुर्दश्याम्पूर्वमष्टम्यादौपश्चादमायामित्यर्थः । का-
त्यायनोपि शस्त्रादिभिर्हतस्यापि कुर्यात्प्रतिदिनंमुतः । पार्वणङ्ग-
णपक्षेतुवर्जयित्वाचतुर्दशीम् उशनाः । यदिकालान्तरेवापिय-
दाशस्त्राद्विपद्यते सोपिशस्त्रहतोच्चेयः तस्यशस्ताचतुर्दशी दृह-
न्मनुः महालयेचतुर्दश्यां मघायांपुत्रवानपि पिण्डनिष्कपणं बु-
र्यादास्यशस्त्रहतः पिता । तथा कृष्णपक्षेचतुर्दश्याम्मघाद्यु-
क्तंदिनंयदि पिण्डनिर्वपणंकुर्यात्तृतीयं शस्त्रघातिनइति अत्र-
विशेषोवृद्धयाच्चवल्क्येनोक्तः । शस्त्रमृत्युः पितायस्यशस्त्रघातिपि-
तामहः । पार्वणन्तस्यविज्ञेयन्त्यस्तेशस्त्रघातकः । यथाविहङ्गप-
क्षाभ्यामङ्गमाश्रित्यतिष्ठति तथापिताचवृद्धश्चपितामहसमाश्रिता
वितितत्सदाचाराभावाच्चिन्त्यम् । यदात्वस्यामेवचतुर्दश्यांपितोः
क्षयाहस्तदापिप्रेतपक्षमृतत्वात्पार्वणमेवेतिकेचित् तन्न आपाद्याः
पञ्चमेपक्षेप्रेतास्येतुक्षयोयदि । पार्वणन्तत्रकुर्वीतवर्जयित्वाचतु-
र्दशीमिति गौतमोक्तेः । साग्निविषयंपार्वणमेवेत्यविरोधः ॥

मू० अमावास्यायां सर्वमित्यमावास्या-
यां सर्वमिति ॥ १६ ॥

* इति श्रीकात्यायनविरचितं श्राद्धसूत्रम् *

सर्वमितिसर्वकामाः अस्याममावास्यायां श्राद्धकरणेन सर्वकामां
लभत इत्यर्थः । तथाच पुराणसमुच्चये श्राद्धं कुर्वन्मावास्यायत्नेन पुरुषः
शुचिः सर्वान्कामानवाप्नोति तिथ्यान्तिथ्यामुदायुत इति । अस्या
निरुक्तिस्तैव । कलानामाप्यायनार्थं रविं विंशतिचन्द्रमा सुषुम्ना-
स्याकलायासौ सूर्यस्या नवमास्मृता । विंशतिद्वौ लवौ तस्यां चन्द्रमाः
सूर्यमण्डले । अमाञ्चन्द्रस्य संयोगादमावास्यां विदुर्बुधा इति । अप-
रपक्षे श्राद्धासंभवेयमः । हंसेवर्षासुकन्यास्येशाकेनापि गृहेव सन् ।
पञ्चस्योरन्तरे दद्यादुभयोरपि पक्षयोः । सुमन्तुः कन्याराशौ महाराज
यावत्तिष्ठे द्विभावसुः । तावत्कालमभवेद्देयं दृष्ट्वि कंयावदागतम् ।
येयन्दीपान्विताराजन् स्यातापञ्चदशीभुवि । तस्यां दियन्नेव हतं
पितृणाञ्चेन्महालय इति । अवशुक्तापञ्चमी तुलासंक्रान्तिर्दीपामा-
वास्या दृष्ट्वि संक्रान्तश्चेति पूर्वं पूर्वासम्भवे उत्तरोत्तरा श्राद्धकालाः
इत्यर्थः । द्विरुक्तिर्मङ्गलार्था इति शब्दः समाप्तौ अवैतच्चिन्त्यते ।
विधवैवकवीचेत्तदा किमपरपक्षे श्राद्धन्तिपिण्डकंकुर्या दुतषट्पि-
ण्डकमिति । तत्रैकआहुः स्वपिवादिभ्यो दातुमनधिकारा त्रिपि-
ण्डकमेवेति । तदयुक्तम् जयाहश्राद्धं विना षट्पिण्डकस्यापि वि-
हितत्वात् । तथाच स्वभर्तृप्रभृतिविभ्यः पितृभ्यश्च तथैव च विध-
वाकारयेच्छ्राद्धम् यथाकालमतन्द्रितेति । षट्पिण्डकमित्यर्थः ।
कारयेदिति स्वार्थे णिच् । अधिकाराविषयो वा अपरआहुः मृता-

हश्चाद्वमपिपत्नीकर्तृकं सर्ववपार्वणमेवेति । तथाचलौगाक्षिःस-
र्वाभावेस्वयं पत्नीस्वभर्तृणाममन्त्रकम् । सपिण्डीकरणद्वुर्यात्सुतः
पार्वणमेवचेति । सुमन्तुरपि अपुत्रेप्रस्थितेकर्तानास्तिचेच्छाद्वकर्मणि
तवपत्न्यापिकुर्वीत सपिण्डम्पार्वणन्तथेति । तदप्ययुक्तं अनयो
र्वचनयोःक्षयाहव्यति रिक्तविषयत्वाददर्शा परपक्षमृतिविषयत्वाद्वा
तथाच भर्तुःश्राद्धञ्चयानारीमौढ्या त्पार्वणमाचरेत् । नतेनाप्या-
यतेभर्ताकृत्वाच नरकंनरजदिति । पार्वणनिषेधस्यक्षयाह विषय-
त्वावगमात् । दर्शापरपक्षमृतौतुल्यन्यायत्वेन उचितत्वादित्यल
मतिविस्तरेणेति भद्रम् ॥

स्मृतेरनेकविषयात् अनन्तत्वाच्चसर्वथा । तत्वंज्ञातुमशक्यन्तद-
लञ्चानल्पजल्पितैः ॥ १ ॥ स्वबुद्धिकल्पितग्नेह वचनंलिखितंमया ।
दृष्टंश्रुतममूलंवा समूलम् मेनद्रूषणम् ॥ २ ॥ दृष्टंयच्चाल्पदीर्घेषु
निबन्धेषुचयद्भूतम् । श्रुतंस्मृत्यविरुद्धं यत्तत्पठन्तीत्युदाहृतम् । ३ ॥
प्रमाणमप्रमाणंवा सर्वज्ञः कर्तुर्मर्हति । दृष्टेश्रुतेचविश्वासो-
मादृशैः कर्तुमिष्यते ॥ ४ ॥ कर्त्ताचेन्नचिरन्तनः किमियता
दोषोनिबन्धेभवेत् । सूरिश्चेदधूना तनैरपिकृते ग्रन्थेकथन्नादरः ॥
इत्थं ये कथयन्त्यनल्पमतय स्ताग्रत्यदोषज्ञधीः क्षन्तां सन्तमिमन्नि
बन्धमखिलं किंवा द्रीयन्तां हृदि ॥ ५ ॥ बाणव्योमेषुबिध्वङ्के १५०५
वर्षेकार्तिकमासके । कृष्णमिश्रोऽकृतग्रन्थं शूलपक्षद्वयंशुभम् ॥ ६ ॥

इत्यावसथिक ओमदतिसुखालज श्रीविष्णुमिश्रतनूजम्नः

कृष्णमिश्रस्यकृतौ श्राद्धकाशिकायां सूत्रवृत्तौ

काम्य श्राद्धप्रकरणं समाप्तम् ।

समाप्ताचेयं श्राद्धकाशिकासूत्रवृत्तिः ॥

[* शिवः शिवन्तो विदधातु *]

अपरपक्षेऽप्राङ्कुर्वीतोदूर्ध्वं वा चतुर्थ्याः यदहःसम्पदेततदहर्वा-
 क्षणानामन्यपूर्वेदुर्वास्नातकानेकेयतीन्गृहस्थान्साधून्वाश्रोति
 याग्विद्वाननवद्यान्त्रकर्मस्थानभावेपिशिव्यान्स्वाचाराग्निर्गन्शुक्ल-
 बिक्लिधः श्यावदन्तविष्वज्जननव्याधितव्यङ्गिश्चित्तिकुष्टिकुनखी-
 वर्ज्जमनिःशेनामन्वितोनापक्रामेदामन्वितोवान्यदन्नप्रतिगृह्णी-
 यात् स्नाताञ्जुचीनाचांताग्राङ्मुखानुपवेशयदेवेयुगमान्यथाशक्ति ।
 पित्वाऽएकैकस्योदङ्मुखान्द्वौवादेवेतीन्पिथ्यऽएकैकमुभयत्रवामा-
 तामहानामप्येवन्तन्त्रंवावैश्वदेविकं५श्रद्धान्वितः प्राङ्कुर्वीतशाके-
 नापिनापरपक्षमति क्रामेन्मासिमासिवोशनमिति श्रुतेस्तदहः शुचि-
 रक्रोधनोच्चरितोप्रसक्तः सत्यवादीस्यादध्वमैयुनश्मस्वाध्यायान्वर्ज-
 येदावाहनादिवाग्यतऽश्रौपस्पर्शनादामन्विताश्चैवम् ॥१॥ देवपूर्व-
 ५प्राङ्गम् पिण्डपितृयज्ञवदुपचारःपित्येद्विगुणास्तुदर्भाः पवित्रपाणि-
 र्दद्यादासीनः सर्वत्रप्रष्णेषुपङ्क्तिमूर्धन्यं पृच्छतिसर्वान्वाऽसनेषुदर्भा-
 नास्तीर्यविश्वान्देवानावाहयिष्यऽइति पृच्छत्यावाहयेत्यनुज्ञातो वि-
 श्वेदेवासऽआगतेत्यनयावाह्याऽवकीर्यविश्वेदेवाः शृणुतेममिति-
 जपित्वापितृनावाहयिष्यइति 'पृच्छत्यावाहयेत्यनुज्ञातउशनस्तत्वे-
 त्यनयावाह्यावकीर्यायन्तुनइति जपित्वायज्ञियष्टक्षत्रमसेषुपवि-
 त्वान्तर्हितेष्वेकैकस्मिन्नपश्चासिञ्चतिशन्नोदेवीरित्येकैकस्मिन्नेवयवा-
 नावपतियवोसीत्येकै कस्मिन्नेवतिलानावपतितिलोसिसोमदेव-
 च्योगोमवोदेवनिर्मितः प्रत्नमङ्गिः पृक्तःस्वधयापितृल्लोकान्प्रीणा-
 हिनः स्वाहेति सौवर्णराजतौ दुम्बरखड्गमणिमयानां पात्राणाम-
 न्यतमेषुयानिवाविदन्तेपलाशपत्रपुटेष्वेकैकस्यैकैकेनददातिसप-
 वित्रेषुहस्तेषुयादिव्याऽआपः पयसासम्बभूवुर्याअन्तरिक्षाउत्पा-
 र्थिवीर्याहिरण्यवर्णायज्ञियास्तान्आपः शिवाः स ५ स्योनाः
 सुहवाभवन्त्वित्यसावेष्टतेर्घइति प्रथमेपात्रे स ५ स्रवांसमवनी-
 यपितृभ्यः स्थानमसीतिन्युजं पात्रन्निदधात्यत्रगन्धपुष्पधूपदीपवा-

ससाञ्चप्रदानम् ॥ २ ॥ उद्धृत्यवृताक्तमन्नम् पृच्छत्यनौकरिष्यइति
 कुरुष्वेत्यनुज्ञातः पिण्डपितृयज्ञवद्वाहुतशेषंदत्वापात्रमालभ्य-
 जपतिपृथिवीतेपात्रंदगौरपिधानं ब्राह्मणस्यमुखेअमृतेश्मृतं जुहो
 मिस्वाहेतिवैष्णव्यञ्चो यजुषावाङ्मन्त्रेवगाह्यापहताइति तिला-
 त्रिकीर्योष्ण ठं० खिष्टमन्नन्दद्याच्छक्त्यावाश्रत्सुजपेद्ग्राहति ।
 पूर्वाङ्गायत्री ठं० सप्रणवा ५ सकृत्त्रिवारचोघ्नीः पितृमन्त्रान्पु-
 रुषसूक्तमप्रतिरथमन्यानिच पवित्राणितृप्तान्ज्ञात्वान्नस्पृकीर्य सकृ-
 त्सकृदगोदत्वापूर्वङ्गायत्रीञ्जपित्वासधुमतीर्मधुमध्वितिचतृप्तास्येति
 पृच्छतितृप्तास्मद्वत्यनुज्ञातः शेषमन्नमनुज्ञाप्यसर्वमन्नमेकतोधृ-
 त्योच्छिष्टसमीपेदर्भेषुवींस्त्रीन्पिण्डानवनेज्यदद्यादाचान्तेष्वित्येके-
 आचान्तेषूदकं पुष्पाण्यक्षतानक्षय्योदकञ्चदद्यादघोराः पितरः
 सन्तुसंत्विच्युक्ते गोबन्धोवर्द्धतांवर्द्धतामित्युक्ते दातारोनोभिवर्द्ध-
 तांविदाः सन्ततिरेवच श्रद्धाचनोमाव्यगमद्वहुदेयञ्चनोस्त्वित्या-
 शिषः प्रतिगृह्यस्वधावाचनीयान्सपवित्रान्कुशानास्तीर्यस्वधांवाच-
 यिष्यइति पृच्छतिवाच्यतामित्यनुज्ञातः पितृभ्यः पितामहेभ्यः
 प्रपितामहेभ्योमातामहेभ्यः प्रमातामहेभ्योवृद्धप्रमातामहेभ्यश्च
 स्वधोच्यतामित्यस्तुस्वधेत्युच्यमानेस्वधावाचनीयेष्वपोनिषिञ्चत्यू-
 र्जमित्युत्तानम्पात्रद्वृत्वायथाशक्ति दक्षिणान्दद्याद्ब्राह्मणेभ्योविश्वे-
 देवाः प्रियन्तामितिदैवेवाचयित्वावाजेवाजेवतेति विस्तृज्यामा
 वाजस्येत्यनुव्रज्यप्रदक्षिणीकृत्योपविशेत् ॥ ३ ॥ अथैकोद्दिष्टमेकोर्घण-
 कम्पवित्रमेकःपिण्डोनावाहनंनान्गौकरणन्नात्रविश्वेदेवाः स्वदि-
 तमितितृप्तिप्रणः सुस्वदितमितीतरेब्रूयुरुपतिक्षतामित्यथ्यस्था-
 नेऽभिरम्यतामितिविसर्गोभिरतास्मद्वतीतरे ॥ ४ ॥ ततः संवत्सरे
 पूर्णैस्त्रिपक्षेद्वादशाहेवा यदहर्वाष्टद्विरापदेरतचत्वारिपादाणि सति-
 लगन्धोदकानिपूरयित्वावीणिपितृणामेकम्प्रेतस्य प्रेतपात्रम्पितृ-
 पात्रेष्वसिञ्चतियेसमानाइतिद्वाभ्यामेतेनैव पिण्डोव्याख्यातोत-

ऊर्ध्वं ठं० संवत्सरे सम्वत्सरेप्रेतायान्नन्दद्यायस्मिन्नहनिप्रेतः
 स्यात् । ५ । आभुदयिकेप्रदक्षिणमुपचारः पूर्वाह्ने पितृमन्त्रव-
 र्जजपञ्चजवोदभायिवैस्त्रिलार्याः सम्पन्नमितितृप्तिप्रवणः सुसम्पन्न-
 मित्तीतरे ब्रूयुर्दधि वदराक्षतमिश्राः पिण्डानां दीमुखान्पितृनावा-
 हयिष्यद्वतिष्ठन्त्यावाहयेत्यनुज्ञातोनां दीमुखाः पितरः प्रीयन्तामि-
 त्यक्षय्यस्थानेनां दीमुखाग्निपूतन् वाचयिष्यद्वतिष्ठन्तिवाच्यतामि-
 तानुज्ञातोनां दीमुखाः पितरः पितामहाः प्रपितामहामातामहाप्र-
 मातामहाब्रह्मप्रमातामहाश्च प्रीयन्तामिति न स्वधाम् प्रयुञ्जीत युग्माना-
 शयेदत्र ॥ ६ ॥ अथ तृप्तिर्ग्राह्याभिरोषधीभिर्मासंतृप्तिस्तदभावआ-
 रण्याभिर्मूलफलैरोषधीभिर्वीसहान्नेनोत्तरास्तर्पयन्ति कागोरुमेषा
 नालभ्यक्रीत्वालध्वावास्थयं मृतानाहृत्यपचेन्मासद्वयन्तुमत्स्यैर्मा-
 सतयन्तुहारिणो न चतुरश्रैरभेण पञ्चशकुनेन षट्कागेन सप्तकौर्मै-
 णाष्टौ वाराहेण नवमेघमा ७ सेन दशमाहिषेणैकादशपार्षतेन संव-
 त्सरन्तु गव्येन पयसा पायसेन वावाहीन समा ७ सेन द्वादशवर्षाणि ॥ ७ ॥
 अथाक्षय्यतृप्तिः खड्गमा ७ सङ्कालशाकं लोहकागमा ७ सम्मधुमहाश-
 लकीवर्षासु च मघाश्राद्धं ठं० हस्तिक्षायायां च मन्त्राध्यायिनः पूताशाखा-
 ध्यायिषडङ्गविज्जेष्टसामगोगायत्रीसारमात्रोपि पञ्चाग्निः स्नात-
 कस्त्रिणाचिकेतस्त्रिमधुस्त्रिसुपर्णीद्वौ पाठको ब्राह्मो षोढा पुत्रश्चेति पंक्ति-
 पात्रनावागीश्वरो याज्ञिकश्च नियोज्यावभावेऽप्येकैकं वेदविदम्यं क्ति-
 मूर्ध्वनिनियुं ज्यादासहस्रात्पंक्तिम्पुनातीति वचनात् ॥ ८ ॥ अथ का-
 म्यानि भवन्ति स्त्रियो प्रतिरूपाः प्रतिपद्वितीयाया ७ स्त्रीजन्माऽश्वास्त-
 तीयायां च तुष्ट्यां क्षुद्रपशवः पुत्राः पञ्चस्यां द्युतर्द्धिः षष्ठ्या कृषिः सप्तम्यां
 वाणिज्यमष्टम्यामेकशफन्त्रम्यां दशम्याङ्गावः परिचारकाप्यएका-
 दशम्यन्धान्यं द्वादश्यां पुत्रपशून् रौप्यं हिरण्यं कुप्यं चातिश्रेष्ठश्चत-
 योदश्यां युवानस्तवमियन्ते शस्त्रहतस्य चतुर्दश्याममावास्याया ७ स-
 र्वमित्यमावास्या ७ सर्वमिति ॥ ९ ॥

इति श्राद्धकल्पसूत्रकात्यायनाचार्यकृतम्परिशिष्टं समाप्तम् ॥

अथ पार्वण श्राद्धस्यानुक्रमणिका ॥

सेकःप्रतिज्ञागायत्रीदेवताभ्यस्तथासनम् आवाहनार्घदाना-
निगन्धादीनांसमर्पणम् ॥ १ ॥ मण्डलान्याहुतं द्वेष्टाथन्नंभूस्वा-
मिनेतथा परिवेषोमधूत्सर्गापोवालम्भोन्नदानकम् ॥ २ ॥ अन्न-
हीनंचगायत्रीमधुवातांततोजपेत् विकाराचमनश्चाथगायत्रीम-
धुवेतिच ॥ ३ ॥ वेदिकांचततःकुर्यात्तत्रोत्प्लेखनकंतथा उत्तमुक-
भामणश्चाथरेखयोःकुशधारणम् ॥ ४ ॥ देवताभ्यस्तथापिण्डस्या-
नेतत्रावनेजनम् पिण्डदानमुपस्पर्शोद्विःश्वासयमनन्तथा ॥ ५ ॥
पिण्डोपरिप्रक्ष्यवनेजनन्नीच्याश्चशंसनं सूत्रदानमपिण्डपूजाजलपु-
ष्पाक्षतान्निक्षेपेत् ॥ ६ ॥ अक्षय्यवादीवार्धारागोवाशीःप्रार्थनन्ततः
पितृप्रीणनमाघ्राणमपिण्डोत्थापनकन्तथा ॥ ७ ॥ चालनश्चार्घपा-
त्राणांदक्षिणाचविसर्जनं देवताभ्योजपोरक्षादीपनिर्वापनंततः ॥
८ ॥ आचम्यचततोब्रूयात्प्रमादात्कुर्वंतमिमि एषःपार्वणश्राद्ध-
स्यानुक्रमःकथितोबुधैः ॥ ९ ॥

इति पार्वण श्राद्धस्यानुक्रमणिका ॥



श्रीः ।

अयङ्गन्योयत्नादतिबहुतरोत्साहभरतः
समेत्यप्राचीनप्रवरविलसत्पुस्तकचयम् ।
मयावाराणस्यामुपकृतिकृतेस्वच्छमनसा
स्वकल्याणोप्सूनामपिचविदुषाम्मुद्रितइह ॥ १ ॥

यहग्रन्थ अत्यन्त दुर्लभ औ— अतीवश्लाघनीयहै
श्राद्धके विषयमें ऐसा संग्रहका और ग्रन्थ नहीं है ।
इसको वैदिक पण्डित प्रभुदत्तजीने अति शुद्धता पूर्व
क सारस्वत वर श्रीमत्पंडित ठाकुर दत्त जी की ।
सहायता से लोगों के उपकार के वास्ते प्रकाशित
किया ॥

ठिकाना श्रीकाशी ।

सरस्वती फाटक ।

सत्यनारायणकामन्दिर ।

पण्डित प्रभुदत्तजी ।

सं० १९५० फाल्गुन कृ० २ बु० ।

